सागर, सरिता और अकाल

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखक
रामचंद्र तिवारी

सरस्वती प्रेस

प्रथम संस्करण
मार्च १९४६
मूल्य चार रुपये

मुद्रक— श्रीपतराय, सरस्वती-प्रेस, बनारस

प्रमुख समस्या

गेंद है जिसके अनेक गोलार्ध हैं। इन गोलार्धों में क्रिया, प्रतिक्रिया और आदान-प्रदान निरन्तर चलता रहता है। इस आदान-प्रदान और क्रिया प्रतिक्रिया में एक संतुलन है, तभी गेंद गेंद है। संतुलन नष्ट होते ही एक उपद्रव उपस्थित हो जाता है, और जो गेंद है वह खण्ड-खण्ड हो जाती है।

समाज के विविध अंग गेंद के अंगों के समान हैं। समाज के सन्तुलन के लिए आवश्यक है कि एक अंग जितना दे उतना उसे दूसरे अंग से प्राप्त हो। जब समाज का कोई अंग अपने इस प्रदान में असफल हो जाता है तब उपाधि और उपद्रव उत्पन्न होते हैं। अनुचित वितरण द्वारा उत्पन्न खाद्याभाव ऐसे उपद्रवों में से एक है।

दुर्घटनायें और असफलतायें आती हैं और आती रहेंगी। जो उनमें हताहत होते हैं। वे सहानुभूति और सत्कामना के अधिकारी हैं। पर मानव का इतिहास दुर्घटनाओं से सीखने का इतिहास है।

वर्तमान दुर्घटना ने एक धुँधले सत्य को उभार दिया है, और

इस प्रकार देश को संकेत दिया है। विनाश के पीछे सृष्टि और सृष्टि के पीछे विनाश का नियम चाहे सब अवस्थाओं में लागू न हो, पर पृथ्वी जिस दशा में होकर निकल रही है उस पर पूर्णतया लागू है।

शान्ति के समय में सुना जाता था कि देश की एक चौथाई जन संख्या एक बार भोजन करती है। व्यक्ति थे जो इस पर विश्वास नहीं करते थे। वर्तमान अन्नाभाव ने इस सत्य को प्रत्यक्ष कर दिया है। देश तनिक-सा धक्का नहीं सँभाल सका। सामने जो आया वह यह कि कृषि-प्रधान होने पर भी भारत अपनी जनता का पेट भरने योग्य पर्याप्त अन्न नहीं उत्पन्न कर सकता।

औद्योगिक क्षेत्र में तो देश की दशा दयनीय है ही। वस्त्र, औषधि, प्रभृति नाना सामग्रियों के लिए हम परमुखापेक्षी हैं। हमारा देश कृषि और उद्योग दोनों में अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए दूसरों की सहायता चाहता है। वह संसार का पावना नहीं, भार है और इसी लिए दुखी होकर अपने लिए भी भार है।

विचार है कि उपरिलिखित तथ्य सत्य नहीं है। भारत भूमि-सब प्रकार स्वावलंबी है। पर दुर्भाग्य वश यह धारणा सत्य से दूर है और हमारी भावुक मनोवृत्ति की द्योतक है। भावुकता, जो कठोर वास्तविकता के सामने नेत्र बंद कर लेती है। वास्तविकता को हम इसलिए नहीं कुरेदना चाहते कि सत्य प्रकट हो जाने से हमें दुख होता है, अपनी पंगुता और अयोग्यता के कारण स्वयं को कुछ करने में असमर्थ पाते हैं।

हमें वह नैतिक शक्ति प्राप्त करनी है जो वास्तविकता को देखकर सकुचाये नहीं। साहसपूर्वक उसे समझे और जिन समस्याओं को वह जन्म देती है उनका समाधान करने के उपाय नियोजित करे।

भोजन-अभाव की समस्या का कारण देश की जनसंख्या है। जिस अनुपात से वह बढ़ी उस अनुपात से देश की उपज में वृद्धि नहीं हुई है। जनसंख्या की इस वृद्धि के कारण हैं देश में शांति (युद्ध-अभाव) और चिकित्सा-शास्त्र की रोगों पर विजय।

इन कारणों ने औसत आयु कम होते हुए भी देश की जनसंख्या को मृत्युसंख्या से कहीं आगे रखा है, और वर्तमान समस्या की सृष्टि की है।

समस्या का विस्तार और उसकी गंभीरता महान् है। समस्या पुरातन नहीं है, इसलिए उसका हल भी पुरातन उपायों में नहीं मिलेगा। नवीन समस्या के लिए नवीन उपाय चाहिए।

वर्त्तमान युग राष्ट्रीयता का युग है। देश-भक्ति सबसे बड़ा धर्म है। परन्तु राष्ट्रीयता और देश-भक्ति अपनी परिभाषा में अनुदारता की मात्रा की स्वीकृति देती हैं और यह अनुदारता ही प्रायः उन्नति और प्रगति में विशाल बाधा सिद्ध होती है।

हम विज्ञान और यंत्रों को शंका और अवज्ञा की दृष्टि से देखते रहे। यह हमारे कल्पित शांतिमय स्वर्ग को नष्ट करनेवाले माने जाते रहे। पर वास्तविकता का कथन है कि वर्त्तमान समस्या का हल विज्ञान और यंत्रों से असहयोग करने से नहीं हो सकेगा। भाग्य के आश्रय राष्ट्र का जीवन अधिक समय नहीं चलेगा, और न विभिन्न समस्याओं का छिछला अध्ययन ही हमारा सहायक होगा। हम कहाँ तक वास्तविकता सहन कर निष्पक्ष भाव से उचित उपायों का प्रयोग करने का साहस और सामर्थ्य रखते हैं? यही भविष्य में हमारी सफलता की मात्रा निश्चित करेगा।

देश की औद्योगिक उन्नति इस दिशा में पहिला डग होगा। वे उद्योग जो कृषि से सीधे सम्पर्क रखते हों, हमारी भोजन-समस्या को हल करने के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

पर इससे भी अधिक विचारणीय बात एक और है।

कृषि के केंद्र गाँव हैं नगर नहीं। कृषि की उन्नति गाँव में ही कृषकों द्वारा संभव है। पर हमारे गाँवों की जो दशा है वह विशेष आशा को जन्म नहीं देती।

गाँवों की दशा इतनी पतित है कि कोई स्वाभिमानी व्यक्ति वहाँ निवास करना उचित नहीं समझता। तनिक-सी शिक्षा प्राप्त करते ही व्यक्ति गाँव से निकल नगर में चला जाता है। जिस मनुष्य में तनिक भी योग्यता और योग्यता पर विश्वास है वह नगरोन्मुख है। फल यह होता है कि अकुशल, अशिक्षित और अपेक्षाकृत निम्नतल की जनता ही गाँवों में शेष रहती जाती है।

इस जन-समाज से अन्न की उपज में, वर्त्तमान अवस्था में, किसी प्रकार की वृद्धि की आशा नहीं कर सकते। इसलिए वे अवस्थायें उत्पन्न करनी होंगी, जिनसे या तो जो गाँव में हैं उनमें अपने व्यवसाय के प्रति असाधारण रुचि जगे, अथवा योग्य व्यक्ति गाँव में रुकें और अपनी प्रतिभा-प्रदर्शन का पर्याप्त अवसर पायें।

गाँव में जो हैं, वे उपवास करने, और कष्ट सहने पर भी कुछ करने में असमर्थ हैं, पंगु हैं। वे अशिक्षित हैं। उन्हें दबाये रखनेवाली शक्तियाँ अत्यंत शक्तिशाली हैं। वे अपनी आवश्यकताओं और विपत्तियों को वाणी नहीं दे सकते। जनमत वहाँ है पर गूँगा है, त्रस्त है।

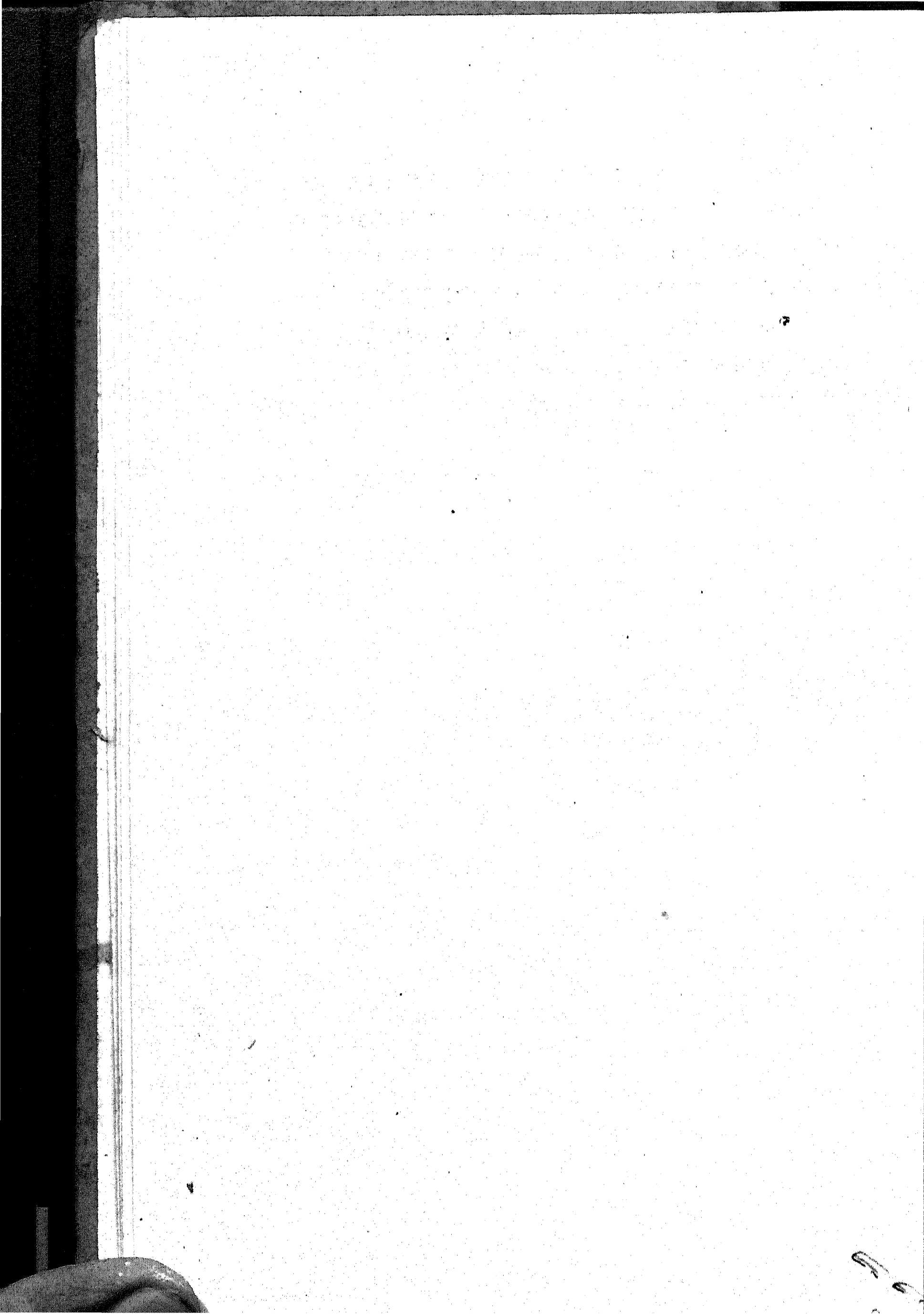
नगर में जो हैं। वे भोजन पेट भर करते हैं कष्ट भी उन्हें उतने नहीं हैं। उनके पास समाचार-पत्र हैं, विचार-शक्ति है, तर्क का बल है और शक्तिशाली वाणी है।

देश की इस समस्या को लेकर नगर और गाँव में यहीं सहयोग की आवश्यकता है। नगर गाँव में अधिक रुचि लें। वहाँ के जनमत को वाणी और शक्ति दें।

इस विषय में जनमत जितना तीव्र और स्पष्ट होगा, जन-शक्ति से जितना समर्थित होगा, उतना ही समस्या समाधान के अधिक निकट होगी। देश का, मानवता के बीस प्रतिशत का भविष्य इस समस्या के साथ अकाट्य रूप से बँधा हुआ है।

केवल एक प्रश्न है जो किसी कोने से उठ सकता है। क्या सबको जीने का समान अधिकार है? इस प्रश्न का उत्तर जीने की दुर्दमनीय इच्छा-शक्ति ही दे सकती है।

रामचंद्र तिवारी



प्रथम अध्याय

सागर

— १ —

अनिल ने ट्रंक खोला। ढक्कन के दराज़ में रखे एक युवती के चित्र को निकाला, ध्यान से देखा, एक मुस्कान उसके चेहरे पर आई, हृदय एक बार धड़का और उसने उसे अपने ओठों से लगा लिया। वह आनन्द सागर में निमग्न हो गया।

निस्सन्देह सुहासिनी अब उसकी है। चार दिन, और उसके पश्चात् वे दोनों पति-पत्नी होंगे। फिर संसार की कोई शक्ति उसकी प्यारी सुहासिनी को उससे पृथक् नहीं कर सकेगी।

वह इस विषय में अत्यंत सौभाग्यशाली है। समुद्र से पन्द्रह मील लगभग जो एक छोटा-सा नगर है वही उसका निवास-स्थान है, उसके माता-पिता, भाई-बहिन अब भी वहीं रहते हैं। सुहासिनी निकट के गाँव की कन्या है। अपनी मौसी के यहाँ जब अनिल कुछ वर्ष पहिले गाँव गया था तभी सुहासिनी से उसका परिचय हुआ था।

सुहासिनी उस समय यद्यपि बालिका थी तो भी अनिल को उसने आकर्षित किया था। उसका रंग कितना स्वच्छ था! केश कितने लम्बे थे! और उसकी विशाल आखें, उन्होंने अनिल के हृदय में घर कर लिया। उसके लिए यह परिचय परिणय में परिवर्तित हो गया।

मौसी का घर तब से उसे विशेष प्यारा हो गया। दोनों की आत्माओं को यह विदित होते कुछ मास से अधिक नहीं लगे कि वे दोनों एक दूसरे के लिए हैं।

पर जब तक समाज ऐसा न स्वीकार कर ले तब तक इस वैयक्तिक अनुभव का कुछ अर्थ नहीं होता और वह सामाजिक चट्टान, जिससे कितने ही प्रकृति प्रेम

टकरा अपने को लहू-लुहान कर लेते हैं, निराशा, हाला अथवा मृत्यु में शांति खोजने को विवश होते हैं, अनिल और सुहासिनी के लिए फूल-सी कोमल हो गई।

अभी अनिल को पत्र मिला है कि आगामी सप्ताह उसका विवाह सुहासिनी से होने जा रहा है। अनिल को संसार जो अधिक से अधिक दे सकता था, वह उसने दिया। और अनिल समाज के प्रति कृतज्ञ तो इतना नहीं हुआ, पर अपनी प्रसन्नता से फूल उठा।

हाई-स्कूल की चौथी कक्षा को एक घण्टे पहिले छुट्टी देकर जब वह अध्यापक घर पहुँचा तो सबसे पहिले उसने अपना ट्रंक खोला और सुहासिनी के चित्र को आँखों लगा, हृदय से चिपका लिया।

— २ —

अनिल इसी अवस्था में कुछ अपने को भूला बैठा रहा। सुख का यह प्रवाह उसके लिए अपने वेग में एक धक्का लेकर आया था। अब जब उसने सुहासिनी को पाया था तो उस पाने में वह अपने को खो बैठा।

सम्मुख दीवारगीर पर रखी टाइम-पीस टिक-टिक करती मिनिट पर मिनिट झाड़ती रही। वे भूत के काले गर्त में गिर अपना वैयक्तिक अस्तित्व विलीन करते रहे। अनिल अपने कमरे में पर उससे बहुत दूर बैठा रहा।

केले के वृक्षों के बीच जब उसने सर्व प्रथम सुहासिनी को देखा था वह क्षण उसे स्मरण आया। वह क्षण व्यापक होकर उसके समस्त जीवन को ढँक लेगा इसकी कल्पना उस समय कौन कर सकता था!

तब सुहासिनी साधारण कन्या थी। सुन्दरी वह थी। पर केवल सुन्दरी ही थी। इसके अतिरिक्त नवयुवा अनिल के लिए वह और कुछ न थी।

उसने तीन दिन इसी प्रकार उसे अपने मौसी-पति के उद्यान में देखा, और चौथे दिन पाया कि वह उसी स्थान पर एक पहर से बाहर बैठा उसके आगमन की प्रतीक्षा करता रहा है। उसके भीतर इन तीन दिनों में कुछ कल-पुर्जे नवीन दिशा में घूम गये।

वे लजाये, सकुचाये। एक दूसरे की ओर बढ़े, पीछे हटे ; पुनः बढ़े, और मिले। उन्हें इस भेंट पर पता चला कि अनिल संसार में सबसे सुंदर और प्रिय लड़का है और सुहासिनी संसार की सब कन्याओं से अधिक मिष्टभाषिणी, सौंदर्य-शालिनी और प्यारी है।

तब से मौसी का गृह अनिल को विशेष रूप से आकर्षित करने लगा। उसका स्वास्थ्य बात-बात में बिगड़ने लगा और उसे मौसी के उद्यान की वायु-सेवन से जो लाभ होता वैसा वह कहता कि उसे पहाड़ पर जाने से भी नहीं हो सकता। सुहासिनी भी इसी बीच में अपनी मा और भाभी से झूठ बोलना सीख गई। और उसका छोटा भाई उसे अनिल की मौसी के उद्यान में विचार-मग्न देखने लगा। भाभी ने कहा—ननद कवयित्री बनने जा रही है।

अनिल के अस्वास्थ्य के दिनों में ही सुहासिनी के कवित्व का उफ़ान होता है यह सबसे पहिले अनिल की मौसी सौदामिनी को ज्ञात हुआ। उस बुद्धिमती नारी ने योजनानुसार अनुसंधान कर अनिल को आश्वासन दिया कि जिस दिन वह कुछ कमाने लगेगा उसी दिन सुहासिनी को वे उसके घर भेजने की व्यवस्था कर देंगी। उसे अब पढ़ाई में ही चित्त लगाना चाहिए।

फल-स्वरूप पिता के अत्यंत आग्रह करने पर भी उसने डाक्टरी सर्टीफिकेट प्राप्त कर बी० ए० पढ़ने से इनकार कर दिया। इंटर पास करने के पश्चात् ही मातृ-नगर से सौ मील दूर एक उपनगर में चालीस रुपये का शिक्षक नियत हो गया।

इसकी सूचना अपनी मौसी को उसने पाँच रुपये मिठाई के लिए भेजकर दी। मौसी ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। भली-भाँति स्मरण करा देने के लिए उसने दूसरे मास दस रुपयों का मनीआर्डर किया और लिख दिया कि पहिले मास वह अपना यह कर्त्तव्य-पालन भूल गया था।

निःसंदेह अब मौसी को अपना वचन स्मरण आ गया। उसके छः मास पश्चात् एक पक्ष के स्मरण कराते रहने और दूसरे पक्ष के जोड़-तोड़ भिड़ाने के फलस्वरूप यह पत्र आज उसे प्राप्त हुआ।

– ३ –

उसने उस फ़ोटो को हृदय से हटाकर देखा, चूमा और फिर मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा।

स्वर्ग यदि कहीं है, तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।

सुहासिनी की लिखी हुई कुछ पंक्तियाँ उसके पास हैं। उसने अपनी कमीज़ों, धोतियों को हटाया और उनके नीचे रखा एक लिफ़ाफ़ा उठा लिया।

चित्र को अधरों से पकड़ा। बायें हाथ में लिफाफा पकड़ा और दाहिने से कपड़े पुनः ट्रंक में रखने प्रारंभ किये।

पर दो धोतियां रखने के पश्चात् वह ट्रङ्क को वैसा ही खुला छोड़कर उठ गया। खाट पर जा लेटा, चित्र को हृदय पर रखकर ज़ोर से दबा लिया। जब 'चिट्ट' का शब्द हुआ तो उसे अपनी असावधानी ज्ञात हुई। आवेश में उसने सुहासिनी के चित्र को तोड़ डाला है। उसका हाथ एक दम ढीला पड़ गया।

हृदय धक से हो गया। उसने चित्र को उठाकर देखा। वह वैसा ही स्वस्थ और परिपूर्ण था। टूटा न था। सुहासिनी खड़ी, केले के वृक्ष को बाहुपाश में लपेट अस्फुट हृदय-हारिणी मुस्कान मुस्का रही थी।

उसने चित्र को अधरों से स्पर्श कर पुनः छाती पर रख लिया। सावधानी से दबाया और छोड़ दिया।

सुहासिनी की लिखी कुछ पंक्तियों को लिफ़ाफ़े में से निकाला और उन्हें पढ़ने लगा। वे दो-तीन साधारण काग़ज़ के पेंसिल से लिखे छोटे-छोटे टुकड़े थे। प्रणय षड्यंत्र के यंत्रणा-पत्र थे।

उसने उन्हें पढ़ना प्रारंभ किया और दो मिनट से भी कम समय में उन्हें समाप्त कर दिया। पर सुहासिनी ने क्या लिखा है इसे वह जैसे पकड़ न पाता था। उसने उन्हें बारम्बार पढ़ना प्रारंभ किया।

वृत्त का कहीं अंत नहीं। अनिल और इति को मिलाकर अनन्त धारा में पड़ गया, कोई घण्टा भर पश्चात् जब इन्दुभूषण भट्टाचार्य, उसके साथ रहनेवाले एक सहशिक्षक, ने कमरे में प्रवेश किया तो उसे बारम्बार उन स्लीपों (काग़ज़-खण्डों)

को पढ़ता पाया। भट्टाचार्य महाशय के आने से अनिल के कृत्य में कोई अंतर नहीं पड़ा। उनके आगमन की सूचना उसे नहीं हुई।

— ४ —

भट्टाचार्य महाशय उसके सिरहाने स्तब्ध खड़े हो गये।

वे संसार से आहत होकर इस साधारण नगर में शिक्षक जीवन बिता रहे थे। उनके जीवन का प्रारंभ अत्यंत सुंदर हुआ था जिस कार्य में उन्होंने हाथ डाला उसी में सफलता प्राप्त की। एफ० ए० तक सदा प्रथम श्रेणी प्राप्त की। विमाता-पति पिता के लिए, दूर बोर्डिंग हाउस में रहने पर भी, वे सदा गर्व का विषय बने रहे। उनके मित्र सर्वदा उनके सौभाग्य से ईर्ष्या करते रहे।

पर इसके पश्चात् उनके जीवन में कुछ गड़बड़ होनी प्रारंभ हुई। एक सुमुखी छात्री से वे प्रेम करने लगे थे; पर उसने उन्हें प्रेम-पत्र लेखन में अभ्यस्त होने पर भी अपने विवाह में निमंत्रित नहीं किया।

बी० ए० में प्रथम श्रेणी दो नम्बरों से उनके हाथों से निकल गई।

बहनोई ने पिता से कहा—अब इंदु का विवाह कर देना चाहिए।

इंदु ने कहा कुछ नहीं, पर मन में प्रतिज्ञा की। वह सच्चा प्रेमी है। सुमुखी ने दूसरे से विवाह कर लिया है तो क्या? उन्होंने तो उसे प्यार करना बन्द नहीं किया। वह जीवन के उस छोर तक केवल उसी को प्यार करेगा। विवाह अब वह नहीं करेंगे।

पिता ने कहा नवयुवक की आर्थिक अवस्था में जब तक स्थैर्य न आ जाये तब तक उसके विवाह का मैं पक्षपाती नहीं। इंदु पहिले जीवन में कहीं जमें तो सही।

इंदु ने आशा की कि अस्सी-नब्बे से कम उसकी प्रतिभा का मूल्य क्या होगा? पर उन्हें पचास रुपये पर शिक्षक-वृत्ति स्वीकार करनी पड़ी।

उनका ध्यान इससे योग्य की ओर आकर्षित हुआ। और इसीसे उन्होंने घर पर पहनने के समस्त वस्त्रों को गेरुवा रँग डाला। दसियों पुस्तकें इस विषय पर खरीद लीं। अपने समस्त चित्त को उस ओर लगा दिया।

वह समझे कि अनिल को भी उन्होंने प्रभावित किया है। वह किसी मंत्र को बारम्बार रटकर स्मरण कर लेने की चेष्टा कर रहा है। उनका अनुसरण !

वह अब भी साधारण जन से उच्च है। एक गर्व उनमें उदय हो गया। वह अपने से मुग्ध खड़ा अनिल की ओर देखते रहे।

उन्होंने अपनी दृष्टि उसके हाथों से पैरों की ओर धीरे-धीरे सरकाई। उनके संसर्ग से भोगवादी अनिल में जो यह परिवर्त्तन हो रहा है उससे उसके शरीर पर क्या प्रभाव पड़ा है यह वह आँकना चाहते थे।

भट्टाचार्य की दृष्टि अनिल के वक्ष तक पहुँची और उनपर रखी एक चौकोर वस्तु पर अटक गई। चौखटे में जड़ा चित्र जो दर्पण भी हो सकता है।

इंदु ने कल्पना की योगिराज श्रीकृष्ण, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, अथवा स्वामी विवेकानंद। मन ने पूछा—बोलो कौन ?

इंदु ने अपने जुआ खेला। श्रीकृष्ण, नहीं विवेकानंद। तीन चार बार तीनों पर बारी-बारी से बल देने के पश्चात् निश्चय किया श्रीकृष्ण।

लपक कर उन्होंने अनिल के ऊपर से चित्र उठा लिया। उलट कर देखा।

वह चौखटा उसके हाथ में आकर जैसे प्रज्ज्वलित हो उठा। ताप भट्टाचार्य के लिए असह्य हो गया। वह छूट कर नीचे गद्दे पर गिर पड़ा।

भट्टाचार्य महाशय का योग-साधन नारी-दर्शन खण्डित होते-होते बचा।

मन में उठा—कैसा नीच है यह अनिल ! किस निर्लज्जता से इस गन्दे चित्र को हृदय से चिपटाये था।

अनिल ने फ़ोटो गिरने का शब्द सुनने के पश्चात् भट्टाचार्य के हाथ को अपनी छाती की ओर बढ़ते देखा। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। सुहासिनी के पत्र-खण्ड शीघ्रता से कमीज की जेब में डाले और चित्र को उठाकर पीठ पीछे छुपा लिया।

जब उसने भट्टाचार्य के नयनों में देखा तो पाया वे नयन जैसे उसे घोर अपराधी समझ रहे हैं। उनके लिए जैसे उसने हत्या जैसा कोई जघन्य पाप किया हो।

अनिल बोला नहीं। चुपचाप अपने ट्रंक की ओर गया और चित्र नीचे रखकर

ऊपर कपड़े चिनने लगा। वह समझ नहीं पाया कि भट्टाचार्य की इस प्रकार भर्त्सना-मय मुद्रा का कारण क्या है ? क्या स्कूल में कोई ऐसी घटना हो गई है ?

वह एकदम घबरा-सा गया। जब उसका जीवन स्वर्ग के द्वार पर खड़ा है तभी यह नौकरी संबंधी दुर्घटना यदि हुई तो ! उसका सिर चकरा गया।

पूछा—'भट्टाचार्य दादा, क्या बात है ?'

भट्टाचार्य बोले नहीं।

अनिल ने ध्यान पूर्वक उनकी ओर देखा।

'दादा !'

'तुमसे नीच पुरुष को अपने साथ रखने के कारण मैं आज पछता रहा हूँ अनिल !' भट्टाचार्य ने तपते हुए कहा।

'दादा !'

'हाँ, मैं नहीं जानता था कि तुम जैसे ऊपर से सौम्य और शिष्ट दीखनेवाले मनुष्य के भीतर इतना कलुष भरा है। मैंने तुम्हें सीधा-सादा नवयुवा समझा था और और तुम···'ग्लानि से उसकी वाणी रुद्ध हो गई।

अनिल विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखता रह गया। बायें हाथ से ट्रंक का ढक्कन पकड़े वहीं जड़ हो गया। हिलने की उसकी न उस समय इच्छा थी और न शक्ति ही शेष रही।

'देश का दुर्भाग्य है कि उसके बालकों की शिक्षा तुम जैसे नर पिशाचों के हाथ में है।'

नर-पिशाच शब्द अनिल के भीतर काँटा-सा प्रवेश कर गया। ढक्कन उसके हाथ से यकायक छूट गया और वह विद्युत्-गति से उठकर खड़ा हो गया।

'दादा ?' उसने तनिक ज़ोर से कहा।

'किसके बारे में मेरा क्या मत है यह मैं छिपाता नहीं हूँ। इस प्रकार के झूठे शिष्टाचार ने हमें पाखंडी और कायर बना दिया है।'

अनिल प्रश्न-वाचक दृष्टि से उनकी ओर देखता रहा।

'दादा !'

'मेरे साथ रहकर तुम मुहल्ले भर की लड़कियों से प्रेम-षड़यंत्र नहीं रच सकते। यदि ऐसी लीला करनी है तो आप अलग अपना प्रबंध कर लीजिए।'

'दादा ?'

'क्या है, मैं कठोर चरित्र का व्यक्ति हूँ। एक बार जो निश्चय कर लिया उससे कोई मुझे हिला नहीं सकता। आप अपना अलग प्रबन्ध कर लीजिए।'

'दादा, यह आप को कैसे पता है कि मैं मुहल्ले की लड़कियों से प्रेम करता फिरता हूँ ?'

'अनिल, मुझसे उड़ो मत। जिस चित्र को तुम अपने हृदय से लगाये हुए थे, वह यदि चारु बाबू की मृणालिनी का नहीं है तो किसका है ?'

'दादा !'

'और वे पत्र...?'

'चारु बाबू की मृणालिनी ?'

अनिल को लगा कि भट्टाचार्य दादा वैसे तो विरक्त हैं पर मुहल्ले की लड़कियों के फ़ोटो और हस्तलिपि पहिचानने में निपुण हैं। उसकी इच्छा हुई कि हँसे, खूब ज़ोर से हँसे।

उसने अपने पर संयम किया। पर मुस्कान मुख पर आ ही गई।

भट्टाचार्य महाशय मुस्कान देखकर क्रुद्ध हो गये। बोले—'हँसने का काम नहीं है। मैं अब तुम्हारा मुख भी नहीं देखना चाहता।'

क्रोध के मारे उनके नथुने फूल गये। शिराएँ उभर आईं।

अनिल उनका यह रौद्र रूप सहन न कर सका। खिलखिलाकर हँस पड़ा।

'हँसते हो, अनिल यह हँसने का विषय नहीं है।' उन्होंने अनिल को उसकी मूढ़ता समझाने की चेष्टा की 'तुम—शिक्षक हो, तुम्हें अपना आचरण शुद्ध रखना चाहिए।'

मनमें सोचा, अनिल को संसार का अनुभव नहीं, नवयुवा है। यदि उनसे पृथक् रहेगा, तो कदाचित् शीघ्र ही किसी आसुरी के प्रेम-पंक में फँस जायगा। उसपर अभी देख-रेख रखना अच्छा है। शांत होकर बोले—

'अनिल मेरे कहने का बुरा न मानना। मेरा संसार का अनुभव कुछ अधिक ही है। नारी के विषय में तुम कुछ नहीं जानते। खैर इस बात को जाने दो। तुम अभी मेरे साथ रह सकते हो।'

'धन्यवाद !'

'परन्तु तुम्हें वे पत्र और वह चित्र मुझे दे देने होंगे। मैं उन्हें नदी में प्रवाहित कर दूँगा ?'

'दादा !'

'बस यही एक बात तुम्हें मेरी माननी होगी।'

अनिल ने ध्यान-पूर्वक भट्टाचार्य की ओर देखा, बोला—'दादा, कोई भी सभ्य पुरुष अपनी पत्नी का चित्र और उसके पत्र परपुरुष को न देगा।'

'क्या वह···' और सब जैसे उन्हें ज्ञात हो गया। 'तुम इतने झूठे और पाखंडी हो इसपर मैं···।'

'दादा !'

'अनिल मैं तुम्हें समझ नहीं पा रहा हूँ। तुम ठीक-ठीक क्यों नहीं···।'

'दादा, अभी तक वह मेरी पत्नी नहीं है, पर आगामी सप्ताह में हो जायगी। बोलिये क्या खाइयेगा ? रसगुल्ले या सन्देश !'

'अनिल !'

'दादा !'

'तुम कह क्या रहे हो ?'

'यही रसगुल्ले खाइयेगा या सन्देश ?'

'अनिल ! तो वह तुम्हारी दुलहिन की फोटो है ?'

'जी'

'यदि बधाई देने से पहिले उसे देखना चाहूँ तो···।'

'अवश्य !'

सुहासिनी का चित्र भट्टाचार्य महोदय के हाथ में पहुँच गया। उन्होंने उसे ध्यान से देखा।

मुखपर एक भावना आकर निकल गई। उन्होंन बल लगाया—'अनिल बधाई है, वास्तव में बधाई है। अब बताओ मिठाई कब ?'

'अभी चलो। हाँ, तुमसे मुझे चाहिये पर वह मिठाई के पश्चात्...।'

'नहीं, अभी बताओ। मैं तुम्हें किसी वस्तु को मना नहीं कर सकता। तुम भाग्यशाली हो, अच्छे मनुष्य हो।'

'मुझे कुछ रुपये...।'

'चिंता न करो भाई, जो कुछ मैंने बचाया है, तुम सब ले सकते हो।'

'नहीं...।'

'सब ठीक है। चलो।'

'धन्यवाद !'

'चलो भी। पहिले मिठाई...।'

— ५ —

भट्टाचार्य को लगा कि यह तुच्छातितुच्छ अनिल चुपके से उनसे आगे निकल गया। इसन न कोई इनाम जीता, न कोई पारितोषिक पाया। प्रथम श्रेणी का कभी जिससे स्पर्श भी न हुआ और वह उनसे आगे है, जीवन की दौड़ में उनसे आगे है।

वह विवाहित होने जा रहा है। उसकी पत्नी सुन्दरी है और वह भाग्यशाली है।

भट्टाचार्य वैसे अत्यंत अच्छे मनुष्य थे। पर अनिल को प्रेम में सफल होते देखकर प्रतियोगिता जन्य एक निम्नता द्योतक भावना अपने प्रति उनमें आ गई। वे स्वयं से असंतुष्ट हो गये। अनिल के प्रति अपनी उच्चता बनाये रखने की इच्छा उनमें बलवती हो गई। वैरागी होने पर भी उन्हें लगा कि विवाहित अनिल उनसे अधिक पूर्ण मानव हो जायगा। वे जीवन के तल पर उससे नीचे रह जायेंगे।

वे अपनी वास्तविक अवस्था अनिल को उठते-बैठते बधाई देकर छुपाना चाहते थे। वे अपने लज्जित थे। पर विवश थे।

अनिल न कहा—'दादा चलो, बाजार हो आयें।'

'चलो।' उत्सुकता से भट्टाचार्य ने कहा।

'पर ?'

'पर क्या ?'

'पर खरीदना क्या...?'

'दुलहिन के लिए भेंट।'

'तब तो महत्त्वपूर्ण है भई, हाँ तुम...।'

'हाँ, रुपयों की आवश्यकता तो है ही।'

भट्टाचार्य ने सोचा कि इस समय रुपये देने में अस्वीकार कर वह अनिल को कठिन अवस्था में डाल सकता है। पर इसका फल क्या होगा ?

अनिल उससे असन्तुष्ट हो जायेगा। संसार का काम तो रुकता नहीं। अनिल का विवाह हो ही जायगा। सुहासिनी, वह फ़ोटोवाली सुन्दरी सुहासिनी उसकी पत्नी बनेगी। और सुहासिनी वास्तव में सुन्दरी है।

मन के अत्यंत छुपे कोने में उठा। ऐसे कोने में कि भट्टाचार्य को विश्वास न हुआ कि वह कोना उन्हीं के मन का है। सुहासिनी सुन्दरी है। अनिल के साथ सम्बन्ध बनाये रखने पर वह देखने को मिल सकेगी। अनिल को रुपये दो वे ही संबंध बन जायेंगे।

भट्टाचार्य अपने से क्रुद्ध हुए। मैं विरक्त! मैं इतना नीच हूँ ? नहीं मैं अनिल को रुपये देता हूँ। सुहासिनी के लिए नहीं। सुहासिनी क्या है, माया है, छाया-ग्रहणी है; देता हूँ, इसलिए कि अनिल मेरा मित्र है। उसे आवश्यकता है। मित्र को आवश्यकता है, मैं देता हूँ, यह मेरा धर्म है।

प्रकट बोले, 'क्यों भई कितने...?'

'मेरी समझ में पचास-साठ रुपये...।'

'पचास-साठ से क्या...।' गहिरे भाग ने कहा—रकम जितनी बड़ी होगी, उतने लम्बे समय तक अनिल ऋणी रहेगा और सुहासिनी...।

नहीं, नहीं सुहासिनी से उसका...'

'भई, तुम्हारा विवाह हो रहा है। दुलहिन नवेली नहीं, तुम्हारी प्रेमिका है। उसी के अनुसार तुम्हारी भेंट होनी चाहिए। सौ रुपये कम...।'

'देखें कितने में कोई उचित वस्तु...। मैं कम से कम खर्च करना चाहता हूँ।'

'यह तो उचित ही है। इस प्रकार धन लुटाने से कोई लाभ नहीं पर ऐसा अवसर क्या बार-बार आता है? जीवन में एक बार...।'

दोनों मित्र बाज़ार चले।

भट्टाचार्य और अनिल साथ-साथ चले जा रहे थे। अचानक भट्टाचार्य का ध्यान अनिल की ओर गया।

उसने देखा—अनिल उससे कुछ ऊँचा है, पतला है, अधिक नारी जैसा है। क्या वह वास्तव में उससे सुन्दर है? सुहासिनी उसपर मोहित क्यों हो गई? वह उसे पत्र...।'

आगे वह न सोच सके। दोनों तेज़ी से चले जा रहे थे। भट्टाचार्य तनिक पीछे थे। लपककर आगे बढ़े और गर्दन आगे बढ़ाकर अनिल का आनन्द से उच्छ्वसित मुख देखा।

लगा कि अनिल सुन्दर है, पर उन्होंने मानने से इनकार कर दिया।

नहीं, अनिल कोई विशेष सुन्दर नहीं। साधारण है, अत्यन्त साधारण है। पता नहीं सुहासिनी ने उसमें...।

अपने सौंदर्य की अनिल के साथ तुलना करने के लिए उनमें क्षुधा जाग्रत हो गई। वह इसका अवसर खोजने लगे।

पहिली पनवाड़ी की दुकान पर अनिल को पान खाने का निमंत्रण दिया।

दोनों जने जाकर विशालकाय दर्पण के सम्मुख खड़े हो गये। अनिल अपने में मग्न और भट्टाचार्य तुलना में मग्न। उन्होंने अत्यंत सूक्ष्मता से दोनों मुखों की तुलना की। प्रत्येक अवयव को पृथक् पृथक् और एक साथ मिला-मिलाकर परखा।

इसी कृत्य में थे कि पनवाड़ी ने पान दिया, वे चौंके। बिना दर्पण पर से दृष्टि हटाये बीड़े ग्रहण किये।

उन्होंने पाया कि वे स्वयं अनिल से असुन्दर नहीं हैं। ब्रह्मचर्य का जो तेज

उनके मुख पर है, वह अनिल के मुख पर नहीं। अनिल तरल, सरल और नम्र है, वे दृढ़, तेजस्वी और वीर्यवान् हैं।

और चित्र में सुहासिनी सुन्दरी है।

वे आगे चले। अनिल ने अपने लिए रूमाल और टाई खरीदीं। सूट का कपड़ा खरीदा। फिर वे गहनों की दूकान पर गये।

भट्टाचार्य ने कहा, 'अँगूठी!'

'घड़ी क्यों नहीं? सुन्दर और उपादेय।'

'मेरा विश्वास उपादेयता में विशेष नहीं है।'

'जैसी आपकी इच्छा।'

क्योंकि भट्टाचार्य रुपये देंगे इसलिये इतना कहना तो उनका मानना ही चाहिए।

पचास रुपये की अँगूठी अनिल ने खरीदी।

भट्टाचार्य ने पूछा—'बस एक ही गहना? अरे भई विवाह बार-बार थोड़े ही होता है? यह देखो। अरे भई तनिक वह एयरिंग दिखाइये। हाँ, यही यही, भई अनिल, देखो तो कैसी सुन्दर जोड़ी है। दुलहिन के कानों में अत्यंत सुंदर लगेगी। हाँ भई मूल्य? पैंतालीस रुपया? ठीक? अच्छा यह लो, इसे भी बाँध दो।'

और इससे पहिले कि अनिल इस विषय में अपनी सम्मति-असम्मति दे, भट्टाचार्य महाशय ने एयरिंग खरीदकर उसके हाथ में दे दिये।

अनिल अब उनका पंचानबे रुपये का ऋणी हो गया। इसे वह एक वर्ष से पहिले नहीं चुका सकेगा। अनिल उनका ऋणी है। वे अनिल के समान चाहे विवाहित न हों, पर एक पैसा अधिक पास न होनेपर भी उससे ऊँचे हैं। जब तक यह ऋण है, अनिल उनसे नीचा ही रहेगा।

भट्टाचार्य महाशय स्कूल गये और अनिल तैयारी संपूर्ण करने के लिए घर पर रह गया।

'अनिल मास्टर हैं?' चिट्ठीरसे ने पूछा।

'आज नहीं आये।' भट्टाचार्य ने सूचना दी।

'उनका यह पत्र है, दे दीजिएगा।'

भट्टाचार्य ने पत्र देखा। पते पर दृष्टि डाली। किसी कम शिक्षित लड़की के हाथ का लिखा हुआ है, ऐसा उन्होंने अनुमान किया। निश्चय कर लिया कि पत्र अनिल की प्रेमिका का है।

किसी ने कहा—अनिल को यह क्यों मिले! फाड़कर फेंक दो। वह स्वयं क्यों नहीं आया। क्या तुम उसके नौकर हो?

भट्टाचार्य ने ध्यान नहीं दिया और पत्र को अपनी जेब में रख लिया। कक्षा को सवाल बोलने लगे।

प्रश्न लिखा देने के पश्चात् फिर वह पत्र उनके सम्मुख उदय हो गया। उन्होंने उसे जेब में डाल कर भूल जाना चाहा था। पर हाथ जेब की ओर गया, पत्र का पता पुनः नेत्रों के सम्मुख आ गया।

प्रेमिका का पत्र है, क्या लिखा है! प्रेम की बातें होंगी। क्यों न खोलकर पढ़ लें। चिपका देंगे। अनिल देख थोड़े ही पावेगा।

वे वास्तव में खोल न डालें, इसलिए उन्होंने लिफ़ाफ़ा मेज़ पर गिरा दिया।

इसमें हानि ही क्या है? समय बुरा चल रहा है। संभव है कि कोई अशुभ समाचार हो। यदि है तो इन सुख के तीव्र क्षणों में उन्हें यह पत्र अनिल को न देना चाहिए, खोलकर पहिले देख लेना चाहिए कि क्या लिखा है।

पत्र हाथ में पुनः उठा लिया। भट्टाचार्य अपने से भयभीत हो गये। कहीं वे वास्तव में खोल न डालें।

उन्होंने पुकारा, 'विनोद!'

सामने की पंक्ति में एक लड़का उठ खड़ा हुआ।

'लो, यह पत्र अनिल मास्टर को दे आओ। घर पर ही होंगे। यदि न हों तो दराज में से अंदर डाल देना।'

पत्र को अपने से पृथक् कर भट्टाचार्य मास्टर ने कक्षा की ओर ध्यान दिया।

— ७ —

अनिल अपने ट्रंक और सूटकेस में वस्त्र बारंबार रखकर अस्त-व्यस्त कर रहा था। सुहासिनी ट्रंक की दराज में से उसकी ओर देखकर मुस्कुरा रही थी।

सागर-सरिता और अकाल

जितना प्रसन्न वह इस समय था उतनी प्रसन्नता उसने केवल सुहासिनी के संसर्ग में प्राप्त की थी। वे क्षण उसके सम्मुख उड़-उड़कर आ रहे थे। और मुस्का-मुस्काकर कह रहे थे कि हम अब स्थायी होने जा रहे हैं।

अनिल वास्तव में सुखी था, इतना सुखी कि जैसे उसके समस्त जीवन का सुख आकर उस एक बिन्दु पर केंद्रित हो गया हो। उसे समस्त संसार जैसे एक तरल तरंग पर सृजित जान पड़ रहा था। वह उसकी प्रत्येक साँस पर झूले-सा झूल उठता था और इस गति से उसमें से सुख की सुगंधि झर-झर झड़ रही थी। इस सुगंधि ने समस्त सृष्टि को सुगंधित कर दिया था।

'चालीस रुपये का मास्टर अनिल सुखी था, उसमें सुखी होने की सामर्थ थी।

वह उस तराजू के एक पलड़े पर बैठा था जिस पर उसके जीवन की बाजी लग रही थी। उसका पलड़ा निस्सन्देह रूप से नीचे झुक रहा था। कुछ घण्टों का भार और इसके पश्चात् वह बाजी जीत जायगा। संसृति को अपनी हार स्वीकार कर लेनी होगी। सुहासिनी उसे सौंप देनी होगी।

विनोद ने पत्र दिया।

अनिल आनन्द से विभोर हो गया। सुहासिनी का पत्र!

उसने विनोद को एक इकन्नी इनाम में दी।

पत्र तुरंत खोल डाला। और फिर उस अर्द्ध शिक्षिता लड़की की लिखावट में अपने को खो दिया।

पढ़ा, चूमा और पत्र को हृदय से लगा लिया। उसका सौभाग्य!

उसे लगा कि बिना भाग्य के संसार में कुछ नहीं प्राप्त होता, वह जो प्रसन्नता से छुटा-सा जा रहा है, इसका कारण उसके भाग्य के अतिरिक्त और क्या है! उसने कभी कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिससे प्रत्यक्ष रूप से इस प्रसन्नता-प्राप्ति का संबंध जोड़ा जा सके।

वह बैठा रहा, पत्र पढ़ता रहा।

सुहासिनी ने पत्र लिखकर इतना सुख उसे क्यों दिया? क्या प्रतिक्षण परिवर्तन-शील अस्तित्व के कोमल तार उसका भार सँभाल सकेंगे?

— ८ —

स्कूल के सब शिक्षकों ने अनिल को बधाई दी।

भट्टाचार्य तथा अन्य दो शिक्षक उसे स्टेशन पर पहुँचाने आये। गाड़ी में भीड़ ऐसी कि बस!

डिब्बे से डिब्बे स्थान खोजते फिरे, पर कहीं तिल धरन को स्थान नहीं।

भट्टाचार्य ने कहा—स्थान नहीं है तो बनाना होगा।

यात्रियों ने कहा—'नहीं यहाँ स्थान नहीं है।'

इन लोगों ने सुना नहीं।

भट्टाचार्य ने द्वार खोलने की चेष्टा की, पर असफल।

गाड़ी ने सीटी दे दी।

अनिल ने घबराकर साथियों की ओर देखा!

आशुतोष बनर्जी मुस्काया और शीघ्रता से अनिल को अपने कंधे पर उठा लिया।

गाड़ी सरकी और उसने उसे खिड़की की राह भीतर फेंक दिया।

एक ने कहा 'नालायक।'

दूसरे ने कहा 'बदतमीज़।'

और तीसरे ने अपने ऊपर से अनिल को धक्का दे दिया उसे गाड़ी में खड़े होने को स्थान मिल गया।

साथियों ने ट्रंक और सूटकेस उसी मार्ग से भीतर सरका दिये। जिन लोगों के शीश अथवा कमर ने उनका विरोध करना चाहा उन्होंने आग्नेय नेत्र से अनिल की ओर देखा।

अनिल ने कहा—'क्षमा कीजिये महाशय! अनिच्छा पूर्वक यह कष्ट मैं आपको दे रहा हूँ।'

'ध्यान नहीं हमारे देशवासी सभ्यता कब सीखेंगे?' एक कोने में से एक देश-भक्त ने कहा।

'आप लोगों ने कष्ट सह मुझे खड़े होने का स्थान दिया तो, धन्यवाद!'

उसने जेब से रूमाल निकालकर अपनी कोहनी पर लगाया। वहाँ से थोड़ा रक्त इस परिश्रम से बह रहा था।

गाड़ी की गति तेज़ हो गई। अनिल निजालय और श्वसुरालय की कल्पना करने लगा।

—९—

विवाह परसों है। सुहासिनी ने सोचा। नाना कल्पनायें उसके मन में खेल गईं।

पिता उपेन्द्र कन्या के सौभाग्य और अपने वरान्वेषण के अल्प परिश्रम से प्रसन्न थे। विवाह की सब तैयारी अत्यंत उत्साह से कर रहे थे।

पर मौसम कुछ साथ नहीं दे रहा था। चार दिन से आकाश में सूर्य दिखाई नहीं दिये। बादलों से दिन में भी रात्रि बन गई और वायु? उसने सोच लिया कि चलना है तो अभी चलना है, आगे समय और अवसर नहीं मिलेगा।

निकट के अविनाश ने कहा—'अब कलियुग समाप्त होकर सतयुग आ रहा है। सतयुग के पश्चात् त्रेता आयेगा। हनुमान फिर लंका दहन करेंगे। तब पवन को अपने समस्त बल से चलना पड़ेगा। उसी का अभ्यास उसने अभी से प्रारंभ कर दिया है।'

वायु तीव्र और शीतल थी। शीतल ऐसी कि काँटे जैसी। वह दौड़ रही थी। निरन्तर अथक गति से दौड़ रही थी।

धान के खेतों में, केले के उद्यानों में, नारियल और ताल की कुञ्जों होकर वह अबाध गति से प्रवाहित हो रही थी। वृक्ष लचक-लचक जाते थे और दैवी-कोप को सहन करते जाते थे। वायु वृक्षों की पत्तियों और शाखाओं में उलझती, उन्हें तोड़ती-मरोड़ती, उड़ी जा रही थी।

उसके झोंके कुञ्जों में किलकारते, चीत्कारते। रात्रि के भयावह अंधकार में लगता कि सहस्रों राक्षस वृक्षों पर सीटी बजा रहे हों। शाखाओं और पत्तियों से निकली ये चीत्कारें प्राणियों के कलेजों को जमाने लगीं।

किसी वृक्ष पर कोई घोंसला सुरक्षित न रहा। अंडे ओलों की भाँति नीचे बरस पड़े। नवजात शिशु नीचे गिरकर छटपटाते-छटपटाते मर गये और घोंसलों की

तीलियाँ पवन ने नटखट बालक की भाँति चारों ओर बखेर दीं। केवल बया जैसे गुँथे घोंसले ही अपना अस्तित्व एकत्र रख सके पर वह भी वृक्षों से टूट कर।

मानव की झोपड़ियाँ चरमरा उठीं। किवाड़ टूटकर उड़ जाने की प्रवृत्ति दिखाने लगे। छोटे-छोटे छप्पर उलट गये, उनकी दीवारें आकाश को छत बनाये खड़ी-खड़ी इधर-उधर हिलती रहीं। वर्षा की फुहारें गिर-गिरकर निवासियों को त्रस्त करती रहीं।

घण्टे बीते, पहर बीते, और फिर दिन बीत गया पर तूफान के वेग में कमी न आई। जनता त्रस्त भगवान का स्मरण करती बैठी रही।

सुहासिनी के पिता ने कहा—'भगवान को यह कार्य सुचारुता से होने देना स्वीकार नहीं है।'

उन्होंने तदनुसार विशेष उत्सव-योजना में परिवर्तन कर दिया। यदि मौसम में परिवर्तन न हुआ तो विवाह मात्र कर देंगे, उत्सव पीछे होता रहेगा। पर बारात इस मौसम में आयेगी कैसे?

सुहासिनी के हृदय में गूँजा; बारात ऐसे में आयेगी कैसे?

आँधी थी कि चले ही जाती थी।

दिन व्यतीत हो गया। मौसम में कोई परिवर्तन न आया। वही फुँफकार, मानों कि सहस्रनाग मानव के दुष्कृत्यों पर क्रोधित होकर फुँकार उठे हों।

उपेंद्र बाहर निकले। रात्रि के प्रथम प्रहर में नयन फाड़कर देखा। वृक्ष श्यामल आवरण ओढ़े दूर-निकट राक्षसों-से खड़े थे। किसी जीव का शब्द कहीं से सुनाई न देता था। कोई मानवी प्रकाश दृष्टिगोचर न होता था।

उन्होंने नयन पर बल डाला। देखा कहीं कुछ दिखाई न पड़ा।

'हे भगवान, बस एक दिन के लिए इस तूफ़ान को बन्द कर दे। मेरी सुहासिनी का विवाह भर हो जाने दे।'

वह अपनी संपूर्ण आत्मा से परम पिता के सम्मुख प्रार्थी हुए। और उन्हें लगा कि उनकी प्रार्थना उस करुणालय ने सुन ली। दुखी-जन की यदि भगवान नहीं सुनेंगे तो कौन सुनेगा।

वायु का वेग यकायक बन्द हो गया। समस्त कोलाहल शांत हो गया और वातावरण में एक कुहासा छा गया। जल के नन्हें-नन्हें कण वायु पर तैर आये।

उपेंद्र ने भगवान को नतमस्तक हो धन्यवाद दिया। उसके प्रति कृतज्ञता से उसके अश्रु उमँड़ आये। वे घर में लौट गये।

पत्नी से बोले—जान पड़ता है कि भगवान को हमारी सुहासिनी का विवाह करा देना स्वीकार है। आँधी रुक गई है।

सुहासिनी निश्चित सो रही थी।

माता-पिता अच्छे मौसम के लिए परमात्मा से प्रार्थना करने लगे। तनिक से निवेदन से यदि आँधी इतनी कम हो गई तो और अधिक प्रार्थना से क्या भगवान मौसम बिल्कुल अच्छा न कर देंगे?

उन्होंने प्रार्थना की, विनय की, परम-पिता को मस्तक टेक-टेककर विनय की।

भगवान करुणानिधान हैं। उनकी सुहासिनी का विवाह करने का समय वे उन्हें अवश्य देंगे।

आँधी और भी कम हो गई। स्तब्धता छा गई। ऐसी स्तब्धता कि भयावह लगने लगी।

कुहासा आँगन में से कोठरियों में घुस आया।

पत्नी ने कहा—परमात्मा ने सुन ली।

पति ने कहा—'शेषशायी सदा करुणानिधान हैं, भक्तों की सर्वदा सुनते आये हैं।

भक्ति और समर्पण की भावना उस घर में व्याप्त हो गई।

उपेंद्र को सहसा अपने नीचे भूमि हिलती जान पड़ी। वह सजग हुआ। भय से हृदय भर गया। क्या भगवान आज प्रलय करने जा रहा है।

कुहासा और घना हो गया। साँस लेने में कष्ट अनुभव होने लगा।

उसने सुना एक भीषण रव, जो प्रतिक्षण शक्ति पकड़ती जा रही थी। वह बड़ी तेज़ी से भीषण चीत्कार में परिवर्तित हो गई। ऐसी जैसे कि सहस्र क्रोधित हाथी क्रोध से पागल होकर चिंघाड़ रहे हों। भूमि थरथरा उठी।

सागर-सरिता और अकाल

उपेंद्र की समझ में न आया कि यह नवीन प्राकृतिक उपद्रव क्या है। वह अंधकार में घर से बाहर निकला। पानी फुहार-सा उड़ रहा था। अत्यंत नन्हीं-नन्हीं बूँदें वातावरण में ठसाठस भरी थीं।

बाहर उसने नयन फाड़कर देखा, पर कुछ दिखाई न पड़ा, केवल भूमि अधिक काँपने लगी और रव और भी भीषण हो गया।

उपेंद्र भयभीत हो गया। वह भीतर गया। जाकर पत्नी का हाथ पकड़ लिया। दोनों के हृदय थरथरा रहे थे।

रव बढ़ता गया। भीषण सागर की विशालकाय तरंग के पानी का लहराना स्पष्ट सुनाई दिया और इसके पश्चात् पानी के दीवारों से टकराने के अतिरिक्त और कुछ न रहा।

पति-पत्नी के चारों ओर पानी भर गया। निद्रित सुहासिनी, उसके भाई और भाभी को पानी ने ढँक लिया। केवल तरंग गर्जन और कुछ सुनाई न दिया।

वह क्षुद्र मकान दो क्षण तक उस पानी के पहाड़ से टक्कर लेता रहा। छत आगे-पीछे हिली और फिर ढह पड़ी। नंगी जल के गर्भ में कुछ क्षण खड़ी रही, फिर भहरा पड़ी।

मकान पानी के नीचे आ गये। खेत, बाग, वृक्ष सब पर पानी का पहाड़ फिर गया। उन्मत्त मतंगों की पंक्ति की भाँति वह पर्वत भूमि को रौंदता चला गया।

झोपड़ी बह गईं। गाँव गल गये। उपनगर छूट गये और वह निर्द्वंद्व इस कृत्य में आनंद लेती खिल-खिलाती बढ़ती चली गई।

जीव के लिए कोई आशा नहीं थी। मनुष्य अपने घर में मरे। बिस्तरे पर मरे। रोगी स्वस्थ सभी के लिए एक भाग्य था। यह सामूहिक मृत्यु थी। एक तनिक से इंगित ने सृष्टि के स्वामी बनने का दावा करनेवाले मानव और उसकी कृतियों को चींटी की तरह मसल दिया था।

चारों ओर थी मृत्यु। नंगी, शीतल, आँधी और काली मृत्यु। बादल गर्जे, यहाँ मृत्यु है। वृक्षों ने हिलकर कहा, यहाँ मौत है। और जल की लघु-विशाल तरंगों ने लहराकर, टकराकर उत्तर दिया, हाँ, यहाँ मौत है। हम मौत हैं।

आज हमारी बारी है। जो हमने दिया है वह हम ले लेंगे।

अनिल का परिवार, अनिल की मौसी, अनिल की सुहासिनी; सभी जल-समाधि में खो गये।

मृत्यु के तांडव में प्राण तारिकाओं की भांति इधर-उधर बिखर गये।

— १० —

इंजन सीटी देता, भकभकाता, छोटे स्टेशनों पर ठहरता, बड़े स्टेशनों पर पानी लेता चला जा रहा था। उसकी गति में संयत अबाधता थी। उसके पीछे डिब्बे रेल पर दौड़े जा रहे थे, जैसे कि इंजन का साथ छूटते ही वे प्राणहीन हो जायँगे। और इन डिब्बों में, बाड़े में भेड़ों की भाँति, मनुष्य भरे हुए थे। वह मनुष्य, जिसने अपने भाग्य, अपनी कृति के यहाँ गिरवी रख दिये हैं। जिसने जड़ को गति देकर स्वयं उसकी गति पर नाचना प्रारंभ कर दिया है।

अनिल का सुखानुभव इतना गंभीर, केंद्रित और व्यापक था कि यदि डिब्बे में स्थान होता तो वह सो गया होता। पर इसमें साठ-पैंसठ मील पार करने के पश्चात् वह ट्रंक सूटकेस को फर्श पर रख उसपर बैठने का ही प्रबंध कर सका।

जिस समय गाड़ी झटके के साथ खड़ी हुई, पहियों पर ब्रेकों का भीषण घर्षण प्रारंभ हुआ तो अनिल की तंद्रा खुल गई। उसने नयन खोले।

पर तत्क्षण उन्हें बंद कर, नासिका ऊपर उठाकर जँभाई ली। उन्हें मला। नितांत मूढ़ावस्था में बाहर देखा, वास्तव में कुछ न देखा। देखा केवल अभेद्य अंधकार।

अब जब उसकी उत्सुकता जागी तो वह वास्तव में जागा। और अनेकों शीश रेल की खिड़कियों से बाहर निकले हुए थे। उसने भी अपने शीश के प्रति वही क्रिया संपादित करने का प्रयत्न किया। सहयात्रियों ने उसका यह अधिकार स्वीकार न किया।

शीश का प्रयत्न व्यर्थ जाते देख अनिल डिब्बे के भीतर ही चारों ओर चकित दृष्टि से देखने लगा।

पाया सबका ध्यान बाहर।

उसकी उत्सुकता बढ़ी। फिर प्रयत्न किया, पर शीशों की इस प्रतियोगिता में उसके शीश को फिर पराजय स्वीकार करनी पड़ी।

जिह्वा ने सहायता की। पूछा—'क्या बात है ?'

'चुपचाप बैठे रहो।' संभ्रांत दीखनेवाले व्यक्ति ने कहा। अनिल के चढ़ आने से सबसे अधिक असुविधा दूर बैठे होने पर भी वे ही अनुभव कर रहे थे।

'क्या है ?' उसने पास खड़े नवयुवक की पीठ से पूछा।

गाड़ी के बाहर से मुख ने उत्तर दिया। 'स्टेशन।'

इंजन की साँय-साँय और यात्रियों की विचित्र उत्सुक भावना ने अनिल में एक कंप उत्पन्न कर दिया।

'क्या है ?' उसने फिर पूछा।

नवयुवा ने अपना शीश खिड़की में से हटा लिया और जिस प्रकार एक कुत्ते के मुख से गिरी हड्डी पर दूसरा भूखा कुत्ता टूटता है उसी तेजी से अनिल के शीश ने उस रिक्त स्थान को ग्रहण किया। डिब्बे में मूक प्रश्न व्याप्त था, 'क्या है ? क्या साधारण स्टेशन, स्टेशन मात्र है ? इतनी भयावहता क्यों है ?'

अनिल ने देखा कि है वास्तव में एक छोटा-सा स्टेशन। एक-दो यात्री उतरे भी हैं। पर गाड़ी यहाँ तो रुकनी नहीं चाहिए थी। कारण ?

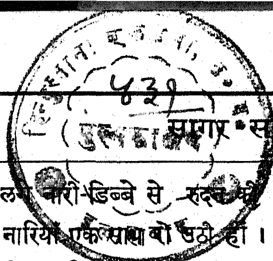
कदाचित् सामने से गाड़ी आती होगी।

उसकी दृष्टि इंजन के सँमुख रखी तीन लाल बत्तियों की ओर गई। पर वह इसमें कुछ न पढ़ सका।

यकायक उसे अनुभव हुआ कि वातावरण में एक भारीपन, एक तनाव आ गया है। मनुष्य के चेहरे पर भाव जड़ होने लगे हैं। इस दो-तीन बत्ती द्वारा बेधे जाने-वाले अंधकार के प्राणों का अर्थ जैसे पढ़ने में मानव समर्थ हो गया हो।

पर वह खड़ा रहा। न कुछ देख पाने पर भी समझता रहा कि उसने पता लगा लिया है; वह पता लगा रहा है।

तभी एक घटना ने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। कपूर के ढेर में अग्नि स्पर्श कर जाने पर लपटें जिस प्रकार आकाश की ओर जाती हैं, उसी प्रकार



सामने लगे नारी-डिब्बे से रुदन की लपटें यकायक निकलने लगीं। ऐसे जैसे कि समस्त नारियाँ एक साथ रो उठी हों।

अनिल चकित हो गया।

रुदन रुका नहीं। शक्ति पकड़ता चला गया। जो अब तक शांत थीं वे भी जैसे उसमें योग देने लगीं।

यात्रियों के कलेजे दहल गये। कारण क्या है? लोगों ने उतरकर देखना चाहा।

पर द्वार खोलते ही देखा कि पुलिस के सिपाहियों की पंक्ति किसी को नीचे उतरनें नहीं दे रही है।

कोई दुर्घटना!

उत्सुकता!

और तब जो पाला उस डिब्बे के यात्रियों पर पड़ा वैसा कभी देखा-सुना नहीं गया।

गाड़ी वापिस जायगी।

आगे लाइन टूट गई है।

क्यों?

गाड़ी वापिस जायगी।

ऊपर रहो ऊपर।

ओ, खिड़की बंद करो।

सुनता नहीं?

महाशय!

सुनता नहीं, द्वार बंद!

गाड़ी वापिस।

तूफान।

सब गाँव-नगर बह गये हैं।

कोई भी जीवित नहीं बचा है।

अनिल ने सोचा, इस सबका अर्थ? कोई भी नहीं बचा है। क्या यह संभव है!

पर रुदन बल पकड़ता जा रहा था। और डिब्बों में से भी उसी प्रकार का स्वर आना प्रारंभ हो गया।

अनिल ने कहा—क्यों, क्या सारी गाड़ी रोने लगेगी? उसके विवाह का अवसर। यह अशकुन!

वह जब सुहासिनी से मिलेगा तो सब सुनायेगा। उनके विवाह की यह घटना जीवन भर स्मरण रहेगी।

सारी गाड़ी एक साथ रो उठी।

तभी एक अधेड़ चीत्कार मारकर उसके पीछे की ओर रो उठे। सबका ध्यान उस ओर गया।

अनिल जैसे एक बार जागकर पुनः जागा।

तो क्या सब मर गये हैं? कोई नहीं बचा!

ऐसा तूफान! कभी सुना…!

इसी अवसर पर दो और यात्रियों ने रुदन प्रारंभ किया। एक वृद्ध सिसकियाँ लेने लगे।

तो क्या सुहासिनी नहीं बची? मौसी नहीं बची? उसके माता-पिता नहीं बचे! अनिल! अनिल!!

अनिल का मस्तक घूम रहा था।

नहीं, यह सत्य नहीं हो सकता। भला यह सत्य हो सकता है? नहीं हो सकता। नहीं हो सकता!

अनिल ने लोगों की अवस्था पर मुस्काने की चेष्टा की। वह विवाह करने, सुहासिनी से, अपनी सुहासिनी से विवाह कराने जा रहा है।

निकट बैठे गेरुए वस्त्र पहिने संन्यासी ने अनिल की ओर देखा। उन्होंने अपना मोटा खद्दर अभी उठाकर नयनों से लगाया था।

सुहासिनी नहीं बची! अनिल! अनिल!

अनिल ने अनुभव किया कि इंजन सामने से कट गया है। पानी लेने गया होगा! विश्वास न करने की इच्छा होने पर भी उसने विश्वास किया।

पर थोड़ी देर में वह उसके डिब्बे को पार करता गाड़ी के पीछे की ओर चला गया। शंटिंग कर रहा है। अनिल ने समझाया।

इंजन जाकर पीछे की ओर जुड़ गया। अनिल का हृदय धक से रह गया।

नहीं, गाड़ी वापिस नहीं जा सकती। उसका विवाह है। अनिल! नहीं, वापिस नहीं जा सकती! डिब्बे काटने-जोड़ने होंगे।

अनिल ने पीछे की ओर देखा। हरी बत्ती।

तो गाड़ी वास्तव में लौट रही है? उसका विवाह! उसकी सुहासिनी!

नहीं, गाड़ी कहीं इस प्रकार लौटा करती है?

इंजन ने सीटी दी। अनिल का हृदय चीखा। इंजन सरका, जोड़ खिंचे, चरमराये और अनिल को लगा कि कोई उसके हृदय को पकड़कर बाहर निकाले ले रहा है।

गाड़ी लौट पड़ी। उसका विवाह!

अनिल के हृदय में जो संशय था वह शांत हो गया। वास्तव में उसके माता-पिता, उसके भाई-बहिन, मौसी और उसकी सुहासिनी, उसकी सुहासिनी!

सब मर चुके हैं।

वह अत्यंत गंभीर हो गया। एक क्षण को उसका दम घुटने को हुआ। कंठ का निकटवर्ती भाग एक साथ सूख गया। और फिर उसकी छाती फूलकर फटने को हुई। नेत्रों से आँसू बहने को हुए, पर वे बहे नहीं। नेत्र जल उठे।

वह निर्निमेष दृष्टि से गाड़ी से बाहर देखने लगा। चारों ओर था अंधकार, काला, घना, भयावह अंधकार। अनिल के अंतर की भी दशा यही थी। उसका वर्तमान अंधकारमय था, भविष्य अंधकारमय था।

उसने खूब कस कर मुट्ठी बाँधी और फिर समस्त बल से उस मुक्के को ललाट पर दे मारा। ऊपर के दाँत नीचे के ओठ में धँस गये।

सागर - सरिता और अकाल

समस्त डिब्बे हिचकियों और सिसकियों से परिपूर्ण थे। अनिल ने दाँतों को अत्यंत बलपूर्वक जकड़कर अपने नीचे रखे सूटकेस को कसकर पकड़ लिया।

इस क्रिया में उसकी कोहनी पास के सज्जन को लगी। वे वैसे अत्यंत तेज़ थे, पर इस समय बोले नहीं। वे भी चिंता से खाली न थे। गाड़ी लौटी जा रही थी।

अचानक अनिल के भीतर शक्ति का उद्रेक हुआ। वह उठ खड़ा हुआ। इस क्रिया में उसका शीश सीट पर बैठे एक यात्री के मुख से टकराया।

यात्री के क्रुद्ध होने से पहिले ही अनिल नेत्र अंगार कर घूसा बाँध लड़ने को प्रस्तुत हो गया। वह उस समय सब कुछ कर सकता था। यात्री ने मुख दूसरी ओर फेर लिया।

अनिल ने अपना सूटकेस उठाया और द्वार के निकट रख दिया। ट्रंक भी वहीं ले आया। इस दशा में किसी ने इस स्थान-परिवर्त्तन का विरोध नहीं किया।

अनिल ने ट्रंक खोला। अँगूठी निकाली। उसे ध्यान से देखा और संपूर्ण बल से घुमाकर उसे गाड़ी से बाहर फेंक दिया। एयरिंग के साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार हुआ।

यात्रियों ने देखा, पर वास्तव में सब अपना-अपना भविष्य देख रहे थे। किसी ने उससे प्रश्न नहीं किया।

उसने एक-एक कर सब वस्त्र गाड़ी से बाहर झाड़ दिये और फिर ट्रंक को गाड़ी से लटका छोड़ दिया।

सूटकेस की दशा भी वही हुई।

अनिल के नयनों के संमुख अंधेरा धीरे-धीरे गहरा होता जा रहा था। एक विक्षिप्त प्रभाव उसपर चढ़ा आ रहा था। अपने ऊपर उसका अधिकार घटकर शून्य के निकट आ रहा था।

उसने द्वार खोल लिया और डंडा पकड़कर बाहर को लटक गया।

एक क्षण में उसने डंडा छोड़ दिया। वह आशा कर रहा था कि अब भूमि पर गिरा और मरा।

पर दूसरे क्षण उसने अनुभव किया कि वह डंडा छोड़ देने पर भी भूमि पर

गिरा नहीं है, लटकता रह गया है। सीढ़ी से उसके पैर टकराये। उनमें पीड़ा हुई, इसका उसे पता न चला।

उसने अपने पूर्ण बल से नीचे गिरने की चेष्टा की। पर वह ऊपर खींच लिया गया। संन्यासी ने उसे उठाकर पुनः गाड़ी में रख लिया और द्वार बंद कर दिया।

समस्त यात्रियों की दृष्टि उसकी ओर आ लगी। उसके लिए अब संन्यासी के निकट स्थान मिल गया।

प्रत्येक के मस्तिष्क में विचार थे, पर कोई बोला नहीं। अनिल ने अपना मुख हाथों में छुपा लिया। उसके जलते नेत्र नम हो आये।

कोई बोला नहीं, गाड़ी अंधकार को चीरती चली जा रही थी।

– ११ –

सात स्टेशन पार करने के पश्चात् जब संन्यासी गाड़ी से उतरे तो अनिल को अपने साथ लेते गये।

संन्यासी आश्रम के महंत तो न थे, पर स्थानापन्न थे। महंतजी उत्तर की ओर हिमाचल के अंक में तीर्थ-यात्रा करने गये हुए थे। आश्रम के निवासी उन्हें गुरुजी के नाम से संबोधित करते थे।

गुरुजी ने अनिल के शोक की अधिकता देखी और उसकी कथा सुनने की उत्सुकता होने पर भी अपने को रोका।

आश्रम में पहुँचकर उन्होंने अनिल को रामानंद के हाथों सौंप दिया।

रामोनंद आश्रम की अतिथिशाला के प्रबंधक थे। वे जितने हृष्ट-पुष्ट थे उतने ही हँस मुख। सागर के प्रकोप का समाचार वायु में व्याप चुका था। अनिल को देखते ही वे आधी कथा समझ गये।

अनिल की दशा विचित्र थी। यह सत्य है कि शोक का विनाशक झोंका निकल चुका था। पर फिर भी वह स्वस्थ न हुआ। अंधकार क्षीण अवश्य हो रहा था, पर उसकी मानसिक शक्तियाँ अपने स्वाभाविक तल पर नहीं आ पाई थीं। संध्या के झुटपुटे में वे मार्ग खोज रही थीं।

गुरुजी ने कहा —अनिल, सागर तुम्हारे गाँवों में लगभग दो मील भीतर तक आ गया था। इससे…।

'जी' और उसे सब चेहरे स्मरण आ गये। आत्मा गिरने लगी। मुख लटक गया।

'अनिल, परमात्मा ने हमें संसार में किसी कार्य से भेजा है। जब तक वही न कहे, हम जीना बंद नहीं कर सकते।'

'जी…।'

'हमें जो कुछ पीछे रह जायेंगे उनकी सहायता का प्रबंध करना चाहिए।'

'क्या मेरे संबंधी…?'

'नहीं अनिल! वह आशा अत्यंत अधिक है। तुम अब अच्युतानंद के साथ जाओ और पीड़ितों के लिए अन्न, वस्त्र, और धन एकत्रित करने में सहायता करो।'

अनिल को कुछ अच्छा न लग रहा था। वह चाहता था केवल पड़ा रहना, पर पड़े-पड़े उसका कष्ट बढ़ जाता था और तब वह चाहता था केवल मर जाना।

यह संभव न था।

तभी हरिहरानंद एक कापी लेकर आया।

'क्या है?' गुरुजी ने पूछा।

'पंद्रह सौ रुपये के धान…।'

अनिल ने सुना पंद्रह सौ रुपये। यह आश्रम पंद्रह सौ रुपये के धान खरीद सकता है। उसकी रुचि जगी। सुना—

'सेठ पदमचंद ने खरीदे हैं। कहता है, बारह सौ अभी ले लो और शेष पंद्रह दिन पश्चात्।'

'पंद्रह सौ के धान आश्रम ने बेचे हैं। आश्रम धनाढ्य है। और उसने भट्टाचार्य से रुपया उधार लिया है। पंद्रह सौ—'

और अनिल का शोक जैसे शीघ्रता से बैठने लगा।

पंद्रह सौ! इतना कहाँ से आता है!

एक ओर से कई कंठों की हँसी उसे सुनाई दी।

सागर-सरिता और अकाल

आश्रम की विशालकाय गाय बैठी हुई थी। बकरी का एक छोटा-सा बच्चा उसके ऊपर चढ़ गया था और इधर-उधर पीठ पर उछल रहा था।

बकरी अपने बच्चे द्वारा सबल गौ का यह अपमान देखकर बच्चे को उतारने के लिए मिमियाकर धमका रही थी। पर बच्चा सुनता न था। बकरी का साहस गाय की पीठ पर चढ़ने का होता न था। और गाय थी कि शांत बैठी थी। उसकी मौन सहानुभूति बच्चे की ओर जान पड़ती थी। बकरी जब बच्चे को नीचे उतारने की चेष्टा में उसके सामने जाती थी तो वह उसे डरा देती थी और बच्चे की उछल-कूद जैसे मुस्काती सह रही थी।

और बकरी थी कि भय के मारे मरी जा रही थी।

अनिल ने देखा और एक मुस्कान उसके ओठों पर आ गई। उसका ध्यान फिर वर्तमान संसार में लौट आया।

एक संन्यासी ने बकरी के बच्चे को पीठ पर से पकड़ लिया। गाय तुरंत उठ खड़ी हुई। और उसकी गोद में उस शावक को सूँघने लगी, मानों कि इतना उधम मचाने की प्रसन्नता में उसे चूम लिया हो।

सागर की तरंग आई और गई। संसार जो था, वैसा ही रहा।

अनिल ने गुरुजी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दूसरा अध्याय

सरिता

— १ —

अनिल इस दुर्घटना के पहिले तक जैसे नशे में जी रहा था। जीवन की आशाओं और स्वर्णिम कल्पनाओं ने उन्माद बनकर उसकी दृष्टि को सीमित कर दिया था। वह प्रसन्न था और सुख को ही जीवन का आदि-इति समझ बैठा था।

अब नशा टूटा तो उसके नेत्रों ने देखने की शक्ति पा ली। जो संसार उसे छोटा-छोटा, सुंदर-सुंदर दिखाई दे रहा था, अचानक विस्तीर्ण हो गया। अनिल को अनुभव हुआ कि उसका संसार वास्तविक संसार का एक कोना मात्र था। संसार की संपूर्णता के प्रति उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया।

तूफ़ान-पीड़ितों के सहायतार्थ सामग्री एकत्रित करने अनिल गौरांग संन्यासी के साथ निकटवर्ती नगर में गया। नगर में इस कार्य के लिए समिति बनी और स्वयं-सेवक दो-तीन की टोली में चंदा एकत्रित करने लगे।

अनिल गेरुवे वस्त्र पहिने चंद्रकांत चटर्जी के साथ एक बाजार में चंदा माँगने निकला। चटर्जी स्थानीय कालेज के बी० ए० के विद्यार्थी थे। पर विभिन्न तत्त्वों ने मिलकर अनिल को ही प्रमुख स्थान दिया था। दोनों में वही अधिक उत्तरदायी जान पड़ता था।

बाजार में रहीम मछलीवाले के सामने उन्होंने अपनी झोली फैलाई।

'तूफान-पीड़ितों के लिए···।'

रहीम ने उनकी ओर देखा—उसके नयनों में आँसू भर आये। बोला—बाबू, दो आने अभी स्वीकार करो; कल पहिले जाल में जितनी मछलियाँ आयेंगी सब तुम्हारी। क्या करूँ, जवान बेटा था। अल्लाह ने उठा लिया, वह होता तो पूरे दो दिन की मजदूरी देता।

उस अधेड़ के नयनों से आँसू टपटप गिर पड़े।

अनिल का हृदय भर आया। वे स्नेहसिक्त दो आने उसे दो सहस्र से भी अधिक मूल्यवान जँचे।

वे बाज़ार में दुकान दुकान घूमे। जहाँ गये वहाँ कितना भी थोड़ा हो, कुछ मिला ही। इस कार्य ने अनिल के हृदय को एक सांत्वना से भर दिया। वह माँगेगा, पीड़ितों-आहतों के लिए जीवन भर माँगेगा। दूसरों के लिए माँगने में कितना सुख और संतोष है?

निकटवर्ती कालेज के होस्टल में वे गये। प्रोफेसर गांगुली धूप में आराम कुर्सी पर बैठे सोच रहे थे—प्रोफ़ेसरी के स्थान पर यदि मैंने वकालत की होती तो प्रांत में न सही, कमिश्नरी में, कमिश्नरी में न सही, जिले में उनकी समानता का दूसरा न होता। प्रकृति ने जो उर्वर मस्तिष्क उन्हें प्रदान किया है, उसका सदुपयोग प्रतिवर्ष वही पुराने पाठ कक्षाओं को पढ़ाने से पूर्ण नहीं हो रहा है।

वे अपने अध्यापक जीवन से असंतुष्ट थे। न वहाँ कुछ नवीनता थी, न मन-बहलाव की सामग्री, रुपये का भी अभाव ही-सा था। साढ़े चार सौ भी कोई वेतन है!

अर्ध मीलित नेत्रों से वे सूर्य की ओर देख रहे थे कि अनिल और बनर्जी छात्रावास में प्रविष्ट होते दृष्टि-गोचर हुए। अनिल ने याचना की, 'तूफान-पीड़ितों के लिए।'

'क्या?'

'हम लोग तूफ़ान-पीड़ितों के लिए सहायता एकत्र कर रहे हैं। क्या आप कुछ...?'

'नहीं!' उन्होंने बलपूर्वक कहा।

'मनुष्य मनुष्य जिस सूत्र से बँधा है उसका व्यक्तीकरण समाज पर आनेवाली इन प्राकृतिक विपत्तियों द्वारा ही होता है। आप अपने हृदय में उन पीड़ितों के कष्ट को अनुभव कीजिए। ऐसा समय परमात्मा न दिखाये। यह अवसर बारंबार नहीं

आता। एक-दो रुपये से आपकी विशेष हानि न होगी और इतने से कम-से-कम एक जन की प्राण रक्षा हो सकेगी।' अनिल ने प्रयत्न किया।

प्रोफ़ेसर ने विस्फारित नयनों से अनिल की ओर देखा, बोले—उन लोगों की विपत्ति तुम अनुभव करते हो? आराम से चैन की बंसी बजाते हो, बहाना मिला बस निकले चंदा करने। पीड़ितों की व्यथा को जो मैं अनुभव कर रहा हूँ, वह तुम क्या कर सकते हो। मेरे एक निकटस्थ संबंधी इसमें ला पता हो गये हैं; बताओ, तुमने क्या खोया है?'

अनिल ने पूरे नेत्र फैलाकर उनकी ओर देखा। उनके नेत्र झँपके नहीं। अनिल की समझ में नहीं आया कि वह उनपर दया करे या क्रोधित हो।

बोला—महाशय, यह तो सहानभूति और श्रद्धा की बात है। आप कुछ दीजिएगा?

'असंभव है। मैं इतना शोकमग्न हूँ कि अन्य किसी विषय पर विचार करने में असमर्थ हूँ। क्या आप यहाँ से जाने की कृपा करेंगे?'

वे लोग आगे बढ़े।

चबेने की फेरीवाले ने कहा—बाबू, इस समय लाला को देना है। शाम को न होगा, आश्रम पर पहुँचा दूँगा।

वे मलिक साहब के यहाँ पहुँचे। उन्होंने, उन्हें अत्यंत आदर सहित कुर्सी दी।

बोले—ऐसा प्राकृतिक विप्लव बहुत वर्षों से देखने में नहीं आया। आप यह दस रुपये अभी स्वीकार कीजिए। और जो बनेगा, सेवा में उपस्थित करूँगा। जन-सेवा का अवसर क्या...।'

—२—

दूसरे दिन अनिल नगर के दूसरे विभाग में निकला।

चारे की मंडी में पहुँचा। छोटे-बड़े घास के ढेर; वृक्षों के पत्ते; कुट्टी।

अनिल ने देखा, विक्रेता निपट मज़दूर हैं, क्षीणकाय और अर्द्ध नग्न।

इनसे दान की क्या आशा की जाय। पर दूसरों के लिए माँगना है। कर्त्तव्य है, उसमें रुकना नहीं है।

एक वृद्धा घासवाली से कहा—मा तूफान-पीड़ितों के…

वृद्धा घूमकर खड़ी हो गई। बोली—'उनपर तूफान आ गया तो यहाँ हमपर क्यों नहीं आ गया। इस नरक से छुटकारा पाते। अभी कल ही तो मलिक बाबू ने चार पैसा फी गठरी पीड़ितों के लिए उघाया है। ना बाबा, यह टैक्स हम गरीबों के लिए बहुत है।' उसने मुख फेर लिया।

अनिल ने देखा कि चारा बेचनेवालों की संख्या दो सौ से कम न होगी। पर वह उनसे कैसे माँगे ?

साहु छकौड़ी ने कहा—स्वामीजी, दो बोरा चावल है। किसी को भेज दीजिएगा।

अनिल जब संध्या समय लौटकर आया तो उसका सिर घूम रहा था। उसने अपने इस कार्य में मानव की इतनी श्रेणियाँ देखी थीं कि मनुष्य क्या है, यह निर्णय करना उसके लिए कठिन हो रहा था।

उसने पता लगाया कि मलिक महाशय ने जो रुपये भेजने का वचन दिया था वह पूरा नहीं हुआ है। जो ज्ञानवान थे उन्होंने बताया कि आगे इसकी विशेष आशा नहीं है।

अनिल के मस्तिष्क में एक भँवर पड़ने लगी। मानवता का मापदंड क्या है ? मानव कौन है ? मलिक और रहीम में मानव किस ओर अधिक है।

मन ने कहा—मानव द्विपदगामी पंखरहित पशु के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अनिल यह मानने को प्रस्तुत न हुआ।

मानव है इन सबके बीच खोया हुआ, जिसे वह पकड़ नहीं पा रहा है।

रात्रि को स्वामी रामानंद आये। उन्होंने सूचना दी कि अनिल को गुरुजी ने और अधिक आवश्यक कार्य के लिए कुछ औषधियाँ लेकर शीघ्र बुलाया है।

सागर-सरिता और अकाल

– ३ –

सरिता-तट तक आश्रम की जो जागीर चली गई थी उसी पर इस समय विपत्ति आई थी।

प्रति वर्ष गुरुजी कुनैन अथवा अन्य आवश्यक औषधियाँ इस विभाग के लिए एकत्रित कर लिया करते थे और जनता में आवश्यकतानुसार बँटवा दिया करते थे। पर इस प्रकार की औषधियों का इस समय अभाव था और समाचार प्राप्त हुआ था कि मौसमी रोगों ने निकटवर्त्ती गाँवों पर आक्रमण कर दिया है। शीघ्र उपाय न होने से वे भयानक विपत्ति में परिवर्त्तित हो सकते हैं।

आश्रम का जो एक स्थायी छोटा-सा औषधालय इस प्रांत में था उसमें एक डाक्टर और एक कंपाउंडर रहते थे। गुरुजी ने अनिल तथा एक वैद्य को अब देशी औषधियों सहित उनके सहायतार्थ भेजा।

गाँव के बाहर एक अत्यंत रमणीक स्थान पर यह औषधालय था। स्थान इतना रमणीक था कि यदि जनता को भोजन उचित मात्रा में और स्वास्थ्य के सब तत्त्वों से युक्त मिलता तो दो दिन वहाँ आकर बैठने से प्रत्येक रोग दूर हो सकता था।

आश्रम देखकर अनिल को अपनी मौसी का घर स्मरण आ गया और स्मरण आ गई सुहासिनी।

पर सुहासिनी शब्द का इस समय क्या अर्थ था? सुहासिनी शून्य थी। यह शब्द रिक्त और व्यर्थ एक बिंब मात्र था।

अनिल इस वातावरण में मुग्ध हो गया। उसे लगा कि उसकी आत्मा उन्मुक्त हो गई है। वह आश्रम से बाहर निकल पड़ा।

गर्मी विशेष न थी। आकाश में बादल के छोटे-छोटे टुकड़े इधर-उधर उड़ रहे थे और वायु मंद-मंद गमन कर रही थी। अनिल ने संमुख दृष्टि डाली और पाया कि पृथ्वी कहीं रिक्त नहीं है। वह हरी है, शस्यश्यामल है, अत्यंत नयनाभिराम रूप से शस्यश्यामल है। धानों के खेत, हरे-हरे केले, ताड़ के वृक्ष! इतनी हरियाली! अनिल अपने को भूल गया। स्थिर खड़ा हो गया।

सागर-सरिता और अकाल

बाईं ओर से सरिता के लहलहाने का शब्द आया। वृक्षों और खेतों में वायु के हल्के शब्द के साथ मिलकर वह एक विचित्र रहस्यमय वातावरण की सृष्टि कर रहा था। प्राणों पर उसका प्रभाव विचित्र मोहक होता था।

अनिल सरिता-तट की ओर चल पड़ा। एक टीले पर खड़ा होकर उसने देखा, दूर तक फैली लहराती जलराशि जो एक ओर से आती और वैसी ही लहराती दूसरी ओर को चली जाती थी। नदी के तट पर लंबी-लंबी घासें, कास उठी थीं और उनके बीच बँधी दो डोंगियाँ दिखाई दे रही थीं।

जल; अनिल जानता था कि जो यह बहता हुआ जीवन है, वह वैसो ही प्रवाह-शील मृत्यु भी है। अनिल को लगा कि उसके भीतर भी जीवन के प्रति जितना मोह है उतना ही आकर्षण मृत्यु के लिए है।

उसका हृदय जैसे फूल उठा। उसे अनुभव हुआ कि उसकी शक्तियाँ शिथिल हो रही हैं। और वह विचित्र अबाध रूप से इस विशालकाय अजगर के नयनों से मोहित उसकी ओर आकर्षि हो रहा है।

आकांक्षा जगी। वह जाकर जल स्पर्श करे। पर तभी उसे लगा कि जल-स्पर्श करते ही उसमें पानी में उतर जाने की असंयत इच्छा उठ खड़ी होगी।

वह अपने से भयभीत हो गया। उसे लगा कि वह सरिता जैसे बलात् उसे तिल-तिल अपनी ओर आकर्षित कर रही है। उसने अपने पैरों की ओर देखा। वास्तव में वह एक गज के लगभग खिंच गया था।

वह घबराकर पीछे हटा। कांस के एक पौधे को पकड़ा। उसकी पत्ती टूटकर उसके हाथ में रह गई। इतना होने पर भी उस चाँदी-सी चमकती सलवटोंदार विस्तृत चादर पर से वह अपने को पूर्णतः नहीं हटा सका। वह जैसे वहीं बँधकर रह गयी।

उसने भयभीत हो नेत्र बंद कर लिये और घूम गया। नदी के किनारे-किनारे ऊपर की ओर दृष्टि डाली।

कोई दो फर्लांग दूर मछुओं की झोंपड़ियाँ।

वह उनकी ओर चल पड़ा। भय से अब भी उसका हृदय डगमगा रहा था।

— ४ —

झोपड़ियाँ जैसी होती हैं, वैसी ही थीं। टूटी जीर्ण और वैसे ही थे उसके निवासी।

पुरुष प्रायः मछलियाँ बेचने गये थे।

एक लड़की ने आकर उसे प्रणाम किया। बोली—गुसाईं, अम्मा की तबियत बहुत खराब है।

वे लोग आश्रम के प्रत्येक गेरुए वस्त्र धारी को चिकित्सक समझते थे।

अनिल ने सोचा—वह क्या करे? वह इस विषय में कुछ नहीं जानता। वह रोगिणी को देखकर क्या करेगा?

उसने बालिका के मुख पर दृष्टि डाली। निरीह करुण भिक्षा। जैसे कि अनिल के देख लेने से उसकी मा बच ही जायगी।

उसे अपने ऊपर दया आई और अपने से अधिक उसके ऊपर।

'चल।'

बालिका का मुख खिल उठा। एक हल्की संतुष्ट मुस्कान उसपर आ गई।

अनिल को समझ में नहीं आया कि यह पारितोषिक पाने के लिए उसने क्या किया है।

नदी की ओर मुख किये आठ झोपड़ियाँ खड़ी थीं। छतों में, अधिक शुद्ध होगा छप्परों में, जो छेद हो गये थे वे ताड़ के पत्तों से ढँके थे, जो वर्षा और सूर्य के प्रभाव से सूखकर, गलकर उससे चिपक गये थे।

उनके संमुख मछुओं के ऊदे रंग के जाल फैले हुए थे। सड़ी हुई मछली की बू सड़े पत्तों और कीचड़ की गंध के साथ मिलकर वातावरण को प्रायः असहनीय बना रही थी।

बालिका एक कोठरी के संमुख जाकर खड़ी हो गई।

'अम्मा! मैं गुसाईं को तुम्हें देखने...।' उसने भीतर पड़ी रोगिणी को सूचना दी। उसने यह कार्य अपने विचार से किया था।

रोगिणी जैसे घबरा उठी। गुसाईं उसकी झोंपड़ी में?

सागर-सरिता और अकाल

अनिल ने झुककर झोंपड़ी में प्रवेश किया। देखा कि रोगणी उठकर बैठने का प्रयत्न कर रही है। उसका पंजर मात्र शेष रह गया है। वह घबरा गया। बोला—

'तुम लेटो मा!'

नारी के कानों में अमृत-से वे शब्द पड़े। गुसाईं नें उसे इतने प्यार से मा कहकर संबोधित किया है। वह लेट गई। अनिल जाकर उसके निकट खड़ा हो गया। और दृष्टि उठाकर झोंपड़ी में देखा।

उसमें संध्या का अंधकार था। टटियों के छेदों में से वायु भीतर चली आ रही थी। रोगिणी बिलकुल सूख गई थी। जान पड़ता था कि कई मास से बीमार है। उसने अपनी भीतर धँसी आँखों से अनिल की ओर देखा। वे नम हो आईं।

उस झोंपड़ी में एक वस्त्र भी संपूर्ण उसे नहीं दिखाई दिया। बिछावन, उढ़ावन, धोती, कुर्ते सभी फटे और पेवंद लगे।

अनिल एक बार शंकित हुआ, एक सिहरन उसके शरीर पर आकर निकल गई।

उसने रोगिणी की नाड़ी अपने हाथ में ले ली, उससे जिह्वा दिखाने को कहा।

रोगिणो का हृदय आशा से भर आया। बोली—मुझे मरने से डर नहीं लगता गुसाईं! पर यह बच्ची है। इसका विवाह कर पाती, फिर...। बेटा है वह कमा-खा लेगा। बस, इस बार बचा दो गुसाईं! उसने अनिल के संमुख इतनी विनीत प्रार्थना की जैसी कि अल्लाह के संमुख भी न की होगी। वह इस अंतिम सहारे से खूब चिपट जाना चाहती थी।

'गुसाईं, तुम्हें बड़ा पुण्य होगा?'

अनिल विचित्र परिस्थिति में पड़ गया। वह सामर्थ्य-हीन अनभिज्ञ। वह परम-पिता के कार्यों में क्या बाधा डाल सकता है।

'मा, चिंता न करो। तुम्हारी अवस्था ठीक है, मैं आश्रम से औषधि भिजवा दूँगा।'

'बेटी, अब्दुल को बुलाव तो।'

'तेरह वर्ष का एक युवा भीतर आया और उसे रोगिणो ने औषधि लाने के लिए गुसाईं के साथ कर दिया।

'तुम्हारा भला होगा बेटा, जुग-जुग जियोगे।'

रोगिणी की बुझती आशा पुनः जीवन पकड़ गई।

अनिल झोपड़ी से बाहर निकला तो सात-आठ बालक-बालिकाओं ने उसे घेर लिया। वह उनके लिए आश्चर्य का विषय था। इससे पहले कभी कोई गुसाईं रोगी देखने उस चलती-फिरती बस्ती में नहीं गया था।

एक युवती ने कहा—'गुसाईं!' और अनिल ने देखा कि चटाई पर एक झोपड़ी के संमुख एक पुरुष लेटा हुआ है। बार-बार खाँस उठता है।

'क्या?'

और युवती ने उस पुरुष की ओर संकेत किया। अनिल उस ओर बढ़ा। सबने मार्ग छोड़ दिया।

अनिल को अचानक अनुभव हुआ कि वह महान है।

उसने एक नवीन दृष्टि अपने चारों ओर डाली। सबके चेहरे उसने देखे। मन में उठा ये सभी तो रोगी हैं। किसे-किसे देखूँ। तभी एक लड़की खाँसते बैठकर कै करने लगी।

अनिल उसकी ओर घूमा।

युवती ने कहा—उसे कुछ नहीं होगा गुसाईं! वह तो जबसे जन्मी है तभी से ऐसी है। दो चार दिन ठीक रहती है, फिर खाँसने लगती है और कय हो जाती है।

अनिल ने देखा, एक लड़का उसके अत्यंत निकट है। उसका मुख लाल हो आया है। शरीर काँप रहा है। और वह नंगा उसके पीछे-पीछे आ रहा है।

अनिल ने हाथ बढ़ाकर उसका हाथ पकड़ लिया। अनुभव किया कि शरीर तप रहा है।

'इसे ज्वर है, लिटा दो।'

उसकी मा ने गुसाईं की ओर देखा। और बालक को अपने निकट खींच लिया।

अनिल ने देखा कि नाव उलट जाने के कारण जो चोट उस मछुवे के पैर में थोड़ी-सी आ गई थी वह अब निरंतर परिश्रम के पश्चात् तीन मास में बढ़कर आधे

पैर में फैल गई है। पैर सूज गया है। उसमें पीप पड़ गई है। और व्यक्ति सूखकर काँटा-सा हो गया है। इसके अतिरिक्त और कोई विशेष व्याधि उसे नहीं दिखाई दी।

'यह तो चीर-फाड़ का काम अस्पताल में ही हो सकेगा। शहर ले जाना होगा।'

युवती और रोगी दोनों के मुख उतर गये।

अनिल उसके निकट से चल दिया। निवासी आदरणीय अंतर से मार्ग छोड़कर खड़े हो गये। अनिल अपने में मग्न, एक नवीन चिंता में चला जा रहा था। इतनी पीड़ा, इतनी वेदना क्यों है? क्या वे लोग इनकी कुछ सहायता नहीं कर सकते?

यकायक वह जागा। उसे लगा कि किसी ने उसके संमुख से कोई वस्तु हटाई है। उसने दाहिनी ओर दृष्टिपात किया। एक युवती ने एक काँटेदार सूखी मार्ग में पड़ी शाखा को हटाकर दूसरी ओर फेंक दिया है, पर इस क्रिया में वह शाखा उसी के वस्त्र में उलझकर रह गई है। युवती उसे लटकते छोड़कर गुसाईं की ओर देखती रही। अनिल ने एक बार देखकर नेत्र फेर लिए और आगे बढ़ गया।

वह जब कुछ दूर चला गया तो नारियों के हँसने का स्वर पीछे से उसके कानों में पहुँचा। घूमकर उसने नहीं देखा। पर सोचा—इतने रोग, अभाव और दैन्य के बीच भी यह लोग हँस सकते हैं। अथवा यह है वह जो इनके संतोष की हँसी उड़ा रहा है।

— ५ —

आश्रम के डाक्टर और वैद्य ने अनिल का अनुभव सुना। 'तुम अभी बालक हो।' वैद्य संन्यासी ने कहा।

'परंतु वहाँ वास्तव में कई रोगियों की अवस्था शोचनीय है।'

'हो सकता है। पर हम लोग आश्रम से बाहर जाकर औषधि नहीं बाँटेंगे। वे यहाँ आयें।'

'आने की सामर्थ्य यदि होती...।'

'यदि हम लोग घर-घर जाकर रोगियों को देखने और औषधि बाँटने लगें तो आश्रम का चिकित्सालय बंद करना पड़ेगा।'

अनिल इस तर्क से सहमत न हुआ। बोला—यदि आप लोग नहीं जा सकते तो मुझे दो-चार मोटी-मोटी दवाइयाँ दे दीजिए। मैं जैसे बनेगा सही-गलत दे दूँगा। दवा के नाम से राख भी गुणकारी हो जाती है।

आश्रम-वासियों ने समझाया कि सार्वजनिक कार्य करने का अर्थ यह नहीं है कि वे लोग घर-घर बीमार खोजते फिरें।

अनिल ने नहीं माना। जिन्हें वह वचन दे आया है उन्हें एक बार तो औषधि ले जाकर वह देगा ही। उनके इतने विश्वास और इतनी श्रद्धा का वह अपमान करेगा?

वैद्यजी ने बुखार खाँसी आदि की कुछ औषधियाँ उसे दे दीं और गुरुजी को लिख दिया कि अनिल आवश्यकता से अधिक उत्साही है। इसलिए चिकित्सालय के अधिक काम का नहीं है।

अनिल ने एक छोटे-से बक्स में सब औषधियाँ रखीं। कहीं भूल न हो जाये, इसलिए बड़े मनोयोग से उन पर नाम लिखे और प्रातःकाल का अस्पताल का काम समाप्त कर, भोजन कर, बक्स हाथ में लटका मछुवों की बस्ती की ओर चला गया।

बालकों ने देखते ही शोर मचाया, 'गुसाइँ आये, गुसाइँ ...।'

और इस कोलाहल से वही युवती जिसने काँटा उठाया था, दौड़कर झोपड़ी से बाहर आई, और गुसाइँ की ओर एकटक दृष्टि से देखने लगी।

गुसाइँ सामने पड़ी एक शिला पर बैठ गये। कल की औषधि से रोगिणी को लाभ हुआ था। वह खाट पर बैठकर गुसाइँ को सभी प्रकार के आशिष दे रही थी।

अनिल ने बक्स खोलकर सभी रोगियों को औषधि बाँटी।

मुबारक को उसने नगर में अस्पताल भिजवाने का निश्चय कर लिया। उसके कोई जीवन का मार्ग है तो वही।

आशीष लेकर जब चला तो उस काँटेवाली युवती ने काँपती हुई वाणी से कहा—'गुसाइँ!'

अनिल ने उसको ओर देखा।

वह बोली नहीं, नेत्र नीचे कर लिए। अनिल उसकी झोंपड़ी पर पहुँचा। उसने अपनी वृद्ध सास के नयन उसे दिखाये।

'अम्मा को बहुत कम दीखता है।'

आँखों का चिकित्सक भी बनना पड़ेगा, यह अनिल को पता न था। पर जब वह चिकित्सक ही बनने चला है, तो पीछे क्यों हटे।

देखा, बोला—आँखों की दवा तो मेरे पास नहीं है। हाँ, कल लेता आऊँगा।

'इस समय यदि मैं आपके साथ चलूँ तो दिला दीजिएगा?'

अनिल एक सोच में पड़ गया। अभी इतनी औषधि ही उन्होंने बड़ी कठिनता से दी है। आँखों का विषय है। भगवान, तू ही सहायता कर।

तभी बुढ़िया बोली—अल्लाह तेरा भला करेगा बेटा! करीम की बहू, अपने बेटे को बहू के साथ भेज दे। अल्लाह तेरी उम्र बढ़ावे।

करीम की बहू का पाँच वर्ष का कादिर बहू के साथ जाने को खड़ा हो गया। वह मार्ग में खूब उछलेगा। उधम मचायेगा। बोला—'चाची मैं चलूँगा तुम्हारे साथ!'

बहू मुस्करा पड़ी।

मार्ग में अनिल ने पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है?'

'ज़ैनब' एक सकुच के पश्चात् उसने कहा।

'यह कौन?'

'मेरी सास है।'

'पति।'

'भरती हो गये हैं! पता नहीं कहाँ हैं। तीन महीने पहले तक दस रुपये महीने आते थे, पर अब…।'

'कोई और?'

'हाँ, छोटा देवर था। अब नहीं रहा। उसी के शोक में अम्मा की आँखें जाने को हो रही हैं।'

आगे-आगे गुसाईं और पीछे-पीछे ज़ैनब और उसके पीछे कादिर।

ज़ैनब की दृष्टि गुसाईं के शरीर पर लगी थी। कैसा सुन्दर शरीर है!

गर्दन का सीधापन, कंधों की चौड़ान और कमर, ज़ैनब को लगा कि वह बिलकुल नारियों की-सी है। गुसाईं किसी बड़े घर का लड़का है। यह उसे विश्वास हो गया। यह हिंदू कैसे हैं जो ऐसे लड़कों को दूसरों की सेवा करने भेज देते हैं।

अंत में उसकी दृष्टि उसके चरणों पर जम गई। और वह उनके उठने-पड़ने में इतनी खो गई कि अपने आप थोड़ी देर में उसके पैर चरण-चिह्नों पर पड़ने लगे। इस प्रकार उन चिह्नों द्वारा गुसाईं का स्पर्श या उसका शरीर कंटकित हो गया।

वैद्यजी से विनती कर उसने एक अंजन ज़ैनब को दिलवा दिया। उसने जैसे कृतज्ञता से भरकर गुसाईं के पैर पकड़ लिए। उसके हाथ काँप रहे थे, यह अनिल ने अनुभव किया।

वह संतुष्ट, विचारमग्न लौट गई।

— ६ —

गुरुजी ने अनिल को लिखा—

अच्छा हो यदि तुम चिकित्सालय के कार्य-क्रम में सहायता दे सको। तुम्हारे जीवन का यह समय सीखने का है; तुम्हारे साथी सब प्रकार सुयोग्य, कुशल और विश्वसनीय हैं? आशा है, तुम्हें मेरी इच्छा से सहानुभूति होगी और भविष्य में चिकित्सालय में तुम्हारा कार्य प्रशंसनीय होगा।

इसके उत्तर में अनिल ने गुरुजी को एक लंबा पत्र संपूर्ण विवरण सहित लिखा। निवेदन किया कि जब तक चिकित्सा का प्रबंध रोगी के घर पर पहुँचने का नहीं किया जाता, चिकित्सालय से पूर्ण और वास्तविक लाभ जनता को नहीं हो सकता। चिकित्सालय को अनिवार्य स्वास्थ्य-निरीक्षक के रूप में होना चाहिए।

— ७ —

गाँव में प्रसन्न घोष का पुत्र बीमार था। घोष महाशय तीन वर्ष हुए संसार से बिदा ले गये थे। पीछे छोड़ गये थे, पत्नी विमला, बारह वर्षीय नरेश और पाँच वर्ष की लता।

नरेश दो मास से ज्वर में पड़ा था। प्रारंभ में चिकित्सालय से औषधि ले जाता था, पर कोई लाभ न हुआ। अवस्था बिगड़ती गई। चिकित्सालय की चिकित्सा बंद हो गई। पड़ोसियों के बताये नुसखों का प्रयोग होने लगा। गंडा-ताबीज़ की महिमा घोष महाशय बहुत कुछ खंडित कर गये थे। वह अब पुनः प्रतिष्ठित होने लगी।

दौड़-धूप बढ़ गई और उसी के साथ रोग भी। विधवा घोष-पत्नी को लगा कि उसका जीवन-आश्रय धीरे-धीरे परिनिश्चित रूप से डूब रहा है।

इन्हीं दिनों अनिल ने उस ओर का चक्कर लगाया। रोगी की उपस्थिति जान अपनी सहायता अर्पित की। लता ने सूचना दी—'माँ एक गुसाईं, भैया को देखने आये हैं।'

विमला आँसू बरबस रोके नरेश के ऊपर से मक्खियाँ उड़ा रही थी। न जाने कैसे कितने दिन पश्चात् उसके हृदय में आशा का भाव उदित हुआ।

गुसाईं देखने आये हैं। बिना बुलाये देखने आये हैं। अवश्य ही भगवान ने उन्हें भेजा है। क्या पता भगवान स्वयं ही गुसाईं बनकर आये हों।

जब स्वयं भगवान चिकित्सक हों तो नरेश के लिए चिंता का कोई अवसर नहीं है।

सुख का जैसे तूफान उसपर टूट पड़ा। पति की मृत्यु के पश्चात् से इतनी सांत्वना, इतना सुख उसे कभी नहीं प्राप्त हुआ था।

शीघ्रता से उठकर वह बाहर आई और अनिल के चरणों में गिर पड़ी।

'भगवान, मेरे नरेश की रक्षा कीजिए।'

अनिल ने कहा—मा, भगवान अवश्य रक्षा करेंगे। देखूँ तुम्हारा नरेश कैसा है?'

अनिल की वाणी में इतना आत्म-विश्वास था कि उसने विमला के काँपते हृदय को स्थैर्य प्रदान किया।

हाँ, अब उसका नरेश अवश्य बच जायेगा। जब मायापति स्वयं माया के विरुद्ध हों तो रोग-शोक का अस्तित्व कैसा?

अनिल ने नरेश को देखा।

मा ने कहा—ओ लता, गुसाइंजी के लिए आसन ले आ।

अनिल ने यथाज्ञान रोगी की परीक्षा की। दिखाने के लिए सभी कुछ देखा। क्या-क्या चिकित्सा हुई है? पूछा और अपने बक्स में से औषधि निकालकर दी।

बोला—मा, कल इसी समय फिर आऊँगा। तुम चिंता न करो। भगवान सब कृपा करेंगे।

विमला का हृदय भर रहा था, वह नयनों से फूट निकला। बोली—लता, गुसाईंजी के लिए जलपान ले आ बेटी। और अनिल से कहा—जब इनके पिता जीवित थे तो···इससे आगे वह बोल न सकी।

लता एक तश्तरी में दो संदेश और एक गिलास में पानी ले आई।

अनिल ने कहा—मा, इसकी आवश्यकता नहीं।

विमला बोली—गुसाईं, तुम्हें भगवान ने मेरे यहाँ भेजा है। तुम कोई भी हो, मैं बिना कुछ खिलाये जाने न दूँगी।

लता ने कहा—गुसाईं, ये संदेश बड़े अच्छे बने हैं।

अनिल ने उठने का उपक्रम किया। विमला मार्ग में खड़ी हो गई।

'गुसाईं', क्षमा करो। बिना जलपान किये, तुम्हीं बताओ, मैं तुम्हें कैसे जाने दूँ?

अनिल का हृदय भर आया। उसने नरेश का हाथ अपने हाथ में पकड़ लिया। भगवान से माँगा कि नरेश का रोग उसके शरीर में आ जाये। यदि मरना है तो वह जो संसार में व्यर्थ है, मर जाये और नरेश अपनी मा और बहिन के लिए बच जाये।

उसने जलपान किया। नरेश के शीश पर हाथ रख पूर्ण प्राणों से उसे स्वस्थ होने का आशीष दे वहाँ से चल पड़ा।

–८–

मछुओं की बस्ती में वह रोगिणी बच गई। रहमान को उसने नगर में भिजवाने का प्रबंध कर दिया। वहाँ डाक्टरों ने उसकी टाँग काट डाली, पर वह बच गया। मछुओं का विश्वास अनिल पर जम चला।

ज़ैनब ने आत्मीय दृष्टि से अनिल की ओर देखा। कंपित हृदय और कंठ से कहा—गुसाईं, अम्मा की आँखें···

अनिल उसके साथ गया।

'अम्मा, अब क्या हाल है ?' अनिल ने पूछा।

'मुझे तो खास फ़ायदा नहीं दिखाई देता, बेटा।'

ज़ैनब बोली—'फ़ायदा तो है, यह तो अम्मा ठीक से लगातीं कब हैं ?'

'हाँ बेटा, यही होगा। अब मैं बुढ़िया आँखों में आँजन लगाती क्या अच्छी लगूँगी ? वे तो मुँदनी ही हैं, मरने पर न सही, दो दिन पहले सही।'

ज़ैनब ने अनिल को अपनी झोंपड़ी में एक आसन पर बैठा दिया। अनिल ने देखा, जैसे कि जैनब ने उसी के लिए इस झोपड़ी का साज शृंगार किया हो। उसने देखा कि दरिद्रता में भी ज़ैनब ने व्यवस्था स्थापित कर दी है।

उसे बैठाकर ज़ैनब बोली—गुसाईं, तुम हमारे हाथ का बनाया खाओगे नहीं। मैं तुम्हें क्या दूँ। यह दो रोहू हैं।

उसने केले के पत्ते में लिपटी दो बड़ी-बड़ी मछलियाँ उसके संमुख रख दीं और स्वयं एक ओर खड़ी हो गई।

बालक द्वार पर एकत्रित थे।

'मैं इनका क्या करूँगा ?' अनिल ने कहा—तुम जानती हो कि हम आश्रम में माँस नहीं खाते। उसने ज़ैनब की ओर देखा।

उसे लगा कि ज़ैनब का चेहरा उसका वाक्य सुनकर उतर गया है।

'गुसाईं, मैंने इन्हें तुम्हारे लिए ही पकड़ा है।' इतना कह वह मौन हो रही।

अनिल अधिक सह न सका। उसने मछलियों को हाथ में उठा लिया।

ज़ैनब के मुख पर एक हल्की मुस्कान आ गई।

— ९ —

अनिल ने यह मत्स्यदान स्वीकार तो कर लिया, पर उसे लेकर वह आश्रम में प्रवेश नहीं पा सकता। उसे लता का ध्यान आया और वह मछलियाँ उसके घर देने चल पड़ा।

नरेश का स्वास्थ्य अब सुधर रहा था। वह कई बार उसके घर आ-जा चुका था।

उसने एक दिन विमला के मुख को तनिक ध्यान से देखा। उड़ता-उड़ता उसे लगा कि उसकी नासिका और उसके नयन उसकी मौसी के जैसे हैं। उसने कल्पना में बारंबार मौसी और नरेश की मा के चित्र निर्मित किये। उन्हें ध्यान से देखा, उनकी तुलना की।

अज्ञात रूप से एक क्षण वह इस निश्चय पर पहुँच गया कि लता की मा की मुखाकृति बिलकुल उसकी मौसी जैसी है।

द्वार पर पहुँचकर अनिल ने पुकारा—'लता!'

लता थी नहीं। विमला बाहर आई। बोली—'आओ गुसाईं।'

'नरेश का जी अब कैसा है?' अनिल ने घर में प्रवेश करते हुए पूछा।

'तुम्हारी कृपा···।'

अनिल जाकर रोगी के निकट बैठ गया। मछली भी विमला की ओर सरकाते हुए बोला—मा, आज एक मछुए ने यह भेंट दी है। मैं अस्वीकार नहीं कर सका। आश्रम में हम उसका उपयोग नहीं कर सकेंगे, इसी से यहाँ लेकर आया हूँ।

विमला ने अनिल की ओर देखा। बोली—तो कब बनाऊँ?

'मा, आश्रम-निवासी होने के कारण मत्स्यभक्षण की सुविधा मुझे प्राप्त नहीं। श्रद्धापूर्वक अर्पित यह भेंट व्यर्थ न जाये इसी से···।'

वह विमला के मुख की ओर देखने लगा। मौसी के कल्पित मुख के साथ एक तुलना उसके मन में चल निकली। उसके मुख पर कुछ भाव आ गये, तभी नरेश की मा ने पूछा—'गुसाईं, क्या, बात है?'

अनिल सकुचाया।

विमला ने आग्रह किया—'कहो न?'

अनिल बोला—मा, तुम्हारी मुखाकृति बिलकुल मेरी मौसी जैसी है। वे मुझे बहुत प्यारी थीं। अनिल द्रवित हो गया।

'आजकल कहाँ हैं वे बेटा!'

'सागर के गर्भ में।'

विमला का हृदय काँपा। प्रश्न किया—और तुम्हारे माता-पिता?

'वे भी।'

अनिल के आँसू रुके नहीं। मा की उपस्थिति में वह रो दिया। विमला ने उसका शीश अपनी गोद में ले लिया। परिवार के शोक में अनिल इस प्रकार कभी नहीं रोया था।

शांत होने पर विमला ने पूछा—बेटा, बता जाओ मछली तुम्हारे लिए कब तैयार कर रखूँ।

'नहीं मा, मैं नहीं खा सकूँगा। तुम जैसा उचित समझो इसका उपयोग करो।'

स्थानीय आश्रम के प्रबंधक डाक्टर वाणीभूषण थे। उनके पिता सरकारी नौकर थे। बाल्यावस्था से जवानी तक उन्होंने सरकारी नौकरी के स्वप्न देखे थे।

इंट्रेंस में एक बार फ़ेल होकर जब वे एफ०ए० में दो बार पहले फ़ेल हुए तो उन्हें अनुभव होने लगा कि देशसेवा कहीं सुंदर व्यवसाय है। तीसरी बार जब वे फ़ेल हुए तो उन्हें विश्वास हो गया कि देशसेवा से बढ़कर मानव-जीवन सार्थक करने का उपाय दूसरा नहीं।

विधवा माता की मृत्यु होते ही उन्होंने पितृ-ऋण के परिवर्तन में अपनी संपत्ति साहूकार को दे दी और स्वयं विरक्त-वृत्ति धारण कर ली।

डेढ़ वर्ष के निरंतर अध्ययन के पश्चात् वे उपाधिप्राप्त होमियोपैथिक डाक्टर बन गये।

वैद्य नीलरतन उनके सहकारी थे, उन्होंने चार वर्ष अथक परिश्रम करके आयुर्वेद की शिक्षा पाई थी। पर वे डाक्टर न बन सके थे। इसी आश्रम में उनका स्थान डाक्टर वाणीभूषण से नीचा था।

जिस समय वे आश्रम में प्रविष्ट हुए थे, दोनों का पद समान था। वाणीभूषण उसके पश्चात्, डेढ़ वर्ष में विद्वान् और डाक्टर हो गये। नीलरतन चार वर्ष अध्ययन करके रूढ़िवादी और अगतिशील ही अधिक बने। फलतः—डाक्टर का भार बढ़ा और उनका घटा।

सागर-सरिता और अकाल

वाणीभूषण होमियोपैथिक के डाक्टर ही न थे, वे यौगिक साहित्य और उसकी क्रियाओं पर भी अधिकार रखते थे। उनके निवासगृह में स्वामी विवेकानंद का एक विशालकाय चित्र लगा था। वे वस्त्र सदा उन्हीं की भाँति धारण करते थे।

उनका कथन था कि छोटी-छोटी बातों में बड़ों का अनुसरण करना बड़प्पन को अपने निकट बुलाने का सबसे सरल और सफल उपाय है।

वे आश्रम में स्वामीजी के नाम से संबोधित किये जाते थे। और वैद्यजी महा-राजजी के नाम से।

स्वामीजी ने अनिल को बुलाया और बैठने का संकेत किया।

कमरे में दरी थी, उसके ऊपर चाँदनी। एक ओर दीवार के सहारे सुंदर गलीचा बिछा था। उसके दाहिने सिरे पर स्वामीजी विराजते थे। उनके संमुख एक छोटा डेक्स था और दाहिनी ओर घूमनेवाला पुस्तक-रेक।

अनिल ने उत्सुक नयनों से स्वामीजी की ओर देखा और स्वामीजी ने अत्यंत गंभीर मुद्रा से उसकी ओर। उन्होंने एक पत्र डेक्स में से निकालकर उसकी ओर बढ़ा दिया।

पत्र गुरुजी का था। अनिल को ज्ञात हुआ कि गुरुजी ने उसके ऊपर स्वामीजी को पूर्ण अधिकार दे दिया है। उसे चाहिए कि विनीत नियमित सदस्य की भाँति दल में रहकर दलपति के आदेशानुसार अपने उद्देश्यों की सफलता के लिए कार्य करे।

'पढ़ लिया तुमने ?' स्वामीजी ने गंभीर स्वर से पूछा।

'जी।'

'गुरुजी ने मुझे स्पष्ट लिख दिया है कि तुम्हारी विचित्र भावनाओं और इच्छाओं द्वारा मैं आश्रम के किसी कार्य में बाधा न उत्पन्न होने दूँ।'

अनिल चुप रहा।

'इसलिए मैं अब घर-घर घूमकर तुम्हारे औषधि-वितरण का अंत करना चाहता हूँ।'

'परंतु ...'

'कोई परंतु नहीं।'

'जनता को मेरी औषधि से लाभ ही हुआ। आश्रम की प्रतिष्ठा और उसके प्रति लोगों की सद्भावना बढ़ी है।'

'जो रोगी है उसे औषधि लेने यहीं आना चाहिए। समझे और तुम न वैद्य हो न डाक्टर!'

'स्वामीजी, जो औषधियाँ मैं बाँटता हूँ उनसे यदि किसी को लाभ न होगा तो हानि भी न होगी। लाभ हो रहा है यह प्रत्यक्ष है। जब लगभग प्रत्येक व्यक्ति मलेरिया-आहत है तो उससे आने की आशा कैसे की जा सकती है?'

'वह हमारा दृष्टिकोण नहीं है। तुम्हें भूलना न चाहिए कि हम केवल चिकित्सालय नहीं हैं, ज़मींदार भी हैं।'

'तब तो हमारा कर्त्तव्य अपनी प्रजा के प्रति…।'

'मुझे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की शिक्षा तुमसे नहीं लेनी होगी। सार्वजनिक औषधालय कैसे चलाये जाते हैं, इसका अनुभव तुमसे अधिक मुझे है।'

'पर इससे हमारा लक्ष्य तो पूरा नहीं होता?'

'लक्ष्य गाँव का निरोग होना नहीं है। औषधालय का चलते रहना है। तुम्हें इस विषय में चिंता की आवश्यकता नहीं है।'

'स्वामीजी!'

'यहाँ ऐसा ही होता आया है। मैं किसी की गड़बड़ी नवीनता के नाम पर…।'

'यदि इसी उद्देश्य से हम यहाँ बैठे हैं तो यह पाखंड है। आत्म-प्रतारणा है।'

'मैं यह सुनने को प्रस्तुत नहीं हूँ। यदि तुम मेरे अधिकार में कार्य नहीं कर सकते तो मैं गुरुजी को लिख दूँ, तुम वापिस जा सकते हो।'

अनिल चुप रहा।

'अब तुम्हें औषधि बाँटने जाने की आवश्यकता नहीं है।'

'परंतु जो लोग मुझसे औषधि लेकर लाभ प्राप्त कर रहे हैं उनके पास औषधि न पहुँचने से…।'

'जिसे आवश्यकता होगी, आप आयेगा। मैं जो कहता हूँ वह करो।'

अनिल को यह सब बहुत अच्छा न लगा। एक बार लौटकर गुरुजी के आश्रम में जाने की इच्छा हुई। पर कहा—जैसी आपकी इच्छा हो।

'जाओ।'

अनिल विचारमग्न उठकर वहाँ से चला गया।

— ११ —

शस्त्र-चिकित्सा का आश्रम में विशेष प्रबंध न था। साधारण फोड़े-फुंसी और चोटों का इलाज हो जाता था।

एक आठ-नौ वर्षीय बालक के हाथ में चार बड़े-बड़े घाव थे। संन्यासी विश्वनाथ यह कार्य करते थे। रुई घाव से चिपक गई थी। वे उसे शीघ्रता से उतारना चाहते थे। बालक चीख उठा।

विश्वनाथ का मुख चढ़ा, उन्होंने बालक को डाटकर कहा, 'चुप रहो'।

बालक घबरा गया। उन्होंने फिर रुई उठाने की चेष्टा की, और बालक फिर चीखा।

विश्वनाथ प्रायः क्रुद्ध हो गये।

अनिल को लगा कि बालक के साथ जितनी नम्रता और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए उतना विश्वनाथ नहीं कर पा रहे हैं। उनका हाथ कुछ कठोर है।

वह बोला—लाइए, इसे इधर दे दीजिए।

विश्वनाथ ने बालक को उसकी ओर सरका दिया और स्वयं एक वृद्धा के हाथ में पट्टी बाँधने लगा।

विश्वनाथ ने सोचा था कि बालक अनिल के वश नहीं आयेगा। उसे पट्टी उसी से बँधवानी पड़ेगी।

पर अनिल के हाथों बालक ने रुई छुड़वा ली, घाव धुलवा लिया और पट्टी बँधवा ली। कष्ट उसे हुआ। उसे वह जी कड़ा कर सहता रहा। मिनका नहीं।

विश्वनाथ ने अनिल की ओर देखा। अनिल के नयनों पर विजय की झलक थी।

विश्वनाथ बुरा मान गये। बालक की दृष्टि ने बात और बढ़ा दी।

विश्वनाथ ने स्वामीजी से शिकायत की—अनिल सब बातों में अपनी टाँग अड़ाता है। उसकी उपस्थिति में कोई कार्य सुचारुता से करना असंभव है।

— १२ —

स्वामीजी ने अनिल को ताड़ना दी।

'शिक्षित समझ कर तुम्हें चिकित्सालय में कार्य दिया गया था, पर तुमने प्रत्येक स्थान पर अपने को अयोग्य प्रमाणित किया है।'

अनिल चुप रहा। अपराध क्या है? उसे विदित न था।

'तुम्हारी उपस्थिति कार्य में सहायक होगी, ऐसा मैं समझता था। पर खेद है कि मुझे इसके विरुद्ध सूचना प्राप्त हुई है। प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे विरुद्ध जान पड़ता है। क्यों?'

'मुझे क्या पता?'

'अब तुम्हें अस्पताल में जाने की आवश्यकता नहीं।'

अनिल के हृदय में विद्रोह उठा। बोला—जैसी आज्ञा होगी, वही करूँगा।

'हाँ, तुम एक कार्य कर सकते हो। कल प्रातःकाल उठकर रामगंज चले जाना। मार्ग जानते हो न?'

'जी।'

'वह मठ की ज़मींदारी है।'

'जी।'

'वहाँ नंबरदार से कहना कि तीन-चार गाड़ी लकड़ियों का प्रबंध करा दो, शीघ्र ही।'

'जी।'

'कहना, शीघ्र आवश्यक है।'

'जी।'

'जाओ।'

अनिल उठने को हुआ, पर रुक गया। स्वामीजी की ओर देखा।

'क्यों, क्या अधिक दूर है ! आते-जाते दस मील से अधिक नहीं पड़ेगा। दोपहर के भोजन का प्रबंध वे लोग वहाँ कर ही देंगे। इतना कष्ट तो तुम्हें सहन करने का अभ्यास होना ही चाहिए।'

'यह बात नहीं है।' अनिल ने धीरे से कहा।

'तो फिर ...?'

'मैं सोचता हूँ कि वहाँ तक जाना तो है ही, यदि आप ठीक समझें तो कुछ ज्वर और खाँसी की औषधि दे दें। जिन्हें आवश्यकता होगी, देता आऊँगा।'

'मैंने तो यह बात तुमसे नहीं कही थी।'

'जी।'

'मैंने जो कहा है बस उतना ही करना है। यदि वहाँ किसीको औषधि की वास्तव में आवश्यकता है तो वह स्वयं यहाँ आयेगा। तुम्हें उसकी चिंता क्यों होनी चाहिए ?'

'जी।'

'तुम्हें दिन निकलने से पहिले ही यहाँ से चला जाना है।'

'जी।'

'जाओ।'

'जी।'

— १३ —

रामगंज में अनिल ने संन्यासी-वेश का आतंक देखा। एक बार वह इस आतंक से स्वयं भयभीत हो गया, पर कुछ क्षण पश्चात् जब उसे अनुभव हुआ कि चारों ओर से उसकी खुशामद हो रही है तो एक गर्व और प्रसन्नता का भाव उसमें आ गया। वह जमींदार का प्रतिनिधि है। वह वास्तव में कुछ है।

तीन घंटे आदर-सत्कार या विश्राम कर अनिल वापिस चल पड़ा। मार्ग में एक वाटिका पड़ती थी। उससे जब आगे बढ़ा तो देखा कि मार्ग में एक नारी-मूर्ति में खड़ी है।

उसके हृदय में एक उत्सुकता जगी। निकट आने पर मूर्ति पहिचानी-सी जान पड़ी।

'अरे जैनब, तुम ?'

'गुसाईं, कहाँ रहे ?'

'क्यों ?'

'मैं बहुत मार्ग देखती रही, पर···।'

'जैनब !'

'गुसाईं !'

'कहो।'

'कहाँ गये थे ?'

'रामगंज।'

और फिर जैनब ने निकट के वृक्षकुंज के नीचे एक वस्त्र बिछा दिया। अनिल उसपर बैठ गया, जैनब उसके निकट।

जैनब अनिल के मुख की ओर देखती रही। बोली—गुसाईं, तुम्हारा मुख कुछ उतरा हुआ है ?'

'नहीं तो।'

'नहीं कैसे ? अब तुम दवा बाँटने नहीं आते !'

'हाँ, दूसरा काम ले लिया है।'

'गुसाईं ?'

'जैनब !'

'यह चार अमरूद हैं। स्वीकार करोगे ?'

'जैनब, तुम्हारे हाथ से क्यों नहीं स्वीकार करूँगा !'

जैनब ने चारों अमरूद उसके निकट रख दिये।

'जैनब, यह अमरूद तुम कहाँ से लाईं।'

'पेड़ में से।'

'कौन-से पेड़ में से ?'

'वहीं निकट के बाग में हैं।'

'तुमने चोरी की है।'

'पेड़ में से चार अमरूद ले लेना क्या चोरी है ?'

'मालिक से बिना पूछे यदि लिये हैं तो चोरी ही है।'

'कौन मालिक ?

'बागवाला।'

'नहीं, गुसाईं, मैंने बागवाले से नहीं पूछा। पर जिस समय मैं यह अमरूद तोड़ रही थी तो सबसे बड़ा मालिक देख रहा था। उसने रोका नहीं।'

'सबसे बड़ा मालिक कौन ?'

'अल्लाह।'

'जैनब, जान पड़ता है, मैं तुमसे बातों में जीतूँगा नहीं।'

'गुसाईं !'

अनिल ने अमरूदों की ओर, जैनब की ओर और फिर लहलहाते खेतों तथा आकाश की ओर देखा। वायु की लहरियाँ खेतों पर खेल रही थीं और ऊपर बादलों के खंड उन्हीं पर झूल रहे थे।

'अमरूद तराशूँ, खाओगे न !'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

जैनब ने चाकू निकाला और अमरूद काटने लगी। एक फाँक गुसाईं को दी।

'तुम नहीं खाओगी ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'तुम्हें मतलब ! तुम खाओ।'

अनिल ने अमरूद खाना प्रारंभ किया।

जैनब अनिल की ओर देख रही थी। चाकू की ओर उसका ध्यान न था। वह अमरूद काट थोड़ा उसके हाथ को भी काट गया। रक्त निकल आया। जैनब ने उँगली छिपा ली।'

'क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं।'

'कुछ कैसे नहीं, अँगुली काट ली है।'

'हाँ।'

और अनिल ने अपनी चादर में से पट्टी फाड़कर तत्क्षण जैनब की अँगुली पर बाँध दी।

'तुम बड़ी असीवधान हो।'

जैनब बोली नहीं। वे दोनों उठे। अनिल ने तीनों शेष अमरूद अपने अँगोछे में बाँध लिये। दो डग चलने पर जैनब बोली—'गुसाईं!'

अनिल ने उसकी ओर देखा।

'एक अमरूद मुझे दो।'

अनिल झेंप गया। दो अमरूद उसे देने लगा।

'दो नहीं, एक ही चाहिए।'

जैनब ने एक अमरूद लेकर अपनी झोंपड़ी का मार्ग लिया। उसका हृदय प्रसन्नता से भरा था। अनिल ने आश्रम पहुँचकर स्वामीजी को प्रणाम कर रामगंज के समाचार दिये।

– १३ –

सप्ताह व्यतीत हो गये। अनिल औषधि के संपर्क से हटाकर साधारण प्रबंध-विभाग में डाल दिया गया। वह भोजन की व्यवस्था करता, आय-व्यय का लेखा रखता और इसके अतिरिक्त प्रमुख व्यक्तियों के संपर्क से परे जो कार्य होता उसे करता।

नरेश धीरे-धीरे अच्छा हो गया। इस उपलक्ष्य में उसकी माता ने एक छोटे सह-भोज की व्यवस्था की। नरेश ने आश्रम में आ अनिल को निमंत्रण दिया।

'मेरा आना प्रायः असंभव है नरेश!'

'क्यों दादा?'

'आश्रम का समस्त प्रबंध मुझपर आ पड़ा है। यहाँ से एक क्षण टलना प्रायः असंभव ही है।'

'दादा, कुछ समय निकालकर•••।'

अनिल ने विमला का आग्रह समझा। वह स्वयं इस भोज में सम्मिलित होना चाहता था। बोला—नरेश, आश्रम के नियम आजकल कठोरता से पालन किये जा रहे हैं। पर एक आशा की रेख है। तुम स्वामीजी से कह देखो। यदि वे अनुमति दे दें तो•••।'

नरेश तो अनिल को लिवा ले जाने आया था। वही उस प्रीतिभोज का केंद्रीय व्यक्ति था।

स्वामीजी ने कहा—'नहीं, भाई, आश्रम के किसी व्यक्ति को बाहर भोजन करने का नियम नहीं है। अनिल•••।'

'स्वामीजो', नरेश ने विनय की—'मा की अत्यंत तीव्र इच्छा है। वृद्धा विधवा•••।'

'किसके यहाँ•••।'

'मैं बड़े घोष का पुत्र हूँ।'

'अच्छा!'

'तो आज्ञा है?'

'तुम्हारे परिवार की यह इच्छा मैं टाल नहीं सकता। पर भाई, अनिल को शीघ्र छुट्टी दे देना।'

'जी।'

'देखो अनिल', स्वामीजी ने उसे नरेश के संमुख ही संबोधित किया—'तुम यह निमंत्रण स्वीकार कर सकते हो, पर आश्रम के नियमों का ध्यान रखोगे, यह आशा करता हूँ।'

अनिल स्तब्ध रहा।

नरेश के यहाँ भोजन कर अनिल ने सोचा कि बहुत समय से मछुवों की बस्ती की ओर वह नहीं जा पाया है। वहाँ जाने की स्पष्ट इच्छा नहीं जगी। पर ध्यान आते ही पैर उस ओर ले जाने लगे।

एक युवती ने बालकों से घिरे अनिल से कहा—गुसाईं, जैनब बहुत बीमार है। और अनिल को लगा कि उसकी झोंपड़ी की ओर वह शीघ्रता से जा रहा है।

सागर-सरिता और अकाल

ज़ैनब भूमि पर बिछे फूस पर पड़ी हुई थी और कराह रही थी। अनिल ने पुकारा—जैनब !

'कौन ? गुसाईं ?'

जैनब के पीड़ा से व्यग्र मुख पर एक मुस्कान आ गई।

'क्या हाल है ?'

'तुम्हारी दया है।'

अनिल ने बैठकर उसे ध्यान से देखा। नाड़ी-परीक्षा की और फिर जो उसके जोड़ सूज आये थे उन्हें देखा।

'पीड़ा बहुत है ?'

'है।'

अनिल ने कहा—मैं अब्दुल को लिये जाता हूँ, औषधि भिजवा दूँगा।

'अभी क्यों जाते हो, तनिक बैठो।'

अनिल रुक गया। झोंपड़ी में देखा, दरिद्रता जैसे पूर्ण रोष से उनपर आ रही हो।

'अम्मा कहाँ हैं ?'

'यहीं कहीं नदी में बंसी डाले बैठी होंगी।'

अनिल चुप रहा। जैनब के मुख की ओर देखता रहा।

'अब कई मास से रुपया आना बंद हो गया है। खाने को तो कुछ चाहिए ही।'

'हूँ।'

अनिल को लगा कि देरी हो रही है।

'चलूँ।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा !'

अनिल ने महाराजजी से प्रार्थना की कि वे थोड़ी-सी औषधि जैनब के लिए दे दें। उसने रोग का पूर्ण विवरण उन्हें सुना दिया।

'यह औषधालय का समय तो नहीं है अनिल !' उन्होंने कहा।

'उसकी दशा अत्यंत खराब है। पीड़ा से चीख रही है।'

'जो शरीर का भोग है वह तो भोगना ही होता है।'

'आप ताली दे दीजिए। मैं स्वयं निकाल लूँगा।'

'ताली मैं किसी को नहीं दे सकता। तुम लड़के से कह दो कि कल रोगिणी यहीं आकर दवा ले जाये। कल तक मर नहीं जायगी।'

'महाराजजी !'

'क्या ?'

'मैं उसे आश्वासन देकर यहाँ तक ले आया हूँ।'

'तो मैं क्या करूँ ? तुम अनधिकारी कार्य करते फिरो, मैं उसका उत्तरदायी कैसे बनूँ। तुम जानते हो कि स्वामीजी नियम-पालन में कितने कठोर हैं।'

'महाराजजी !'

'भई, इस समय असंभव है।'

अनिल ने कंपाउंडर से प्रार्थना की कि किसी प्रकार वह उसका यह कार्य करा दे। पर उसने भी कोरी विवशता प्रदर्शित करने के अतिरिक्त और कोई सहायता न की।

अनिल प्रायः रो आया। अचानक उसके मन में उठा कि उसके हाथ में भी तो आश्रम का एक कार्य है। वह इन लोगों को क्या असुविधा पहुँचा सकता है। बदला लेने की तीव्र भावना उसमें उदित हो गई। ये उसका तनिक-सा काम नहीं कर सकते और अब जब इनका कोई काम पड़ेगा तो वह ध्यान रखेगा !

अत्यंत लज्जित होकर उसने अब्दुल से कहा—इस समय औषधि नहीं मिल सकेगी। कल तक तैयार हो जायगी। यदि संभव हो तो वह प्रातः यहाँ तक आ जाये।

अब्दुल ने अनिल का उतरा चेहरा देखा और चला गया।

— १४ —

अब्दुल को बिदा कर अनिल अपने कार्य में लगा, पर काम बनने के स्थान पर बिगड़ा ही। उसका मन अव्यवस्थित और व्यग्र हो गया। क्या इस आश्रम में उसका कोई अधिकार नहीं ? वह केवल अपमान का ही पात्र है ? उसने औषधि अपने लिए

नहीं माँगी थी। समय से बाहर रोगी औषधि ले जाते हैं। हाँ, पर पैसा देकर! आश्रम को नहीं, वैद्य या डाक्टर को।

अनिल ने कार्य करना बंद कर दिया। वह बैठ गया।

जैनब कितने कष्ट में थी। अब्दुल समाचार कहेगा। वह यहाँ तक कैसे आयेगी। वैसे ही पीड़ा से छटपटाकर मर जायगी।

उसके मन में उठा कि कैसे भी हो औषधि जैनब को मिलनी चाहिए। वह उठा और औषधालय की ओर चला।

विचारा, स्वामीजी से माँग देखूँ। कदाचित् वे दें!

पर साहस न हुआ। उसे अब आश्रम पर विशेष श्रद्धा नहीं रही। साधारण राग-द्वेषमय मानव के अतिरिक्त और ये लोग कुछ नहीं हैं।

औषधालय के संमुख जाकर वह खड़ा हो गया। क्या ताला तोड़े? पर उसने कभी यह कार्य किया नहीं।

जैनब तड़पती होगी। और औषधि इस कमरे में बंद है। वह महाराजजी से ताली छीन लाये! असंभव है!

उनसे कह दे कि वह ताला तोड़ने जा रहा है। फिर कौन तोड़ने देगा। वह जड़ मूर्तिवत् वहाँ खड़ा रहा। बैठ गया, फिर उठा। ताले को हाथ से छुआ, दूर हट गया।

मन में हुआ कि जैनब इसी प्रकार पीड़ा से छटपटाकर मर जायगी।

उसपर उन्माद छा गया। वह उठा। एक पत्थर उठा लिया और धड़ाधड़ ताले पर प्रहार करने लगा। दो प्रहारों में वह नाम मात्र का ताला टूटकर भूमि पर जा पड़ा।

ताले को जेब में रख अनिल औषधालय में गया। औषधि काफी परिमाण में निकाली। कागज में लपेटी, और बाहर निकलकर द्वार बंद कर दिया।

चारों ओर देखा। आश्रम का कुछ कार्य करना है, इसकी उसे चिंता न रही। वह औषधि लेकर तेजी से मछुओं की बस्ती की ओर चल दिया।

महाराजजी अनिल के विषय में यह नवीन सूचना देने स्वामीजी के पास गये।

'उसने फिर औषधि बाँटना प्रारंभ कर दिया।'

'अच्छा हुआ, आपने ताली नहीं दी।'

'अरे महेश, तनिक अनिल संन्यासी को बुलाना तो।'

'अनिल का चाल-चलन ठीक नहीं है।'

'मुझे भी इसी प्रकार का संदेह है।'

महेश ने लौटकर सूचना दी कि वे आश्रम में नहीं हैं।

महाराजजी और स्वामीजी ने एक दूसरे की ओर देखा। स्वामीजी ने नौकर से कहा—पूछो, कहाँ गये हैं ?

'पता नहीं।' नौकर ने पता लगाया।

'अच्छा।'

'ऐसे व्यक्ति के साथ क्या किया जाये इसपर दोनों चिकित्सक विचार करने लगे।

– १५ –

अब्दुल जब औषधि के स्थान पर औषधालय तक चल आने का निमंत्रण लेकर पहुँचा तो जैनब का आशा से भरा हृदय धक से हो गया। जिस प्रकार पानी का बुलबुला अदृश्य तिनके की ठेस से फूट जाता है उसी प्रकार इस समाचार ने उसके हृदय की सुखतरंग को शांत कर दिया।

उसने अपने संमुख देखा पीड़ा का एक विस्तृत क्षेत्र, जिसका कहीं अंत दृष्टिगोचर नहीं होता था। जो अश्रु और सिहरन से भरा था।

क्या कारण अनिल की इस असफलता का हो सकता है, इस ओर उसका ध्यान न गया। उसके संमुख था कि औषधि नहीं आई। औषधि से लाभ ही होता, यह बात न थी, पर एक अमित आत्मसंतोष अवश्य था।

जैनब ने उन नयनों से चारों ओर देखा, जिन्हें कुछ क्षणों से स्पष्ट कुछ दिखाई न देता था। उसने केवल देखी दारुण यंत्रणा और टीसों से भरी रात्रि।

औषधि की आशा से उसका हृदय कुछ कोमल हो आया था। आशा थी कि संपूर्ण कष्ट उसे सहना न पड़ेगा, औषधि बहुत कुछ बाँट लेगी। पर अब जब सब उसे ही सहन करना है तो उसने हृदय को कठिन करना प्रारंभ किया।

दो क्षण के पश्चात् उसे दृढ़ता प्राप्त हो गई। निराशा से जो भय उसकी आत्मा पर छा गया था, वह छिन्न-भिन्न हो गया।

वह इस भीषण यंत्रणा को सहन करेगी। अनिल से अपना दुःख निवेदन कर उसने अनुचित ही किया है।

इसी अवस्था में दांत पर दांत दबाये, ललाट पर बल डाले वह वेदना सहन कर रही थी कि अनिल औषधि लेकर पहुँचा।

'जैनब !'

प्राणों का संपूर्ण बल लगा, वेदना से युद्ध करती हुई जैनब के कानों में यह स्वर अमृत-सा पड़ा। पर जिसका यह स्वर है वह इस अवसर पर वहाँ सदेह उपस्थित हो सकता है, इसका उसे विश्वास न हुआ। उसने इसे कानों का भ्रम समझा।

'जैनब !'

अब जैनब ने शीश उठाकर देखा। और अनिल को झोंपड़ी के द्वार पर खड़ा पाया।

उसके नयनों में अश्रु भर आये। कंठ रुद्ध हो गया। मूक उसकी ओर देखती भर रही।

अनिल झोंपड़ी के भीतर गया।

'जैनब, मैं औषधि ले आया हूँ, लो। सात दिन के लिए होगी, उसके बाद देखा जायगा।'

जैनब के नयनों से अश्रु टपक पड़े।

'तुमने बड़ा कष्ट किया गुसाईं !'

'अम्मा कहाँ हैं ? क्या अभी नदी से…?'

'हाँ, आती ही होंगी।'

अनिल ने देखा कि जैनब का चेहरा जैसे इस भीषण यंत्रणा के मध्य में भी खिल उठा है।

'लो, एक खूराक खा लो।'

उसने एक गोली उसे दी। जैनब उसे लिये वहीं पड़ी रही।

'पानी कहाँ रखा है ?' फिर चारों ओर झोंपड़ी में दृष्टि डालकर बोला—मैं भी कैसा मूर्ख हूँ ; तनिक-सा तो स्थान है, उसमें खोज नहीं सकता, तुमसे पूछने बैठा हूँ।

उसने उठकर एक मिट्टी का बँधना उठा लिया। यही उस गृहस्थ का जल पात्र था। नदी का तट था। घर में जल रखने की आवश्यकता न थी। एक बँधना ले आये, समाप्त हो गया तो फिर आ गया।

'लो।'

जैनब ने गोली खाई और पानी पिया।

अनिल जब बँधना उसके हाथ से ले रहा था तो उसने अनिल का हाथ पकड़कर कंपित अधरों से एक हल्का चुंबन उनपर अंकित कर दिया। जैसे कि अपने कठोर अधरों से अनिल के कोमल हाथ छिल जाने का भय हो।

अनिल ने अपना हाथ शीघ्रता से खींच लिया। उसने कहा—'जैनब !'

बँधना नीचे गिरा और फूट गया। पानी बिखर गया।

जैनब बोली नहीं, उसने अनिल की ओर एक दृष्टि देखा और शीश नीचा कर लिया।

एक असुविधामय शांति झोंपड़ी में छा गई। दोनों व्यक्ति अपने-अपने में मग्न बैठे थे कि अम्मा का आगमन हुआ।

'अम्मा ने बंसी द्वार पर रखी और लंबी साँस ली।'

'बहू, आज भी तीन छोटी-छोटी मछलियाँ ही मिली हैं। अल्लाह पता नहीं क्या करेगा ? और कौन है ?'

'गुसाईं हैं, मेरे लिए दवा लाये हैं।'

'भगवान इनकी उमर बढ़ाये। बेटा, इस बहू को अच्छी कर दो तो तुम्हारे गुन गाऊँगी। इसके पड़ने से मेरी कमर ही टूट गई। पता नहीं, इब्राहीम का क्या हुआ…।'

अम्मा बैठ गईं। और इब्राहीम पुत्र का स्मरण कर उनके नयनों से आँसू गिरने लगे।

'आज छः महीने गये हो गये न कोई खत ही आया और न…।'

'अम्मा !'

'बेटा !'

'अक्सर इस प्रकार की देर हो जाती है। इब्राहीम अच्छी तरह से होगा।'

'बेटा, तुम्हारा कहना सच हो। पर दिल···। और लड़ाई पर तो गया हो है।'

'अम्मा, मैंने तुम्हारा नुकसान कर दिया है।'

'क्या बेटा ?'

'कुछ नहीं अम्मा, मुझे पानी दे रहे थे, मेरे हाथ से बँधना छूट गया।' जैनब ने कहा।

'अम्मा, यह पैसे ले लो। और मँगा लेना।' अनिल ने दो आने पैसे अम्मा को दिये।

'अल्लाह तुम्हारा भला करे बेटा !'

'अम्मा, मछलियाँ क्यों नहीं मिल रही हैं ?'

'बेटा, नदी चढ़ रही है।'

'क्या बहुत चढ़ आई है ?'

'हाँ बेटा, जब नदी चढ़ आती है तो मछलियाँ भी बह जाती हैं।'

अनिल के मन में सहसा उठा कि जब नदी चढ़ आती है तो मनुष्य भी बह जाते हैं। उसने देखा कि यह मछुओं की बस्ती एक टीले पर स्थित है। यदि नदी काफी चढ़ आये तो वह टापू मात्र रह जायगा। रोकते-रोकते ही मुख से प्रश्न निकल गया।

'अम्मा, यदि इन झोंपड़ियों तक पानी आ जाये तो ?'

अम्मा का हृदय कांपा, पर आश्वस्त होकर उन्होंने उत्तर दिया – बेटा, पानी हरसाल ही चढ़ता है, कभी-कभी बहुत चढ़ता है, पर टीले के ऊपर तक कभी नहीं पहुँचा, अल्लाह का करम है।'

अनिल के भीतर से फिर उठा कि यदि पानी यहाँ तक आ जाये तो ? यह सब झोंपड़ियाँ बह जायेंगी और इनके निवासी और जैनब और अम्मा ?

पर इस सबसे उसकी ममता क्यों हो ?

मन ने कहा—कि यदि वे चारों ओर से नदी से घिर जायें तो सहायता कहाँ से आयेगी ? नदी में जो तीन डोंगियाँ हैं। वे क्या करेंगी ? और पानी यदि इस टीले पर चढ़ आता है तो क्या मीलों तक न फैल जायगा। उसका आश्रम ?

उसे इस सबसे मतलब !

'अम्मा, मैं चलता हूँ। जैनब को दवा रोज खिलाती रहना। हो सके तो तीन-चार दिन में किसी से हाल कहला भेजना। मुझे दूसरा काम मिल गया है। इसलिए मेरा आना कठिन ही है।'

'अच्छा बेटा, अल्लाह ने जैसा तुम्हें दिल दिया है वैसा ही सौभाग्य भी दे।'

अनिल वहाँ से चल पड़ा।

मार्ग में लगा कि पीछे-पीछे से पानी लहराता आ रहा है। घूमकर देखा, केवल भ्रम था।

सुहासिनी को भी ऐसा लगा होगा। वह उसका ध्यान कर रही होगी। पानी का लहराना सुनाई दिया होगा। उसने भी इसी प्रकार दृष्टि उठाकर देखा होगा। पर उसके लिये यह भ्रम नहीं था। कठोर सत्य था। मृत्यु थी। और उसका हृदय !

अनिल ने अपने को सुहासिनी के स्थान पर अनुभव किया।

नहीं, वह तो सब रात्रि को हुआ था। वह सो रही होगी। कदाचित् उसी के स्वप्न देख रही होगी ! उसके लिए अब जीवन में क्या है ?

मन में उठा कि वह आश्रम क्यों जाये। संसार उसके लिए सूना है। नदी चढ़ रही है। सब कुछ इसमें बह जायगा। आश्रम, गाँव, जैनब, नरेश और स्वयं वह ! क्या बचेगा ? सब बह जाये यही अच्छा है।

मन में वह आश्रम से दूर जा रहा था। पर पैर उसे आश्रम लिये जा रहे थे।

जब वह अपनी शक्तियों की इस विभाजित अवस्था में आश्रम पहुँचा तो महेश ने उसे सूचना दी कि स्वामीजी ने तुरंत उसे बुलाया है।

अनिल ने सोचा, क्या हैं स्वामीजी ? लहर आयेगी और तिनके की भाँति बह जायेंगे। वह उनसे दबेगा नहीं।

जब अनिल स्वामीजी के संमुख पहुँचा तो वह युद्ध के लिए प्रस्तुत था।

– १६ –

एक बार अनिल की शिकायत करने के पश्चात् जब दूसरी बार महाराजजी उन्हें अपने औषधि-भण्डार के ताले टूटने की सूचना देने गये तो दोनों चिकित्सकों ने आश्रम के उस रोग का निदान खोजने में चित्त लगाया।

दोनों के मन में फल एक ही था। दोनों समझ रहे थे कि यह कार्य अनिल का है। कुछ क्षण दोनों स्तब्ध रहे।

महाराजजी बोले—अनिल ने मुझसे औषधि माँगी थी। वह आश्रम में है भी नहीं। अवश्य उसी ने मेरे ताले के ऊपर अत्याचार किया है।

स्वामीजी इस दोषारोप से असहमत हों, ऐसी बात न थी, पर महाराजजी ने आश्रम का अधिष्ठाता बनने की चेष्टा की है और सदा करते रहते हैं; यह उन्हें ज्ञात है।

उन्हें लगा कि अनिल के विरुद्ध महाराजजी का इतना रोष क्यों है? मन में उठा—नहीं, क्योंकि वैद्यजी कह रहे हैं, इसलिए यदि अनिल ने ताला तोड़ा भी है तो भी नहीं तोड़ा है।

बोले—संभावना है कि उसने तोड़ा हो। उसे आ जाने दीजिए। उसमें चाहे अन्य अवगुण हों, पर साधारण लोगों की भाँति झूठ नहीं बोलता।

उनका तात्पर्य था कि महाराजजी उसके विरुद्ध षड्यंत्र करते हैं, झूठ बोलते हैं, साधारण हैं, इसी लिए आश्रम के अधिष्ठाता होने के अयोग्य हैं।

'अनिल की यहाँ उपस्थिति से आश्रम को हानि पहुँचती है, ऐसा चरित्रहीन नवयुवा…।'

'उसे आ जाने दीजिए।'

'आप समझते हैं कि ऐसा नीच-कार्य करके जो गया है वह लौट आयेगा।'

'आप विश्वास रखिए, वह लौटेगा अवश्य। कार्य ठीक नहीं हुआ, पर नीच नहीं है।'

महाराजजी ने नेत्र फाड़ उनकी ओर देखा, बोले—'स्वामीजी?'

स्वामीजी मन में मुस्काये।

'महाराजजी, आप जाइए, आराम कीजिए ; अनिल आयेगा तो मैं…।'

'मैं उस समय उपस्थित रहना चाहता हूँ। चाहता हूँ कि उसके कान खोल दिये जायँ। आपमें सकुच कुछ अधिक मात्रा में है।'

'चिंता न कीजिए। आवश्यकता होगी तो आपको…।'

'हाँ, जहाँ आश्रम की प्रतिष्ठा का प्रश्न है वहाँ मैं अत्यंत निर्मम व्यवहार का पक्षपाती हूँ। चोरी कुछ भी हो चोरी ही है। आश्रम में कभी ऐसा नहीं हुआ।'

'जी।'

महाराजजी चले गये और स्वामीजी अनिल की समस्या सुलझाने में लगे।

यदि महाराजजी ने अनिल-विरोधी रुख न प्रदर्शित किया होता तो स्वामीजी अनिल के प्रति इतने सहानुभूतिमय न होते।

अब उन्हें अनुभव हुआ कि अनिल वास्तव में इतना बुरा नहीं है। उसका ध्यान फल पर अधिक और क्रिया पर कम है। ममता की अधिकता है।

उन्होंने भक्ति-योग पर एक पुस्तक उठा ली। अध्ययन में निमग्न हो गये। संसार में सुखी जीवन-निर्वाह के सर्वोत्तम मार्ग की वे खोज कर रहे थे।

स्वामीजी के जीवन में दोनों दर्शनों का संमिश्रण विचित्र था। एक ओर वे आवागमन के बंधन से उन्मुक्त हो मोक्ष की न केवल कल्पना करते थे, वरन् अनुभव करते थे कि वे सशरीर उसे स्पर्श कर आये हैं, और इन्हीं क्षणों की संख्या में वृद्धि कर लेना चाहते थे तथा दूसरी ओर आश्रम के कुत्ते बकरियों के भोजन से लेकर अनिल संन्यासी के चरित्र तक के मामलों का निर्णय उन्हें करना होता था।

अनिल ने जब शीश ऊँचा किये विद्रोही की भाँति विप्लव का झंडा लिये प्रवेश किया तो स्वामीजी ने अत्यंत शांति से पुस्तक बंद कर एक ओर रख दी। हलकी मुस्कान मुख पर आकर गंभीरता में परिवर्त्तित हो गई।

'बैठो अनिल।'

अनिल ने गलीचे पर आसन ग्रहण किया।

'आजकल तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है ?'

'आपकी दया है।'

सागर-सरिता और अकाल

वह स्वामीजी को समझ नहीं पा रहा था। ज़ोर से बोलने की जो तैयारी वह करके आया था वह व्यर्थ गई।

'अभी महाराजजी को तुम्हारी आवश्यकता थी। कहीं गये थे ?'

'जी।'

'कहाँ ? मैं पूछ सकता हूँ ?'

'क्यों नहीं ? मछुओं की बस्ती में एक रोगिणी की अवस्था अत्यंत शोचनीय थी। कष्ट से चीख-चीख पड़ती थी। उसी को औषधि देने गया था।'

'अच्छा !'

'जी।'

'औषधि…?'

'जी, मैंने महाराजजी से प्रार्थना की थी कि वे औषधि देने की कृपा करें। पर भाषण के अतिरिक्त उन्होंने मेरे प्रति कुछ नहीं किया।'

'फिर…?'

'मैंने उनके भंडार का ताला तोड़ डाला और औ…। हाँ, आपसे पूछा नहीं। पर उसकी आवश्यकता ? जब आप…।'

'अनिल !'

'आप आज्ञा दें, मुझे लग रहा है कि जन-सेवा से प्रेरित ऐसी संस्था में मेरा निर्वाह न हो सकेगा।'

'अनिल !'

'जी।'

'तुम चाहते क्या हो ?'

'स्वामीजी, मैं किसी से कुछ नहीं चाहता। मैंने जान लिया है कि जो कुछ प्राप्त हो जाता है वही स्वीकार करना होता है।'

'अनिल !'

'जी।'

'तुम अनुभवहीन युवक हो।'

'हो सकता है।'

'क्यों ?'

'जो लोग आश्रमों में आनंद से बैठते हैं, अनुभव का एकाधिकार उन्हीं का नहीं है, जिन्होंने संसार में रोग-शोक देखा है, सहा है; वे भी अनुभवी हो सकते हैं।'

स्वामीजी स्तब्ध अनिल की ओर देखते रहे।

'अनिल !'

'स्वामीजी, आप मुझे दंड देने में संकोच न कीजिए।'

महाराजजी इस अवसर पर उपस्थित होना ही चाहते थे। इसी से स्वामीजी द्वारा अनिमंत्रित होकर भी वे उपस्थित हुए। बैठते हुए बोले—निर्लज्जों की भाँति बोलते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ?

'महाराजजी !' अनिल के कंठ ने बल पकड़ा।

'अनिल !' स्वामीजी ने उसी प्रकार कोमलकंठ से कहा।

'जी।'

'मैं गुरुजी को तुम्हारे विषय में अब कुछ नहीं लिखना चाहता। हमारा तुम्हारा कार्य एक है, परंतु किसी प्रकार हम दोनों मिलकर उसे नहीं कर पा रहे हैं। यह सचमुच शोक और लज्जा का विषय है।'

'स्वामीजी !' महाराजजी बोले,—आप अपने अधिकारों का प्रयोग क्यों नहीं करते ? जो मनुष्य आश्रम में चोरी करता है उसे आश्रम से निकाल कोतवाली में प्रविष्ट करा देना चाहिए।

स्वामीजी ने विशेष ध्यान नहीं दिया—बोले, 'अनिल, मानिक नदी के कछार में नीचे की ओर अपना गाँव है। वहाँ के कारिंदे के हिसाब की पड़ताल तुम्हारे जिम्मे। तुम कल यहाँ से जा सकते हो।

'जी।'

'शीघ्रता नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि इस कार्य में तुम दस दिन तो लगा ही दोगे।'

'जी।'

'जाओ।'

अनिल दोनों को प्रणाम कर उठ गया। पीठ फिरते ही महाराजजी ने कहा, स्वामीजी...।

'इतना बहुत है। अनिल वीर बालक है। उससे बलात् कार्य नहीं लिया जा सकता, और वह काम का इतना है कि मैं उसे तजना नहीं चाहता। आश्रम की व्यवस्था में वह जमकर कहाँ बैठता है, यही हमें खोजना होगा।'

स्पष्ट ही महाराजजी असंतुष्ट हुए। उन्होंने इसे छिपाया नहीं। उन्हें नीचा दिखाने के लिए ही स्वामीजी ने अनिल को दंड नहीं दिया, यह उन्हें जँच गया।

—१७—

अनिल ने बिस्तर लपेटा, लोटा-डोर ली और अधिष्ठाता की आज्ञा का पालन करने चल पड़ा।

कछार में गाँव के गाँव बसे थे। निवासी थे, नदी जो कुछ बखेर जाती, उसे काटते, एकत्रित करते और जीवन-नौका को भविष्य की ओर बढ़ाते।

अनिल ने देखा, समस्त प्रदेश हरा-हरा। हरे के अतिरिक्त कोई रंग दृष्टिगोचर नहीं होता था।

आकाश में नीरद थे और भू पर घास-पात। इन्हीं घासों में से मानव ने धान को छाँटकर अन्न बना लिया था। इस विशिष्ट स्थानप्राप्त धान के खेत दूर तक वायु के संगीत पर झूमे जा रहे थे। वायु की सूक्ष्म लहरियों को स्थूल बना रहे थे।

अनिल ने जो कुछ दृश्य था वह सब देखा। उसे लगा कि यह सब व्यर्थ है। सब महत्त्वहीन है।

परंतु व्यर्थ क्यों है? जैसे लोगों के मध्य में वह पड़ गया है, उनसे उसकी संगति नहीं बैठती, क्या इसी लिए?

संसार में सभी रहते हैं, क्या सभी को इस प्रकार उससे असंतोष होता है?

जैनब कितनी अच्छी है? नरेश की मा कितनी अच्छी है? और यह चारों

ओर जो हरियाली है, वह भी उतनी ही मोहक है। फिर उसके साथ यह असुविधा और द्विविधा क्यों?

वह समझ न पाया। परकर्म के लिए समझना आवश्यक नहीं।

मनुष्य अपने हाथ से अपनी कब्र खोदता है। और कब्र खोदना क्या काम नहीं है!

वह अपने हाथ से अपना गला काटता है और गला काटना अत्यंत आवश्यक कार्यों में से है। धर्मशास्त्र से लेकर नीचे तक जितने शास्त्र हैं सभी इस विषय में सहमत हैं।

पर इन कार्यों को यदि कोई समझ कर करना चाहे तो वह गया।

अनिल ने दिन भर की यात्रा के पश्चात् एक गाँव के बाहर साधुओं की बगीची में पड़ाव किया, दूसरे दिन फिर आगे बढ़ा।

उसने देखा कि गाँववाले घर खाली कर रहे हैं। बच्चों से लेकर वृद्ध तक, भैंसों से लेकर कुत्तों तक सभी गाँव में से सामान ढो-ढोकर उच्च स्थल की ओर ले जा रहे हैं।

अत्यंत संलग्न व्यस्तता सब पर छाई हुई है।

एक नवयुवा से पूछा—भाई, बात क्या है!

परंतु उसे उत्तर देने का अवकाश न था। वह भार लिये अपने मार्ग पर बढ़ गया।

एक वृद्ध से पूछा—बाबा, यह सब कहाँ ढोये लिये जा रहे हो?

वृद्ध ने ऐसी दृष्टि से संन्यासी की ओर देखा, मानों कि वे उसकी बुद्धि पर दया कर रहे हों। वे भी बोले कुछ नहीं।

अनिल ने निश्चय कर लिया कि जब तक इस कर्म के उफान के कारण का पता न चलेगा, वह यहीं जड़ हो जायेगा।

एक बच्ची से पूछा—कमला, यह सब क्या है?

बालिका रुक गई। 'मेरा नाम कमला नहीं, सुषमा है। हम सामान वहाँ पेड़ों के पास ले जा रहे हैं।'

अनिल ने पूछा—क्यों ?

सुषमा की समझ में न आया। इस क्यों का उत्तर क्या होना चाहिए। सब लोग ले जा रहे हैं, वह भी ले जा रही है।

सुषमा को संन्यासी से बातें करते देख गणेश मार्ग में खड़ा हो गया। उसने संन्यासी को सिर से पैर तक देखा, सुषमा की कठिनता समझी। उसपर उसे क्रोध आया, बोला—

'अरी, कह क्यों नहीं देती, नदी बढ़ रही है, यहाँ रहेंगे तो बह जायेंगे।'

अनिल ने अपना ध्यान गणेश की ओर फेरा और इस बुद्धिमान बालक से पूछा—भई, पानी तो कहीं भी दिखाई नहीं देता और तुम कह रहे हो कि नदी बढ़ रही है ?

गणेश ने दयार्द्र दृष्टि से अनिल की ओर देखा। बोला - बाबाजी, सरकारी हुकुम है। मुखिया दादा ने कहा है, तुम भी अपना सब कुछ लेकर भागो। नदी अब आना ही चाहती है।

और इसके पश्चात् गणेश इतनी व्यग्रता से टीले की ओर चला जैसे कि नदी सचमुच उसके पीछे-पीछे आ ही रही हो।

अनिल अपने मार्ग पर आगे बढ़ गया। सोचा—नदी आयेगी और ये मिट्टी-टटिया के घरौंदे बतासे-से गलकर बह जायेंगे। बुलबुले की भाँति बिला जायेंगे। यह फसल पानी में घुट जायगी। इस इति के पश्चात् अथ का पुनः प्रारंभ होगा।

उससे क्या ? कहीं कुछ भी हो। उसे तो हिसाब जाँचना है।

इसी प्रकार उसकी सुहासिनी भी बह गई होगी। क्या वे लोग भाग नहीं पाये ? नहीं, वह तो रात्रि का समय था।

जैनब ? उसकी झोंपड़ी तो बिल्कुल नदी किनारे है। अम्मा कहती है कि पानी वहाँ तक नहीं आता। यदि आ गया तो ! पानी तो पानी है, कोई कायदा-कानून नहीं मानता। जैनब की झोंपड़ी में घुस जायेगा। अम्मा कहती है कि पानी वहाँ तक नहीं आता, पर सुहासिनी के घर तक कब आता था। भूमि पर लेटी, वेदना से कराहती जैनब पानी से भीग जायगी।

कल्पना में उसने देखा—झोंपड़ी की टटियाँ उखड़ गई हैं, पानी लहलहाता टीले के ऊपर बह रहा है।

लता की मा! क्या वह भी बह जायगी?

तभी उसने सुना कि कुछ लोग जल का लहराना सुन रहे हैं। नदी चली आ रही है। एक भय उसमें उत्पन्न हुआ।

वह कदम बढ़ाकर टीले की ओर चला। वह सबसे अलग अकेला उस टीले पर बैठा रहेगा। नदी का कौतुक देखेगा। चारों ओर जल ही जल होगा और बीच में वह।

अनिल एक फर्लांग के लगभग दूर एक टीले पर जाकर बैठ गया। वह अचानक इतना कैसे थक गया, यह उसे पता न चला। वह बैठा था, बिस्तर सिरहाने लगाकर लेट गया।

गाँव की ओर से कोलाहल सुनाई पड़ा। उसने अनुमाना कि नदी आ रही है। पानी आ रहा है। वही जल जिसने उसकी सुहासिनी को, उसकी मौसी को, उसकी मा को उदरस्थ कर लिया है। वही जल अब उसके चारों ओर उमड़कर आ रहा है।

वह मुग्ध जड़ दृष्टि से दूरस्थ गाँव की ओर देखता रहा। कोलाहल धीरे-धीरे बढ़ता गया।

— १८ —

मछुओं की बस्ती चारों ओर पानी से घिर गई थी। यह कोई नई बात न थी। प्रायः प्रतिवर्ष ऐसा ही हुआ करता था। फिर भी इस वर्ष कुछ नवीनता थी। पिछले वर्षों में जिस सर्वोच्च तल तक पानी आकर लौटना प्रारंभ हो जाता था वह सीमा पीछे छूट गई थी। पानी निरंतर चढ़ता आ रहा था।

जल की इस प्रगति ने मछुओं को अपनी स्थिति विचारने के लिए बाध्य किया।

इब्राहीम ने कहा—हमें डरना नहीं चाहिए। अल्लाह सदा अपने बंदों की रक्षा करता है। पानी टीले पर पहिले कभी नहीं आया, इस बार कैसे आ जायेगा?

यूसुफ़ बोला—खटका तो है ही।

बूढ़े अलाउद्दीन ने दाढ़ी पर हाथ फेरा, पिछली बड़ी-बड़ी बाढ़ों का स्मरण किया

और कहा—अल्लाह पर विश्वास रखो जिसने अब तक जिलाया है, आगे भी जिलायेगा।

अगर वह मारना ही चाहता है तो कौन कह सकता है कि यहाँ से निकल जाने के प्रयत्न में हम लोग बच ही जायेंगे।

उसने अपने चारों ओर दृष्टिपात किया।

जहाँ धारा थी वह प्रलयंकरा हो रही थी और जहाँ सूखा थल था वहाँ अब धारा बन गई थी।

टीला विस्तृत था। नदी इतनी मिट्टी बहा ले जायगी, इसका भय तो न था, पर टीले के ऊपर होकर वह बह जायेगी, इसकी संभावना ही उनके हृदयों को कंपित कर रही थी।

दो छोटी नौकाएँ जो वहाँ थीं छिछले जल में मछली पकड़ने के काम में ही आ सकती थीं। जब वरुण देवता हँसने और किलकारने लगे हों तब उनकी कोई सत्ता न थी।

मुबारक ने कहा—भाइयो, यदि भागना ही था तो दोपहर तक संभव था। अब असंभव है। इस धारा में यह नावें डालना प्रत्यक्ष ही मृत्यु को गले लगाना है। अल्लाह पर विश्वास रखकर जो कुछ हो, सहने को तैयार रहो।

अब्दुल्ला बोला—और चारा ही क्या है? कौन जानता था कि नदी इतनी चढ़ आयेगी।

उन लोगों की दशा उन कबूतरों की-सी थी जो जलते मकान में इस आशा से बैठे रहते हैं कि अग्नि उनके नवजात शिशुओं पर, उनके तुच्छ तिनकों के घोंसलों पर दया रखेगी और उन्हें स्पर्श करने से पूर्व ही लौट जायगी।

समस्त मछुवा-समाज भयभीत था। अवलंब यही था कि जल टीले के ऊपर न आये।

उधर अँधियारी उसी भाँति चढ़ी आती थी, जैसे कि नदी का लहलहाता जल कोलाहल करता उमड़ा आ रहा था।

ऐसे अवसरों पर भविष्य के प्रति उत्सुकता इतनी तीव्र हो जाती है कि मानव

प्रतीक्षा करने के स्थान पर शीघ्र जो कुछ अंत में होना हो वह देखने के लिए अपना सर्वस्व होम देने को प्रस्तुत हो जाता है।

जैनब अपनी झोंपड़ी में पड़ी थी और अपने को नितांत असहाय अनुभव कर रही थी। इस कष्ट से मृत्यु अच्छी।

उसका जीवन क्या है ? उजड़ा सुनसान बियाबान। कोयल उसे देखकर रो जाती है। बुलबुल खिन्न हो मुँह फेर लेती है।

अनुभव किया—इस जीवन का अंत जितनी शीघ्र हो जाये उतना अच्छा। नदी चढ़ रही है। तेज़ी से क्यों नहीं चढ़ती ? एक झोंके में सब कुछ क्यों नहीं बहा ले जाती ? वह मरने को प्रस्तुत है, केवल चाहती है कि आनन फानन में मर जाये।

और वह गुसईं, जो उसके लिए आश्रम से औषधि लेकर आया था। वह उसका कौन है ? उससे रूठने, उससे मान करने का उसे क्या अधिकार है ? कहाँ चाँद और कहाँ चातक।

उसके हृदय में मर जाने की इच्छा इतनी बलवती हुई कि उसने अपने जबड़े भींच, मुट्ठी बाँधकर साँस रोक ली, जिससे वेदना उसके भीतर घुमड़कर उसके प्राणों को बाहर निकाल दे।

उसने अनुभव किया कि वह सचमुच मर गई है। एक विचित्र शांति का वातावरण उसके प्राणों को संमोहित कर गया।

उसी समय बाहर कोलाहल अचानक बढ़ गया। जैनब जागकर पुनः संसार में लौट आई।

मछुओं ने एक व्यक्ति को पानी का चढ़ाव देखने के लिए नियत कर दिया था। उससे कह दिया था कि बूढ़े तमाल-वृक्ष की जड़ में जब जल टकराने लगे तो ढोल बजाकर सूचना दे दे।

वही ढोल अब बज उठा था। इसका अर्थ था कि नदी टीले के ऊपर आये बिना संतुष्ट होती नहीं जान पड़ती। जो स्थिति गंभीर थी अब गंभीरतर हो गई।

जल से रक्षा का कोई न कोई उपाय किया ही जाना चाहिए। टीले पर इस तमाल के अतिरिक्त एक झाड़ और एक पीपल का पेड़ था। इन्हीं पर निवासियों की

रक्षा की संपूर्ण आशा निर्भर करती थी। वृद्ध तमाल की जड़ें वैसे ही निकली हुई थीं। वह इस बाढ़ को संभाल सकेगा यह विश्वास न होता था।

यह ढोल का स्वर जैसे मृत्यु की चुनौती थी। जो मानव अब तक शांत अल्लाह के आश्रय बैठा था, एकाएक चैतन्य हो उठा। एक चहल-पहल प्रारंभ हो गई।

यूसुफ़ ने कहा—कितने आदमी हैं?

इब्राहीम ने हिसाब लगाया, चार और तीन सात और आठ पंद्रह और नौ तेईस; कुल मिलाकर बस्ती में इकतीस आदमी निकले, जो गणित के प्रति ईमानदारी करने पर तैंतीस होते थे।

रहीम ने कहा—एक गाय है उसे भी तो गिनो।

इस पर यूसुफ़ ने आठ कुत्तों, छः बिल्लियों, सात तोतों, तीन तीतरों और सत्रह मुर्गियों को भी हिसाब में संमिलत कर लिया।

इस उमड़ती हुई मौत से इन सभी को बचाना है।

कादिर ने कहा—यह कैसे होगा?

यूसुफ़ ने कहा—भाई, पेड़ों पर चढ़ना पड़ेगा।

तब तक मुबारक ने झोंपड़ी की टटिया निकालकर मचान बनाना प्रारंभ कर दिया था। योजना थी कि झाड़ और पीपल की पारस्परिक निकटता से लाभ उठाया जाये, उन दोनों पर मचान बाँध सब उसपर चढ़कर बैठें।

जब जीवन का तकाज़ा होता है तो आलस्य को स्थान नहीं रहता। कार्य करने की शक्ति अबाध रूप से आ जाती है। मचान शीघ्र तैयार हो गया।

बालक-बालिकायें उसपर पहुँचा दिये गये।

स्त्रियाँ उसके पश्चात्। रोगिणी जैनब भी अपनी प्रायः अंधी अम्मा के साथ वहाँ उसपर डाल दी गई।

भाग्य के पंजे से प्राणियों को बचा ले जाने का यह महान् प्रयत्न था। केवल बलिष्ठ पुरुष ही नीचे रहे और पानी का बढ़ना देखते रहे। इस समय पानी टीले से एक फुट नीचा था। जब टीले पर पानी आने लगा तो कुत्ते बिल्लियों और पिंजरों को

भी ऊपर चढ़ा दिया गया। उस घोर अंधकार में अकेली गाय ही एक समस्या रह गई। वे उसे कैसे बचायें ?

रहीम ने कहा – भई, इसे हम नहीं बचा सकेंगे। यहाँ बाँधेंगे तब भी मरेगी, बहेगी तब भी मरेगी।

'अल्लाह ! रहम करो।'

'अरी हबीबन, छुरी नीचे डाल दे बेटी।'

इसके दो मिनट पश्चात् अपनी गाय को डूबने की मृत्यु के कष्ट से, बचाने के लिए उन्होंने हलाल कर दिया। ये लोग नित्य सहस्रों मछलियाँ मारते थे और कभी उनके मन में दयाभाव उत्पन्न नहीं होता था। पर इस समय उनमें से अधिकतर हृदय भर आये थे।

गाय न रही, पर मांस रह गया। वह फेंका नहीं जा सकता। यदि नदी शीघ्र न उतरी तो क्या होगा ?

पानी लहलहाता उनके चरणों को स्पर्श कर गया। अंधकार में एक परम भय सबके ऊपर छा गया। शीघ्रता से मांस को रस्सी द्वारा झाऊ की एक शाखा से लटका दिया गया।

पानी बढ़ा। कुछ ही क्षणों में घुटनों तक आ गया। पैर उखड़ने लगे और तब प्राणों से चिपटते शरीर वृक्षों पर चढ़ गये।

– १९ –

कोलाहल बढ़ता गया। अनिल जो लेटा था, उठकर बैठ गया। उसे लगा कि वातारवण में एक नवीन ध्वनि संमिलित हो गई है, जैसे कि सहस्रों सर्प बहुत दूर पर फुंकार रहे हों। स्थान से छनकर हल्की-हल्की उनकी फुंकार धरती पर फैली जा रही हो।

अनिल को लगा कि यह जो अत्यंत निरीह-सी दीखती ध्वनी आ रही है, इतनी असमर्थ दिखाई देने पर भी अपने पीछे भयानक समता लिये हुए है।

जीव और प्रकृति का परिचय सभ्यता की आयु से कई सहस्रगुण प्राचीन है।

सागर-सरिता और अकाल

जहाँ सभ्यता के साधन और फल मूक और पंगु बनकर रह जाते हैं वहाँ शरीर के नैसर्गिक निर्माणतंतु प्रकृति के सूक्ष्म आघातों से झंकृत हो उठते हैं।

इसी कारण जीवों के प्राण इस ध्वनि को श्रवण कर भय के मोह से भर गये। प्रलय-ध्वनि जीवों के पुरखाओं ने जैसी सुनी थी उसकी गूंज आज भी उनकी संतति के प्राणों में वर्तमान थी।

अनिल ने अनुभव किया, वह ध्वनि एक ओर से वातावरण को कँपाती आई, और क्षण भर में उसे अपने में मग्न करती आगे बढ़ गई।

देखा—धान के खेतों में एक गति आ गई, जैसे कि उनकी जड़ों को किसी ने धकियाना प्रारंभ कर दिया हो और उन्हें अपने स्थान पर स्थिर रहना कठिन हो गया हो।

यह अस्पष्ट ध्वनि धीरे-धीरे बल पकड़ती गई। कुछ समय में उसमें जल के लहलहाने का शब्द स्पष्ट कर्णगोचर होने लगा।

वह नदी आ रही है। वास्तव में बाढ़ आ रही है। गाँव से आता कोलाहल नदी के स्वर में मिलकर मंद पड़ गया।

अनिल के नेत्र अधिक खुल गये। नथुने फैले, कान सजग हुए, और त्वचा वायु में वरुण देवता की क्रीडाओं का स्पर्श पाने के लिए उत्सुक हो गई। वह मुग्ध टीले के चारों ओर लुब्ध दृष्टि डालने लगा। वह कितनी महान् घटना के मध्य में है। यह अवसर अद्वितीय है।

जल तो स्पष्ट दिखाई न पड़ा, पर खेत लगभग लेट गये। जल की लहर का स्पष्ट प्रतिरूप फसल की हिलती चोटी पर दिखाई पड़ने लगा। इसी समय किसी भारी वस्तु के जल में गिरने का शब्द दूर से आया।

अनिल ने कान खड़े किये। दृष्टि दौड़ाई। निकट कोई कारण न देख अनुमाना—गाँव में दीवारें पानी में गिर रही हैं।

देखते-देखते फसल डूब गई। एक सलवटदार मटमैली चादर दूर तक फैली दिखाई देने लगी। अब जल आगे बढ़ते लजाता-सकुचाता न था। वह हलकोरे लेता,

छाती फुलाकर, शीश उठाकर बढ़-बढ़कर उमड़ा आ रहा था। उसके ऊपर छोटे-बड़े फेनिल झाग, गोभी के फूलों और डबल रोटियों-से बहे जा रहे थे।

अनिल अपने को भूल उस टीले का जैसे जड़ भाग बन गया। जल चारों ओर से उसे घेरे था और तेजी से ऊपर उठ रहा था। अनिल को इसकी चिंता न थी। उसे जैसे उसका पता भी न था। उसकी मुग्ध दृष्टि बहकर आते बहुसंख्यक काले धब्बों की ओर लगी थी।

वे धब्बे शीघ्र निकट आ गये। उसने देखे, छप्पर, घड़े, वस्त्र तथा उसके बीच उसने देखा जीवन के लिए प्राणपण से धारा से निकलने का प्रयत्न करता कदाचित् बैल। उसका प्रत्येक प्रयत्न प्रवाह के वेग द्वारा प्रारंभ होने से पहले ही नष्ट कर दिया जाता था। वह उमंगती जलराशि द्वारा होनी के शिकंजे में इस संपूर्णता से जकड़ा हुआ था कि निकल भागने का कोई मार्ग ही न था। अनिल मुग्ध खड़ा यह कौतुक देखता रहा।

विचार उठा—यदि वह इन बहते छप्परों में से एक पर होता! उसका हृदय काँप गया। यह कंपन अधिक समय न रहा। उसे ज्ञात था कि टीले पर वह सुरक्षित है। पानी उससे बहुत नीचे है। उसे भय नहीं।

अनिल मुग्ध जल के भीषण खिलवाड़ में आनंद लेता रहा। अचानक वह चौंका। कहीं अत्यंत निकट से घलघलाने की एक तेज़ आवाज उसके कान में पड़ी। वह उस ओर मुड़ा। देखा—टीले के नीचले भाग पर पानी तेज़ी से चक्कर काट रहा है। वह निकट गया, और किसी वन-पशु की मांद में पानी का निर्मम प्रवेश देखता रहा। उस दृश्य में कितना जादू भरा था कि अनिल उसपर से नयन न हटा सका। उसकी उत्सुकता अत्यंत तीव्र थी। कि उसका ध्यान वहाँ से तब हटा जब कि उसने एक बिल में से अपने पैरों के नीचे पानी को भूमि से निकलता अनुभव किया।

एक डग पीछे हटते ही जल लहलहाकर उस भाग पर फिर गया। अनिल ऊँचे भाग पर जा बैठा, जल की इस विजय-यात्रा के दर्शन करने लगा।

उसे अनुभव हुआ कि उसकी गर्दन पर कोई चिकनी भारी वस्तु स्पर्श कर रही

है। उसने गर्दन पर हाथ फेरा और तेजी से उस गिलगिली वस्तु को पानी में फेंक दिया, पर इसके साथ ही चीख भी उठा।

एक भीषण काला सर्प पानी में से पुनः टीले की ओर आने का प्रयत्न कर रहा था। अनिल उसकी विफल चेष्टाओं को देखता रहा। जब वह जल के साथ बह गया तो उसने अपने पीछे शेष थल की ओर दृष्टि घुमाई।

उसका हृदय धक से रह गया। देखा—टीले पर छोटे-बड़े सर्पों की संख्या डेढ़ दर्जन से कम नहीं होगी। काले, हरे, मटमैले सभी तो वहाँ सरिता के प्राणहारी प्रहारों से आहत, विश्राम पाने आ एकत्रित हुए थे।

सर्प ही नहीं—आधे दर्जन के लभभग चूहे और दो मेढक भी उसने देखे। ये सर्प चूहे और मेढकों को खा नहीं जाते, इसपर उसे आश्चर्य हुआ।

उसी समय एक सियार टीले पर पहुँचने की चेष्टा कर रहा था। टीले से टकराता जल बारंबार उसे दूर फेंक देता था। अनिल को दया आई। उसने सोचा कि बिस्तर में से धोती निकालकर जल में एक सिरा फेंक दूँ। उसके आश्रय यदि सियार की जान बच जाये तो! उसने अपना बिस्तर उठाया, पर वह तुरंत हाथ से छूट गया। एक तीव्र फुंकार ने बिस्तर हिलने का विरोध किया था। पाया कि एक लंबा सर्प और भी घनिष्ठता से उसके बिस्तर से लिपट गया है।

सियार बह गया। सर्पों और उमड़ते जल के बीच अनिल को अपनी स्थिति पर विचार करना पड़ा। पर इस स्थिति में उसका मस्तिष्क साधारण विचार-धारा के योग्य न था। मृत्यु का भयानक रूप उसे मोह रहा था। वह अपने ऊपर संयम खो बैठा। उसने एक अत्यंत सुंदर लगभग दो हाथ लंबे सर्प को उठा लिया।

डसने की संभावना की ओर उसका ध्यान भी न गया।

चारों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी, जल के ऊपर निकली वृक्षों की चोटियों, इक्के-दुक्के टीलों के अतिरिक्त केवल जल ही दिखाई देता था। सर्प ने उसे डसा नहीं। वह तो उसके शरीर से जीवन का ताप प्राप्त करने के लिए जैसे और भी ममता से चिपट गया।

तभी अनिल का ध्यान टीले पर होनेवाली गति की ओर गया। उसने देखा

कि सब जीव उसी की ओर सरके आ रहे हैं। चिंता की एक धारा उसपर दौड़ आई। ध्यान से देखा। जल अत्यंत तीव्र गति से बढ़ रहा है। जिस स्थान पर वह खड़ा है वही अब सूखा रह गया है। देखा! इसका बिस्तर सर्प सहित पानी पर तैर आया है। उसने दो-तीन चक्कर इधर-उधर काटे और फिर एक ओर को बहकर धारा की दिशा ग्रहण कर ली। अनिल की दृष्टि उसके साथ लगी रही।

अपनी भीषण परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान अनिल को अब हुआ। बेहोश मनुष्य को सुई चुभने से प्रायः जिस प्रकार का चैतन्य हो आता है उसी प्रकार अब अनिल की बुद्धि जागी। पर यह जाग्रति क्षणिक थी। समस्त प्रकृति में जो एकात्मता है वह विजयी हुई और अनिल के हृदय में इस उमड़ते जल में कूद पड़ने की अदम्य लालसा उत्पन्न हो गई। उसके अंग फड़क उठे। नेत्र जैसे उस दृश्य को संपूर्णतया पी लेने के लिए विस्फारित हो गये। रोम उन्मत्त चेतना से खड़े हो गये। वह एक बार काँपा, पैर डगमगाये और इससे पहिले कि जल उस टीले को संपूर्णतया अपने गर्भ में छुपाये, अनिल उस प्रवाह में कूद पड़ा।

—२०—

ऊपर की ओर झाऊ और प्रवाह की ओर पीपल पर बंधे मचान पर मछुओं की सारी बस्ती चढ़ कर बैठ गई। लालटेन पूरी बस्ती में दो थीं, पर तेल केवल एक ही में था, वह भी अब इसलिये बुझा दी गई थी कि कुत्ते चारों ओर पानी और उसमें परछाईं देखकर उछलें और भूकें नहीं।

मचान दो बल्लियों पर चार पाँच टट्टी में, और टट्टियों पर फूस बिछा कर पर्याप्त सुखद बना दिया गया था। रात्रि बढ़ती गई।

बालक सो गये। जो जागे भी उन्हें माता-पिता ने डरा-धमकाकर सो जाने को विवश किया, जिन्हें नींद न भी आई वे भी पिटने के भय से नयन बंद कर लेटे रहे।

नारियों के हृदय धक-धक कर रहे थे। प्रार्थना प्रत्येक ओठ पर थी।

संपूर्ण बस्ती के लिए यह मचान वैसे छोटा था पर जो शक्तिशाली थे, जिनके पुरुष थे उन सबका सब-कुछ कुत्ते बिल्ली तक मचान पर थे, और जो सामाजिक

व्यवस्था में दुर्बल थे वे वृक्षों की शाखाओं से चिपटे हुए जीव बचा ले जाने के प्रयत्न में थे।

जैनब की अम्मा को मचान के एक कोने पर स्थान मिला, ऐसा कि तनिक असावधान होने पर नीचे ही जाये। जैनब को बिठाया गया पीपल की एक शाखा पर। आश्वासन दिया गया कि सब लोगों को यथा स्थान बैठा देने के पश्चात् मचान पर यथेष्ट स्थान निकल आयेगा, तब उसे भी वहाँ आराम से बैठा दिया जायेगा।

जब सब जीव ऊपर आ गये तो ज्ञात हुआ कि स्थान अन्य लोगों के लिए ही कम है, इसलिए जैनब जहाँ थी वहाँ किसी ने उसे छेड़ना उचित न समझा। दो-तीन युवकों को भी स्थानाभाव के कारण प्रारंभ में वृक्षों पर ही शरण लेनी पड़ी।

तमाल के तने से टकराकर जल शोर करने लगा। इस बाधा से उसकी गति तीव्रतर हो गई। आगे बढ़कर जब वह झाऊ के वृक्ष से टकराया तो इसी परिवर्द्धित वेग से।

जल बढ़ता गया और उसके साथ उसका कोलाहल भी! यही धीरे-धीरे भयानक होता जा रहा था।

मनुष्यों के हृदयों में भय की धुकधुकी थी। यदि कहीं मचान गिर पड़े तो! भय इतना था कि इस विचार को वे अपने हृदयों में से बलात् निकाल बाहर करना चाहते थे। पर यह विचार जहाज़ के पंछी की भाँति लौटकर उनके ऊपर ही मंडराता था।

ज्यों-ज्यों जल की गति एवं गहराई बढ़ती गई त्यों-त्यों उनकी स्थिति भी गंभीरतर होती गई। उन्हें अनुभव हुआ कि भूमि धीरे-धीरे हिलने लगी है। वे लोग एक झूले पर बैठे हैं। इस कंपन का सबसे अधिक प्रभाव कुत्तों पर हुआ। वे नाक से वातावरण को सूंघने लगे और उछलने की चेष्टा करने लगे। वे कसकर बँधे हुए थे, उसी बंधन में कसमसाने और भूँकने लगे।

जल बढ़ा और तीव्र गति से हलहलाता निकटवर्ती केले के वृक्षों को हिलाने लगा। केले के वृक्षों ने झुककर, नमकर किसी प्रकार रक्षा चाही, पर वह न मिली।

मचान पर बैठे लोगों ने सुना शब्द जैसे कि पंद्रह बीस केले के वृक्ष एक साथ

पानी में गिरे हों और एक बड़ी लहर उनके पतन से उठ खड़ी हुई हो। उन्होंने उस लहर को स्पष्ट अपनी ओर आते, वृक्षों से टकराते, आगे बढ़ जाते सुना।

तरंग के आघात से पीपल और झाऊ दोनों काँप उठे। पानी के छींटे मचान पर बैठे मनुष्यों तक पहुँचे। सब लोगों के भय-अनुप्राणित कंठों से दीर्घ निःश्वास के साथ निकला 'या अल्लाह।'

इसके पश्चात् क्षणिक स्तब्धता छा गई। इस आघात ने सब प्राणियों के हृदयों को हिला दिया, पर कुत्तों को तो जैसे पागल कर दिया। वे अब विद्रोह करने को उतारू हो गये। अपने स्वामी की आज्ञा मानना उन्होंने अस्वीकार कर दी। वे बँधे-बँधे ही मचान पर उछलने का प्रयत्न करने लगे।

मछुओं ने अनुभव किया कि कुत्तों ने अपने बंधन लगभग तोड़ लिये हैं। इससे एक भयानक स्थिति उत्पन्न हो गई थी। उनकी इस क्रिया से मचान हिलने लगा था। जिससे बच्चे जागकर रोने लगे थे।

एकाएक एक कुत्ता उछलकर खड़ा हो गया। मचान बुरी प्रकार हिल उठा। स्त्रियाँ ज़ोर से चीख़ उठीं।

जैनब की अम्मा मचान के बिलकुल किनारे पर थीं। उनके निकट रखा था एक तोते का पिंजड़ा। उन्हें इस प्रकार मचान हिलने से अत्यंत भय लगा। पिंजड़े को कोने पर सरकाकर उन्होंने स्वयं अधिक सुरक्षित स्थान पर हो जाना चाहा।

पिंजड़ा सरका ही था कि मालकिन ने उसे पकड़ लिया।

'कौन है ? सीधी तरह बैठा नहीं जाता ?'

इस क्रिया में उसने पिंजड़ा सरकानेवाली को धकिया तनिक परे सरका देना चाहा। इस समय उस स्थान के बिलकुल नीचे छपाक से हुआ। एक चीख़ उसके साथ मिली हुई थी। सबके हृदय काँप उठे।

'कौन गिरा ?' प्रायः प्रत्येक कंठ से निकला।

जैनब ने सुना, 'कौन गिरा ?'

उसका हृदय काँप कर रह गया। उसे लगा कि अच्छा ही हुआ, उसे मचान पर स्थान नहीं मिला।

दूसरे क्षण उसका हृदय पुनः काँपा। भय हुआ, कहीं उसकी अम्मा न हों। वे अंधी हैं, पर इस अंधकार में अंधे और सूझते सब समान हैं।

सब लोगों ने अपने परिवार के व्यक्तियों को वहाँ पाया। कौन गिरा? उसमें किसी को रुचि न रही। केवल उस पिंजड़ेवाली का मन धकधकाता रहा।

यह व्यस्तता समाप्त होते ही कुत्तों द्वारा मचान का हिलाया जाना पुनः अनुभव होने लगा। वे जैसे मृत्यु के फ़रिश्तों के पंखों की फटफटाहट सुन पा रहे हों। जल के लहलहाने और मचान के हिलने ने एक जलती शलाका जैसे उनके प्राणों में प्रविष्ट कर दी हो।

एक कुत्ता जैसे गोली लगने से तड़पा, उछलकर बल्ली पर पड़ा और उसके नीचे अंधकार में खो गया। छपाक का शब्द सुनाई पड़ा, छींटे ऊपर तक आये। कुत्ते की एक चीख वातावरण में गूँजी और फिर सब कुत्ते पागल हो गये। उनके शरीर काँपने और उछलने लगे। मृत्यु के संमुख से निकल भागने को वे लालायित हो उठे। उन्होंने समझा कि मृत्यु के हाथों सौंप देने के लिए ही मनुष्यों ने वहाँ उन्हें बाँधकर डाल रखा है।

उनके उपद्रव से मचान बुरी प्रकार हिलने लगा।

एक मनुष्य और एक कुत्ते के पतन से मौत जैसे उस मचान के चारों ओर मँड़राने लगी। लोगों के हृदय में मृत्यु का भीषण नैकट्य प्रकट हो गया। उन्होंने इस दारुण अवस्था में कुत्तों को मुक्त कर देना ही उचित समझा। छप-छप की सात आवाज़ें हुईं और उस बस्ती के समस्त कुत्ते बाढ़ में बह गये।

कुत्तों के इस व्यवहार से मचान शांत अवश्य हुआ पर उस पर मृत्यु की अँधेरी छाया और भी अँधेरी हो गई। अभी जल अपने पूर्ण कोप पर नहीं पहुँचा है और नौ बलि ले चुका है। एक निराश विवशता उन वीर हृदयों पर आच्छादित हो गई।

यह शांति और सुरक्षा की भावना क्षणिक थी। जल का वेग आवेग में परिवर्तित हो गया। भूमि डगमगाने लगी। अनुभव हुआ कि उनके जीवन-आश्रय वृक्ष जैसे पानी पर तैर रहे हों। तनिक से झोंके पर वे मचान को भाग्याश्रय छोड़ नदी के साथ चल खड़े होंगे।

अनुभव हुआ कि मृत्यु एक पेंदी विहीन गड़हा है जो उनके नीचे खुल गया है। उनके लिए आकाश-पृथ्वी पर कहीं पैर टेकने को स्थान न था। उस मचान पर वे जैसे शून्य में जीवन के कच्चे धागे से लटक रहे थे। वायु में तनिक-सा झोंका आते ही डोरा टूट जायेगा। उसके पश्चात् वे कहाँ होंगे?

मचान की आत्मा में एक सिहरन व्याप्त हो गई। अंधकार और भी कोलाहल-मय हो गया।

यूसुफ़ को अनुभव हुआ कि पीपल का पेड़ धीरे-धीरे खिंच रहा है। उसने इस ओर ध्यान दिया। पाया कि उसके ऊपर रह-रहकर झटके पड़ रहे हैं। वह हिल-हिल उठता है। यदि वह गिर पड़ा तो?

आगे की कल्पना वह न कर सका।

बात यह थी कि दोनों नावें लाकर पीपल के वृक्ष से बाँध दी थीं। रस्सी लंबी थी। जब लहर आकर वेग सहित नौकाओं से टकराती थी, तो वे उस प्रहार से आहत टूट भागने का भीषण प्रयत्न करती थीं। फलस्वरूप पीपल पर खिंचाव पड़ता था। वह ऐसे प्रत्येक झटके पर हिल-हिल उठता था।

यूसुफ़ ने नावों को काट देने का निश्चय कर लिया। वह छुरा ले, टटोलता, उस शाखा की ओर बढ़ा जहाँ रस्सियाँ बँधी थीं। उसने टटोला, वे तीन थीं। दो नावों की और एक माँस की, वह भी तैर रहा था। तीनों में उद्वेलित जल में अंतर जानना अत्यंत कठिन था।

यूसुफ़ ने रस्सियों के तनाव को अनुभव किया। जिन दो रस्सियों पर अधिक तनाव था उन्हें नावें समझकर काट दिया। कटते ही एक नौका तीर की भाँति धारा पर भाग निकली। यूसुफ़ को अनुभव हुआ कि उसका अनुमान अशुद्ध था। एक नाव कटी है और माँस भी कट गया है। उसके नीचे बैठने का शब्द उसने स्पष्ट सुना। उसका हृदय बैठने लगा।

ग़लती हो गई थी। आगे चलकर वह बड़ी भी प्रमाणित हो सकती है। दूसरों को इसकी सूचना देने की आवश्यकता ही क्या है?

समर्थन किया ठीक ही तो कटा। वह भी तो वृक्ष को हिलाये डाल रहा था।

मैंने रस्सी का तनाव देखकर काटा है। भोजन से प्राणरक्षा इस समय अधिक आवश्यक है। ठीक ही तो किया है। पीपल अब उतना कहाँ हिलता है!

उसने वहीं वृक्ष पर टंगे-टंगे सुना कि प्रायः प्रत्येक कंठ से इस तनाव से निस्तार पाने पर अल्लाह के प्रति धन्यवादात्मक शब्द निकल रहे हैं। उसने ठीक ही किया है।

उसे शांत बैठे अधिक समय न हुआ था कि बाईं ओर छपाक की आवाज़ ज़ोर से आई, जल की छींटें उछलकर यूसुफ़ तक पहुँचीं। सबने जाना कि झोपड़ियों के पीछे जो झाऊ का छोटा, पर वृद्ध वृक्ष था, वह गिर पड़ा है। यूसुफ़ के प्राण काँप गये।

यह पीपल भी गिर सकता है। वह घबराया। उस वृक्ष के पतन से जो विशाल तरंग उत्पन्न हुई उसने नौका को धक्का दिया। यूसुफ़ ने अपने नीचे वृक्ष को हिलता अनुभव किया। मचान पर गूँजा 'या अल्लाह!'

यूसुफ़ से रहा न गया। उसने उस अकेले रस्से को स्पर्श किया। वह इस्पात की छड़ के समान कठोर था। यूसुफ़ का हाथ काँपा और फिर उस रस्से के पानी में गिरने का शब्द जल की निर्मम खिल-खिलाहट में खो गया।

नाव को काटकर यूसुफ़ का मन कुछ हलका हो गया। अब किसी प्रकार का भय उन्हें नहीं है। यह दोनों वृक्ष खड़े रहेंगे, मचान खड़ा रहेगा। अल्लाह उनपर रहम करेंगे। वे लोग इस भीषण प्राकृतिक प्रकोप का क्रोध सह न कर जायेंगे। इसके पश्चात् की समस्या? वह वर्त्तमान के सम्मुख थी ही नहीं।

यूसुफ़ ने जो कल्पना की थी वह वास्तविक थी। अब मचान का हिलना पानी के निरंतर बहते रहने पर भी कम था। लोग, जो अब तक दबके जैसे मृत्यु से भिड़ने के लिए अपनी समस्त शक्ति एकत्रित किये बैठे थे, आश्वस्त हुए। मृत्यु का भय विशेष न रहा।

इब्राहीम ने कहा—अल्लाह, ऐसा तूफान दुश्मन को भी न दिखावे!

उसकी बुढ़िया बोली—पानी है या क़यामत! मेरे अल्लाह!

मुबारक ने कहा—इब्राहीम को········।

निकट बैठे क़ादिर ने उसका हाथ दबा दिया। विषय दब गया।

'रहीम की बेटी का निकाह शमशाद के घेवते से तय हुवा है।'

'अच्छा ही नाम है उसका!'

'अलताफ़, लड़का अच्छा है।'

बातें चल निकलीं। ज्यों-ज्यों वे बढ़ीं, भय का वातावरण टूटता गया। नीचे अजगर की भाँति मुख फाड़े लहराते जल का अस्तित्व वे भूल गये।

'इब्राहीम की बहू को अब किसी के यहाँ बैठा देना चाहिए।'

'अब वह अकेली रह गई है। इब्राहीम मर गया होगा। कितनी ज़ोर से लड़ाई हो रही है।'

'जिसकी जो तक़दीर में होता है······।

ज़ैनब ने यह बातें सुनीं। उसका हृदय काँपा। क्या अम्मा ही नदी में गिरी हैं? वह चीख उसके सम्मुख ही हो गई।

'क़ादिर की बहू को तबियत खराब रहती है, काम-धाम करने नहीं······।'

ज़ैनब ने प्रस्ताव सुना। भय से वह और भी वृक्ष से चिपट गई। गुसाईं का मुख उसके सम्मुख आ गया। क्या उसका इब्राहीम वास्तव में मर गया।

नहीं, वह कादिर के यहाँ नहीं बैठेगी। उसकी दाढ़ी कितनी कुरूप है और उसकी नाक, रे अल्लाह! पीट-पीटकर उसने अपनी पहिली को बीमार डाल दिया है।

पर उसका विरोध क्या है। कादिर मुसलमान है। वह बिरादरी के विरुद्ध मुसलमान के यहाँ न बैठने की ज़िद नहीं कर सकती।

मुबारक ने पुकारा—'कादिर, अरे कहाँ हो?'

पीपल के वृक्ष के निकट के सिरे पर बैठा कादिर बोला—क्यों?

'क्या कहते हो?'

'पहले इस आफ़त से तो अल्लाह बचावे!'

'उसपर एतक़ाद रखो। नदी कल उतर जायगी। अब ज़ैनब का······.'

'नहीं भई, अभी नहीं।'

ज़ैनब मारे भय के मरी जा रही थी कि कहीं क़ादिर तैयार न हो जाये। उसका प्यारा-प्यारा इब्राहीम; क्या इसी लिए लोगों ने उसे जोश दिलाकर भरती करा दिया है?

विविध योजनाएँ बनती रहीं। कादिर उसी समय अपनी स्वीकृति न दे सका। और अल्लाह है कि उसके नयनों से कुछ छुपा नहीं है।

बैठे-बैठे समय व्यतीत हो चला। अधिकतर व्यक्ति सो गये। मुबारक ने पूछा—क्यों कादिर, तमाखू ·· •••।

'अरे बैठो, अब तमाखू की सूझती है।'

'समय नहीं कटता।'

'तो अल्लाह का नाम लो।'

वे लोग फिर स्तब्ध हो गये। सरिता का प्रवाह उसी प्रकार जारी था। वह क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति बारंबार फन पटक-पटककर वृक्षों पर प्रहार कर रही थी।

अचानक कादिर ने मचान को अपने नीचे बैठता अनुभव किया। झाऊ का वृक्ष झुका। उसके पश्चात् दोनों बल्लियाँ जो इतने जीवों तथा उनकी सामग्री का भार सँभाले हुई थीं, दियासलाई की तीलियों की भाँति चट-चट टूट गईं।

सब कुछ के नदी में पतन का शब्द वृक्ष-पतन के व्यापक शब्द में छुप गया। छींटे उड़कर जैनब तक पहुँचे। वह शाखा से और भी चिपट गई।

इतने मनुष्य जल मग्न हुए, पर एक चीख, एक चीत्कार, एक रुदन उसके कानों तक न पहुँचा। सब कुछ जल धारा में सागर में बूँद की भाँति बिला गया।

झाड़ की कुछ शाखाएँ पीपल से टकराईं। वह भी हिल उठा। जैनब भय से गिरने को हुई, पर वृक्ष डटा रहा।

—२१—

अनिल ने अपने को जल में फेंक तो दिया, पर जल से स्पर्श पाते ही वह काँपा। एक चेतना उसमें व्याप्त हो गई। तैरने की चेष्टा उसने की। अपने को साधा और त्राण के लिए आस-पास दृष्टि दौड़ाई। कोई थल-खंड उसे दिखाई न दिया। जो थे, वे थे धारा से अत्यंत दूर।

एक बार निराशा उसके प्राणों पर छा गई। वह घबरा गया। जैसे स्मरण आया कि उसे बचने की पूर्ण चेष्टा करनी चाहिए। इस प्रकार अपने को छोड़ देना

कायरता है। आज उसे एक ऐसी शक्ति से लोहा लेने का अवसर मिला है जो वास्तव में कुछ है। अपनी शक्ति की परीक्षा का अवसर आज ही तो है।

उसने नीचे की ओर एक बड़े छतनार वृक्ष को अपनो लक्ष्य नियत कर तैरना प्रारंभ किया। धारा के साथ बहता वह धीरे-धीरे अपनी दिशा के परिवर्त्तन की चेष्टा कर रहा था। उसे अनुभव हो रहा था कि वह नितांत असफल नहीं हो रहा है।

उस विजय की उमंग में वह फूल उठा। वह इस विशाल प्राकृतिक विप्लव को ठगकर मानेगा। मानव की इच्छा के विरुद्ध कुछ करने की शक्ति स्वयं परमात्मा में भी नहीं है। उसकी छाती फूल उठी। नेत्रों की ज्योति द्विगुणित हो गई।

वह बहा जा रहा था। जल का भयावह विस्तार उसके ध्यान को अपने में लेपेटे था। उसे अनुभव हुआ कि महानता स्वयं में एक सौंदर्यशाली वस्तु है। वह इस सौंदर्य में खोता-सा प्रतीत हुआ। तभी अपने मार्ग पर से उसका ध्यान हट गया।

वह जागा जब, जब वह एक विशालकाय भँवर में पड़ गया। आधा चक्कर लगते ही उसका मुख तनिक-सा निकल आया। देखने की शक्ति जाती रही। वह संज्ञा-शून्य हो गया। दो बार तेजी से घूमकर वह भँवर के बीच, जल के नीचे खींच लिया गया।

कुछ क्षण वह जल के नीचे रहा। इसके पश्चात् जल ने जैसे अनिल को चूसकर उसका शरीर कोई दस गज दूर बाहर फेंक दिया। वह शरीर धारा में बह चला।

वह इसी अवस्था में लगभग तीन घंटे तक बहता गया। जब उसके नेत्र खुले तो उसे अनुभव हुआ कि उसके शीश में बड़ी पीड़ा हो रही है और वह एक विशाल-काय वट वृक्ष के तने के निकट चित पड़ा है। वट की जटा में उसका हाथ अटका हुआ है। जल बारंबार उसके शीश को तने से टकरा रहा है।

उसने बल लगाया और जटा के सहारे जल में खड़ा हो गया। दो क्षण सुस्ताया और फिर ऊपर चढ़ वृक्ष के ऊपर जा बैठा।

चारों ओर जो अंधकार था, वह इस वृक्ष में और भी घना था। उसने सोचा यह हुआ क्या ?

अवश्य ही वह बेहोश हो गया था। फिर बचा कैसे ? अवश्य धारा ने लाकर

उसे वृक्ष के तने से टकरा दिया। उसी आघात से उसकी चेतना पुनः हरी हो गई है। यदि वह वृक्ष से न टकराया होता, बहता चला गया होता तो! वह पसीने से नहा गया।

अब उसके संमुख लबी रात्रि थी। वह थर-थर काँप रहा था। जो वस्त्र पहिन कर वह जल में कूदा थी, वे सब जल के थपेड़ों ने उसके शरीर से न जाने कब पृथक् कर दिये थे। वह एक दम आदिम मनुष्य की भाँति उस वट वृक्षपर कुछ भोजन टटोलने लगा।

अंधेरे में टटोल-टटोलकर कुछ कच्चे वटफल उसने तोड़े और खाये। वे फल उसे इस समय अमृत के समान स्वादिष्ट लगे, यदि अमृत में कुछ स्वाद होता हो तो!

अनिल के भीतर से उठा कि वास्तव में जीवन तो यह है। घर में बिस्तर पर बीमार पड़कर मर जाना, एक स्थान से अबाध भोजन-सामग्री प्राप्त करते रहना, उसमें जीवन का यह आनंद क्या है? यह जोखिम का आनंद! यहाँ जीवन अपने नग्न रूप में है।

उसने कई जटाएँ और खोज निकालीं। बालपने में खेल-खेल में जो वृक्षों पर चढ़ने का अभ्यास उसे हो गया था वह बड़े काम आया। पैरों से खोजकर उसने एक मोटो जटा में सीढ़ी खोज निकाली। उसी के आश्रय नीचे उतरकर जल तक पहुँचा। एक हाथ से जटा पकड़ कर दूसरे हाथ से जल पिया। संतुष्ट हो पुनः ऊपर चढ़ आया।

अपने इस जीवन से, जिसे आरंभ हुए अभी कुछ ही मिनट हुए थे, वह प्रसन्न था। जितना सुख वह इस समय अनुभव कर रहा था उतना इस प्रकार का—केवल जीवित रहने मात्र का—सुख उसने कभी अनुभव नहीं किया था। वह पुनः वृक्ष के मुख्य तने के सहारे जहाँ से तीन शाखाएँ फूटती थीं, आराम से बैठ गया। हाथ पैर सरलता से फैला दिये।

नीचे तने से टकराता जल कोलाहल कर रहा था, जब कोई बलशाली तरंग आकर तने से टकराती थी तो उसके छींटे उछलकर अनिल तक आ जाते थे।

उसने अनुभव किया कि नयन मुँदे जा रहे थे, पर ऐसी अवस्था में निद्रा निरापद नहीं है। अनिल के निकट जो दो हल्की-हल्की जटाएँ नीचे लटक रही थीं उन्हें ऊपर खींच लिया। लंबी जटा को उसने शाखाओं से लपेट दिया। जिससे वे एक प्रकार के पलंग में परिवर्तित हो गईं।

वह उसके ऊपर लेटा और दूसरी जटा से अपने को शाखा के साथ बाँध लिया। इसी अवस्था में कुछ क्षण भर वह नंगे शरीर में चुभते काठ का कष्ट अनुभव करता रहा और फिर सो गया।

निद्रा जैसी शीघ्रता से आई वैसी शीघ्रता से चली भी गई।

उसका पैर शाखा से बाहर निकला था। उसे अनुभव हुआ कि कोई वस्तु उससे टकराई है। वह उठा। लगा कि टटिया है। वह संपूर्णतया जग गया।

इस समय यदि एक टटिया उसे मिल जाती तो उसका बिछौना अत्यंत सुंदर हो जायगा। उसने लहर के बल पर खड़ी और शाखा से अड़ी टटिया को कसकर पकड़ लिया, तथा ऊपर खींचने का प्रयत्न करने लगा।

इस क्रिया में उसे अनुभव हुआ कि कोई उसे नीचे पकड़े है।

'नीचे कोई है ?' वह चिल्लाया।

'अल्लाह के लिए मुझे बचा लो।'

'ठहरो, मैं एक जटा नीचे लटकाता हूँ, उसे पकड़कर ऊपर चढ़ आओ।'

'पकड़ ली ?'

'हाँ।'

'टटिया छोड़ दो।'

'अच्छा।'

अनिल ने टटिया खींचकर शाखाओं पर रख दी। वह पर्याप्त बड़ी थी। अंधेरा था, इसलिए इस कार्य की कठिनता और भी बढ़ गई थी।

टटिया रखकर अनिल ने देखा कि वह व्यक्ति अभी तक ऊपर नहीं आया है।

'अरे हो ?'

'हाँ।'

'ऊपर चढ़ क्यों नहीं आते ?'

'चढ़ा नहीं जाता।'

'अच्छा, ठहरो। हाँ, मैं खींचने का प्रयत्न करता हूँ।'

पंद्रह मिनट के अथक परिश्रम के पश्चात् एक व्यक्ति उस टटिया पर और आ गया।

अनिल को शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि आगंतुक नारी है और युवती है। वस्त्र रहित भी वह उतनी ही है जितना कि वह।

एक संकोच उसमें आ गया।

परस्पर स्पर्श से एक दूसरे के विषय में जो ज्ञान उन दोनों को प्राप्त हुआ उसे पूर्णतया पचा लेने और स्थिति स्वीकारने में कुछ समय लगा। कुछ समय तक दोनों मौन बैठे रहे।

अनिल को लगा कि वह काँप रही है। उसने उसे स्पर्श करके कहा—'सर्दी लग रही है ?'

'नहीं, हाँ।'

'फिर काँप क्यों रही हो ?'

वह बोली नहीं।

'तुम्हारा नाम ?'

'मेहर।'

'कब, कैसे···?'

'दोपहर की बही हुई हूँ। और लोग निकल गये थे, मैं रह गई थी। जब तक वे आयें मैं बह आई। टटिया थी इसी से बच पाई।'

'तुम पानी में गिरी ?'

'नहीं, जब इस वृक्ष से टकराकर टटिया उलटी तो···।'

'और तुम्हारी साड़ी भी यहीं बही।'

'हाँ।'

'देखता हूँ, कदाचित् वृक्ष से अटककर रह गई हो।'

'नहीं, तुम न जाओ।' मेहर ने घबराकर कहा।

'जटा पकड़कर टटोले आता हूँ।'

'नहीं, मैं जाने न दूँगी।'

'कोई भय नहीं है। मैं अभी आ जाता हूँ।' मेहर ने अनिल का हाथ छोड़ दिया।

अनिल उठने लगा तो उसने फिर पकड़ लिया। बोली—'नहीं, वह गई है, जाने दो। तुमने मेरी जान बचाई है। नहीं, तुम बैठ जाओ।'

'तुम व्यर्थ डर रही हो, कोई भय नहीं है।'

वह जटा के सहारे नीचे उतर गया। तने के आस-पास टटोला पर, कहीं किसी वस्त्र से उसका स्पर्श न हुआ।

'मिला?'

'नहीं।'

'मैं तो समझती थी कि वह नहीं मिलेगा।'

'पर देख आने में बुरा क्या हुआ?'

'बैठो।'

अनिल उसके निकट अंधकार में बैठ गया। टटिया के हिलने से उसे ज्ञात हुआ कि मेहर काँप रही है। उसने उसका स्पर्श किया।

'सर्दी बहुत लग रही है?'

'नहीं।'

अनिल को अपनी विवशता ज्ञात हुई।

'कुछ खाया है, खाओगी?'

'क्या?'

अनिल वास्तव में उसके निकट से उठना चाहता था। वह अंधकार में वटफल खोजने चल दिया।

'कहाँ जा रहे हो?'

'अभी आया।'

अनिल चला गया। और उस अंधकार में जोखिम ले-लेकर फल खोजने लगा।

एक मुट्ठी बर-बंटे लेकर वह लौट आया। मेहर ने फल खाये और जटा के सहारे नीचे लटककर अनिल ने जो वट-पत्र में जल भरकर दिया उससे अपनी प्यास बुझाई।

— २२ —

अनिल के लिए यह स्थिति विचित्र थी। वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि इस नवीन परिस्थिति में कैसा व्यवहार करे। अधंकार है, यही एक कुशल है।

वह कुछ क्षण मौन बैठा रहा। इसी समय उसे लगा कि वह युवती काँप रही है। रह-रहकर जो टटिया हिल रही थी वह इसकी सूचना दे रही थी। वह स्वयं सर्दी अनुभव कर रहा था। इतना परिश्रम करने से शीत-निवारण हो गया था।

उसे लगा कि उसके पास ताप पर्याप्त है। मेहर इसमें से कुछ ले सकती है। पर फिर एक झिझक उसके मार्ग में आ गई। वह और भी सिकुड़कर बैठ गया।

'सो गये?' मेहर ने पूछा।

'नहीं तो।'

और इसके पश्चात् दोनों फिर स्तब्ध हो रहे। थोड़ी देर पश्चात् अनिल ने पूछा, 'क्यों?'

'कितना अँधेरा है।'

'हाँ।'

'तुम्हें डर नहीं लगता।'

'डर काहे का?'

'अँधेरा जो है।'

अनिल ने उत्तर नहीं दिया। फिर थोड़ी देर पश्चात् मेहर ने उसे स्पर्श किया।

'सोने लगे?'

'नहीं तो।'

'तुम्हारा शरीर गर्म है।'

'क्यों, क्या जाड़ा लगता है?'

'हाँ।'

अनिल को लगा कि अनिल कितना निरीह है। वह शीत से काँप रही है। यदि उसके पास कोई भी वस्त्र होता तो वह उतारकर उसे दे देता, पर।'

'तुम्हारा शरीर गर्म है।'

और अनिल ने अनुभव किया कि मेहर उसकी ओर झुक रही है। उसने अंधकार में जानने को हाथ बढ़ाये। उन्होंने मेहर को स्पर्श किया। वह वास्तव में काँप रही थी। अनिल के मन में जो एक बाधा थी वह एक क्षण दया के प्रवाह में जाने कैसे घुल गई। उसने मेहर के शरीर को पकड़कर अपनी ओर खींचा, कुछ स्वयं सरका और इस प्रकार दोनों के शरीर सट गये। अनिल ने उसे अपनी रक्षा में ले लिया।

मेहर एक बार काँपी और फिर वैसी ही बैठी रही। ज्यों-ज्यों उसके शरीर में गरमाई आती गई वह स्थिर होती गई।

वे कुछ क्षण ऐसे ही बैठे रहे। दोनों के लिए यह घटना धक्का थी। दोनों ने इस स्थिति को स्वीकारने में समय लिया।

जब स्वस्थ हुए तो अनिल का हाथ मेहर के मुख पर पड़ा। उसको लटें इधर-उधर बिखरी थीं। अभी वे बिलकुल सूखी न थीं। उसने उन्हें एकत्र कर बलपूर्वक उनका जल निचोड़ा।

मेहर ने अंधकार में अपना हाथ अनिल के मुख पर फेरकर उसका मुख देखा।

अनिल ने पूछा, 'तुम्हारे पति हैं?'

'नहीं।'

'अविवाहित हो!'

'नहीं।'

'फिर?'

'थे।'

'अब कहाँ है।'

'अल्लाह के घर।'

'कैसे?'

'मारे गये ।'

'सिपाही थे ?'

'नहीं ।'

'फिर ?'

'लड़ाई में !'

'कहाँ ?'

'अपने घर के पास ही ।'

'किसने…?'

'मछली बांटने पर झगड़ा हुआ था । तभी चोट आई । अस्पताल में जाकर मर गये ।'

'तुम कहाँ से बही थीं ?'

'अपने पिता के यहाँ से ।'

'चली आई थीं ।'

'हाँ ।'

'तुम्हारे पति कैसे थे ?'

'अच्छे खासे थे । हाँ पीटते बहुत थे ।'

'तुम्हें अच्छे…।'

'हाँ ।'

'यदि बहती नहीं तो क्या करतीं ?'

'देवर मुझे अपने घर में डालना चाहता था, पर मैंने पसंद नहीं किया । वह शराब पीता था और उसके घर में दो और हैं ।'

अनिल ने सोचा, मेहर है, पिट-पिटकर भी पति का ध्यान करती है । संसार क्या वास्तव में दुःखमय ही है ? सुख का कोई अंश कहीं उसमें नहीं है ?

उसे लगा कि मेहर का हाथ धीरे-धीरे उसे आवेष्टित कर रहा है । एक कंप उसके शरीर में हो आया । उसने अपने को छिपाना चाहा । पर यह विशेष संभव न था ।

अनिल अपनी स्थिति को लेकर विचार में पड़ गया। यदि सुहासिनी जीवित होती तो!

इन दुर्घटनाओं को माध्यम बना संयोग आज मेहर को उसके निकट ले आया है। क्या यह केवल संयोग मात्र है। अथवा इससे अधिक और कुछ!

क्या मेहर और उसे इस प्रकार मिलाने के ही लिए किसी ने सागर को क्षुब्ध कर सुहासिनी को डुबोया है? सरिता को इतना बढ़ाकर अगणित जीवों को बलि ली है? समझ में नहीं आता। यह व्यवस्था है अथवा अव्यवस्था में से ही जो कुछ निकलता आता है उसे हम आत्मसंतोष के लिए अपनी क्षुद्रता ढँकने के लिए व्यवस्था का नाम दे देते हैं।'

'क्या सो रहे हो?'

अनिल चौंका। मेहर ने उसे और अपने शरीर से लगा लिया।

'सो जाओ।'

'गिर पड़ें तो।'

'नहीं गिरोगी नहीं, मैं जग रहा हूँ।'

'तो तुम सो जाओ। मैं जग रही हूँ। सोने लगूँगी तो तुम्हें जगा लूँगी।'

'नहीं।'

'फिर?'

'मैं प्रबंध करता हूँ।'

अनिल ने स्वयं को और मेहर को अब मुक्त जटाओं से शाखाओं के साथ बाँध दिया। और फिर दोनों जने, बालकों की भाँति, कुत्तों के पिल्लों की भाँति एक दूसरे से चिमटकर सो गये।

अंधकार उस वृक्ष के पत्तों में से झड़ रहा था। नीचे जल उसी प्रकार लहलहाता उमगता निर्मम गति से बह रहा था।

— २३ —

जैनब को रात्रि भर नींद नहीं आई। वह शाखा से चिपटी जागती रही। जिस पीड़ा से वह झोंपड़ी में कराहती थी वह इस समय न जाने कहाँ चली गई।

सागर-सरिता और अकाल

एक भय से उसके प्राण काँप रहे थे। सब डूब गये हैं? क्या वास्तव में सब डूब गये हैं? क्या वही इस बस्ती में से अकेली बची है?

गुसाईं भी क्या इस बाढ़ में डूब गये होंगे। नहीं, वे लोग समय रहते आश्रम से हट गये होंगे। कदाचित् दिन में आश्रम की नावें उन्हें बचाने आयें। गुसाईं उसमें अवश्य आयेंगे। वह वहाँ पहुँचकर उनके दर्शन करेगी।

क्या बस्ती में से वास्तव में कोई नहीं बचा? वह संसार में अब अकेली रह गई? उसका इब्राहीम आकर उसे खोजेगा और न पायेगा!

पर वह आयेगा क्यों? क्या वह जीवित है! कल वे लोग उसे कादिर के यहाँ बैठा देने की बात कर रहे थे। क्या वास्तव में उसका इब्राहिम मर गया है? वह संसार में क्या अब अकेली है?

जी में आया कि पुकारे, कि कोई और बचा है क्या? पर कंठ न खुला। इच्छा घुमड़-घुमड़कर रह गई।

मचान गिर जाने के पश्चात् वृक्ष का हिलना कम हो गया था, पर फिर भी जैनब इतनी भयभीत थी कि कहीं उसके बोलने मात्र से ही यह पेड़ न भहरा पड़े। वह साँस साधे शाखा से चिपटी मात्र रही।

खुदा-खुदा करते बड़ी कठिनता से दिन निकला। ज्यों-ज्यों अंधकार का आवरण संसार पर से हटता गया जैनब की दृष्टि-परिधि बढ़ती गई। उसने जो सम्मुख देखा उस पर उसे विश्वास न हुआ। उसने नयन मले और फिर देखा। पानी, पानी और पानी। जहाँ तक दृष्टि जाती थी जल ही जल दृष्टिगोचर होता था। वह काँप गई।

इतनी भीषण बाढ़ की कल्पना उसने न की थी। विस्तार से भयभीत होकर उसने अपनी दृष्टि का क्षेत्र संकुचित कर लिया, अपने निकट देखा। पीपल के वृक्ष पर उसे अनुभव हुआ कि वह अकेली ही है। और झाऊ का वृक्ष गिरा तो एक चौथाई पीपल के ऊपर धरा है। मचान का तनिक-सा भाग भी कहीं शेष नहीं है।

वह पुनः काँपी। पर इस बार जल के भय से इतनी नहीं जितनी कि अपने अकेलेपन के भय से। उसने भविष्य की ओर दृष्टिपात किया। जल वैसा ही उमँगा

चला आ रहा है। पता नहीं कितने दिन यह दशा रहे। क्या उसे भूखा प्यासा ऐसे ही मरना होगा?

पीपल की शाखाओं पर उसने अपनी दृष्टि से मनुष्य की खोज प्रारंभ की। एकाएक उसकी खोज सफल हुई। उसने देखा कि कीड़े की भाँति एक मनुष्य शाखा से चिपटा हुआ है। उसकी पीठ जैनब की ओर है।

अब जैनब फिर काँपी। केवल एक मनुष्य ही यदि बचा है तो यह उसे भाया नहीं है। वह नारी है।

उसने अपनी खोज प्रारंभ रखी। उसे फिर सफलता हुई। उसने एक और पुरुष को खोज निकाला।

अब उसे संतोष हुआ। अरक्षा का भाव जो उसके मन में आ रहा था वह दब गया। जब पुरुष दो हैं तो वे एक दूसरे के विरुद्ध उसकी रक्षा करेंगे। अनिल का मुखमंडल उसके सम्मुख आ गया। क्या वह भी बह गया होगा? उसके प्राणों में सनसनी दौड़ गई।

इसी समय एक ऊँची शाखा पर से एक चीख़ वातावरण में गूँज गई। जैनब की दृष्टि उस ओर गई। उसने देखा कि एक असाधारण रीति से मोटा सर्प धीरे-धीरे ऊपर उस व्यक्ति की ओर चढ़ रहा है।

उसकी दृष्टि सर्प से हटकर रहमान की दाढ़ी पर जम गई। वह बुरी प्रकार काँप रही थी। तभी जैसे रहमान बेसुध होता प्रतीत हुआ। वह डगमगाया, इधर-उधर हिला; उसके हाथ से वृक्ष छूट गया। पके ताल-फल की भाँति वह नीचे टपक पड़ा। छपाक से शब्द हुआ, और वह जल के गर्भ में विलीन हो गया। दो क्षण पश्चात् वह ऊपर आया, तैरकर झाऊ को ओर जाने की चेष्टा करने लगा। पर जल के थपेड़ों ने उसका मुँह फेर दिया। वह घूमा, एक क्षण जैसे ठिठका और फिर वेग से धारा में बह गया।

कादिर ने पुकारा, 'यूसुफ़!'

'कादिर!' दूसरी शाखा से यूसुफ़ ने उत्तर दिया। इन शब्दों द्वारा दोनों ने

मानवी शक्ति-सीमा पर टिप्पणी की और जैसे एक दूसरे का स्पर्श कर शक्ति ग्रहण की ।

जैनब ने सोचा, मनुष्य क्या है ? रहमान अभी था, अब नहीं है । और इसी कादिर के घर वे लोग उसे बैठाने को कह रहे थे । पर वे लोग कहाँ हैं । और रहमान के स्थान पर कादिर क्यों न हुआ ।

वह पुरुषों की दृष्टि न पड़े इससे शाखा से और भी अधिक चिपक गई । रात्रि भर उसने दिन होने की प्रार्थना की थी, पर इस समय अनुभव हो रहा था कि ऐसे दिन से तो रात्रि ही अच्छी थी ।

धीरे-धीरे दोपहर हो आई । जल का बढ़ना बंद हो गया । जिसकी उन्नति रुक जाती है, वह कुछ समय ठहरकर गिरे बिना रहता नहीं । कादिर और यूसुफ़ को अनुभव हुआ कि अब पानी ठहर गया है तो उतरेगा ही । वे लोग भी नीचे उतर आये और झाऊ पर जाकर बैठ गये ।

वे उस वृक्ष से चले गये, इससे जैनब को एक मुक्ति-सी मिली । उन्होंने जैनब को देखा न हो यह बात नहीं थी । उन्होंने उसे देखा, ध्यान से देखा, उसके विषय में भविष्य में क्या करना है यह भी दोनों के मस्तिष्क में पृथक्-पृथक् निर्णय हो गया । पर कोई उससे बोला नहीं । इस समय उन्हें अपनी पड़ी है । ज़रा जल कम हो जाये तो ।

जैनब को जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई, वह भी उसके लिए समस्या ही बन गई । और इसका हल उसने झाऊ पर बैठे उन दोनों पुरुषों पर दृष्टि जमाकर किया ।

ज्यों ही कादिर और यूसुफ़ झाऊ पर पहुँचे उन्हें म्याँऊँ का शब्द सुनाई दिया । इधर-उधर खोजा तो देखा कि एक बिल्ली उनकी ओर आ रही है । मचान पर जितने जीव थे उनमें वही अकेली बची थी ।

'अल्लाह बड़ा कारसाज है ।' कादिर ने भारी हृदय से कहा । अपने परिवार का विनाश उसे अब अनुभव हुआ ।

यूसुफ़ का मन भी भारी हो गया । पत्नी का प्यार और बालक की किलोलें उसके नयनों के सम्मुख नाच गईं । वे अब कहाँ होंगे ? उसका हृदय रो दिया । वे अब

कहाँ होंगे ? कहाँ होंगे ? उसने एक विवश और करुण दृष्टि अपने नीचे बहते जल की ओर डाली, एक लंबी साँस ली, आकाश की ओर देखा और शीश झुका लिया, आँसू नयनों में उमड़े, कपोलों पर बहे और कंठ की ओर चले। कंठ स्वयं भीतर रुँधा हुआ था।

'वह हाथ किसका है ?' कादिर अचानक बोल उठा।

'कहाँ ?'

'वह देख, उस डाली को पकड़े।'

'है तो सही।'

दोनों जने उस ओर बढ़े। यह तो दोनों को विश्वास था कि जिसका हाथ है वह लाश के अतिरिक्त और कुछ न होगी, पर फिर भी इस समय को किसी प्रकार काटा भी जाये।

सँभल-सँभलकर वे उस स्थान तक पहुँचे। कादिर ने झुककर उसका स्पर्श किया। उसने आशा की थी कि लाश पर्याप्त भारी होगी। पर वह हाथ तनिक से में ऊपर खिंच आया। एक हल्की चीख उसके मुख से निकली और उसने उसे वैसा ही छोड़ दिया। हाथ के साथ लाश नहीं थी। शेष शरीर जल के आघातों से टूटकर बह गया था।

कादिर हटकर मुख फेर बैठ गया। पर इस हाथ ने उसका पीछा न छोड़ा। इच्छा न होते हुए भी उसकी दृष्टि रह-रहकर उसकी ओर घूम जाती थी और एक विचित्र भय एवं करुणा का बवंडर उसके हृदय में उठ खड़ा होता था। उसकी शांति भंग हो जाती थी।

धीरे-धीरे उसे यह अवस्था असह्य हो गई। एक भीषण असुविधा उस हाथ के यहाँ होने से उसे अनुभव होने लगी। वह उठा। जाकर उसकी डाली पर बँधी मुट्ठी बल लगाकर खोली और उसे सरिता में प्रवाहित कर दिया।

अब जब दृष्टि उस ओर गई और हाथ को वहाँ न पाया तो उसके हृदय का उद्वेलन कुछ शांत हुआ।

— २४ —

अपने कल्पना-संसारों में लिप्त तीनों अपने-अपने स्थान पर स्थिर रहे। घंटे के

पश्चात् घंटे बीतते चले गये, पर जल पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ा। जैसे कि सर्व-शक्तिमान घड़ी का उसके कार्यों पर कुछ प्रभाव ही न पड़ता हो। उसे न कहीं सभा में सम्मिलित होना हो, न कोई राज-काज देखना हो और न किसी प्रेमिका से गुप्तमिलन की बात हो। जो संसार इन फंदों से परे हो उसपर घड़ी का शासन क्या होगा।

समय ज्यों-ज्यों आगे बढ़ा त्यों-त्यों जैनब को अपने ऊपर दुर्बलता आती प्रतीत हुई। रहमान के टपक जाने से ही उसके प्राण काँप रहे थे। यह अच्छा ही था कि उसे वास्तविक कार्य का ज्ञान न हुआ, नहीं तो वह सर्प से एक क्षण वहाँ शांत न रह पाती। वह समझती रही कि गिरा है ऊँघने के कारण। तंद्रा से उसकी पकड़ ढीली हो गई और वह मृत्युमुख में टपक पड़ा।

यदि उसके साथ भी यही हुआ तो! और अब उसे अनुभव होने लगा कि वह वास्तव में दुर्बल हो रही है। एक रात्रि और संपूर्ण दिन उसे जागते हो गया है। जल है कि घटने का नाम ही नहीं लेता। वह कबतक इस प्रकार जाग सकेगी। अपनी शक्ति बनाये रह सकेगी।

उस शाखा के जोड़ पर बैठे-बैठे जितने आसन संभव थे, वह बदल चुकी है, और इस क्रिया में उसके अंग-प्रत्यंग बुरी प्रकार से दर्द करने लगे हैं।

उसने नयन मूँदे कल्पना की कि उसके शरीर में कहीं पीड़ा नहीं है। वह बलपूर्वक सब सहन कर जायेगी। अब जब पीड़ा का अनुभव जाग पड़ा था तो यह अपने धोखा देना था। इसमें वह सफल न हो सकी। अत्यंत रोकने पर भी उसके मुख से एक आह निकल गई।

जी में उठा कि यदि एक बार कुछ क्षण के लिए वह खड़ी भर हो पाती तो! उसे विश्वास हो गया कि इतने विश्राम से ही रात्रि भर कष्ट सहन करने योग्य शक्ति उसमें आ जायेगी।

उसने चाहा कि वह जहाँ है वहीं खड़े होने का प्रयत्न करे। उसने चेष्टा करने से पहले नीचे देखा। पानी वैसा ही लहलहाकर बह रहा था। जिसमें रहमान नहीं रुक सका, उसकी क्या बिसात है। यदि नीचे सूखा स्थल होता तो वह खड़ी हो,

सकती थी, पर इस समय उसका हृदय ही नहीं, हाथ-पैर भी वायु में पीपल के पत्तों की भाँति काँपने लगे। उसे अपने पर विश्वास न रहा। जितना प्रयत्न किया था उसी को लौटा लेना ही एक समस्या हो गया। इसके पश्चात् वह इतनी भयभीत हो गई कि विश्राम का विचार ही कुछ क्षण के लिए उसके मस्तिष्क से निकल गया। उसके लिए संभावना की सीमा तक कष्ट सहे जाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग ही न रह गया।

यूसुफ़ अपने परिवार की हानि के आश्रय मन में एक तूफ़ान बना ले गया था। प्रारंभ में इसका निर्माण करते समय उसे अच्छा लगा था। एक सांत्वना-सी मिली थी; परंतु अब वह करुणा का बवंडर जैसे उसका स्वामी हो गया था। उसमें पड़कर यूसुफ़ जैसे घुटा जा रहा था। साँस लेने में उसे स्पष्ट कठिनाई हो रही थी। वह उससे छूटकर भागना चाहता था, पर वह सहस्रार्जुन की भाँति अपनी बहुसंख्यक भुजाएँ पसार उसे बारंबार बंदी बना लेता था। यूसुफ़ इस अवस्था में तड़फ़-तड़फ़ उठता था। पर विवश था। वह गिरा हुआ झाऊ का वृक्ष, जिसकी टहनियों पर वह बैठा था, पीपल का पेड़, बहता जल किसी में उसके लिए सांत्वना का एक शब्द भी न था। उसके लिए अब एक ही दैवी विधान था कि वह बाहर होना बंद कर देने पर भीतर ही भीतर रोता जाये और अपने नयनों को शून्य का निवासस्थान बना ले।

कादिर उस टूटे हाथ को पानी में डालकर कुछ समय के लिए स्वस्थ हुआ। भूत-प्रेत का कोई चिह्न अब निकट अवशेष न था। उसने सोचा—उसकी पत्नी बीमार रहती थी। मर गई, अच्छा हुआ, यहाँ सड़-सड़कर मरती अब एक साथ मर गई। अल्लाह ने कैसी अच्छी मौत दी उसे। अपने बंदों की हमेशा सुनता है। उसके मन में और भी विचार आये, जो कायदे के अनुसार आने नहीं चाहिए थे। उसने सोचा—वैसे मरती तो कफ़न पर इधर-उधर कुछ खर्च हो ही जाता। उस सबसे बच गया।

एक लड़की थी। मर गई। कौन पैदा होकर मरा नहीं है। और कादिर ने जब हानि-लाभ का लेखा फैलाया तो उसे लगा कि वह विशेष हानि में नहीं है।

तभी एक और विचार उसके मन में आया। और अब जो संभावित हानि थी भी वह एकदम लाभ में परिवर्त्तित हो गई।

रात्रि के समय बिरादरी ने जैनब का नाम कादिर से जो ले दिया है। उसी से कादिर में नवजीवन आ गया। उसने समझा कि जैनब से अब वह निकाह करेगा। जैनब उसकी पहली बीबी से जवान है। सुंदर है। संसार में उसे कोई घाटा नहीं रहा।

जैनब को उसकी बीबी बनने से कौन रोक सकता है। बिरादरी ने इसका प्रस्ताव किया है। उसे स्वीकार करना ही होगा। जैनब उसकी हो चुकी।

उसने शीश उठाकर अत्यंत आत्मीय दृष्टि से अपने से ऊपर बैठी जैनब की ओर देखा। वह हताश-निराश शाखा से चिपटी थी।

जैनब कबसे इस प्रकार बैठी है। कौन बैठ सकता है। उसे लगा, उसने अबतक उसकी खोज-खबर क्यों न ली। आखिर अब उसका उसके अतिरिक्त और है कौन ?

वह उठा। झाऊ की डालियों पर सँभल-सँभलकर पैर रखता पीपल पर पहुँचा। पुकारा — जैनब !'

जैनब ने नीचे देखा। कादिर एक जोड़ पर खड़ा उसकी ओर देख रहा है। एक आशा उसमें जगी।

'नीचे उतरेगी ?'

'हाँ।'

'आओ' कादिर ने अपने को भली-भाँति तने से अड़ाकर ऊपर को हाथ फैलाये।

जैनब डरती-डरती नीचे की ओर सरकी। पर भय का इतना कारण न था। कादिर ने उसे बीच में ही पकड़ लिया और बिलकुल अपने बल से नीचे उतार दूसरे जोड़ पर रख दिया। उस जोड़ पर खड़े होकर जैनब ने अबूझ दृष्टि से कादिर की ओर देखा। कादिर इतना उत्साहित क्यों है ? और वह अपने अधिकार से आगे जान-बूझकर बढ़ा है अथवा केवल संयोगवश ऐसा हो गया है।

'डरो नहीं!' कादिर ने कहा—पानी अब उतर जायेगा। तुम्हें किसी तरह का कष्ट न होगा।

जैनब ने अपने सम्मुख यह नवीन समस्या उठती देखी। उसने देखा कि उसे प्राकृतिक कोपों से ही नहीं, मनुष्य के कोप से भी बचना है।

कादिर के यहाँ अपने बैठा दिये जाने के प्रस्ताव का उसे स्मरण आया। प्रस्ताव का जन्मदाता और समर्थक मर गये हैं। पर कादिर उस प्रस्ताव को अनुप्राणित करने को तुला हुआ है।

वह असमर्थ थी। उसके सम्मुख चुनाव था कादिर या मौत। निःसंदेह वह कादिर को मृत्यु से अधिक आकर्षक मानती थी। जीवन का मूल्य है। वह वैसे ही फेंक देने के लिए नहीं है।

कादिर उसे सँभालकर झाऊ के मोटे गुद्दे के ऊपर ले आया। दो-तीन कम मोटी शाखायें समानांतर झाऊ की पतली टहनियों से बाँध देने से एक बिस्तर-सा बन गया। कादिर ने उसे वहाँ लिटा दिया। उसने बाधा नहीं दी। इसके पश्चात् कादिर ने जैनब के साथ अधिक स्वतंत्रता बर्तना प्रारंभ की। उसने यूसुफ़ की उपस्थिति को जैसे न गण्य माना।

कुछ क्षण वह सहन करती रही। फिर जैसे अत्यंत दुःखित होकर मुख फेर लिया।

'क्या बात है?' कादिर ने प्यार से पूछा।

'कुछ नहीं!'

'कुछ है तो।'

'कुछ खाने को!'

कादिर के मन में उठा कि जैनब की उससे यह प्रथम इच्छा है, अवश्य पूर्ण होनी चाहिए। जो दूल्हा है उसका अधिकार अन्य लोगों से ऊँचा है।

उसने कुछ स्वामीत्व के भाव से यूसुफ़ से पूछा—'वह मांस जो...?'

यूसुफ़ कादिर की सब करतूतें देख रहा था। यह अवसर ब्याह रचाने और आनन्द मनाने का है, यह उसकी समझ में न आ रहा था। वह वास्तव में इसे अपना

अपमान समझ रहा था। कादिर की दृष्टि में उसकी उपस्थिति जैसे कुछ है ही नहीं। इस प्रश्न के पीछे जो श्रेष्ठत्व की भावना थी उसने उसे और भी भड़का दिया।

वह बोला नहीं। उसकी ओर से मुख फेर लिया।

कादिर जोश में था। बोला—क्या मुख में ताला पड़ गया है ? जबान क्यों नहीं खुलती ?

यूसुफ़ चुप रहा, पर खौल उठा।

'अबे सुनता नहीं, तेरा बाप क्या कह रहा है !'

अब यूसुफ़ से भी न रहा गया। जितना क्रोध परिवारनाश का उसे शून्य पर हो रहा था वह सब-का-सब जैसे कादिर पर लौट पड़ा।

'जबान सँभालकर बोल भूतनी के।'

'साले गाली दी तो ज़मीन में गाड़ दूँगा।'

'अबे जा, तुझ जैसे तीन सौ साठ देखे हैं।'

'आऊँ !'

'असल बाप का है तो आ जा। मैं मुबारक नहीं हूँ। यह समझ ले।'

जैनब मूर्खों की भाँति उत्सुकता से इन लोगों का वाग्युद्ध सुनती रही।

दोनों योद्धा मांस की बात भूल गये। एक दूसरे को भली भाँति समझ बूझ लेने पर अधिक बल देने लगे।

कादिर क्रोध में भर गया। अपनी सम्भावित क्या, वास्तविक दुलहिन के सम्मुख वह अपमान कैसे पी जाये। उसे मरने को स्थान नहीं रहेगा।

कादिर धीरे-धीरे यूसुफ़ की ओर सरका। यूसुफ़ ने अपने चारों ओर देखा, और फिर वह मृत्यु के मुख के ऊपर शत्रु से भिड़ने को प्रस्तुत हो गया।

कादिर ने टूटकर यूसुफ़ पर घूँसे से प्रहार किया। यूसुफ़ बचा गया। इस प्रहार से कादिर के पैरों के नीचे की डाल हिल गई। वह काँपने लगा। यूसुफ़ ने देखा कि जैनब निरंतर उसकी ओर देख रही है। वह वास्तव में उससे रक्षा की प्रार्थना कर रही है।

उसने कादिर को सँभलने का अवसर दिया और फिर उसके मुख पर घूसा मारा।

कादिर नाक तो बचा गया पर कान पर वह पड़ गया। वह झनझना उठा और कादिर समूचा क्रोध से तमतमा उठा। जैनब के संमुख वह पिटे? उसने झाऊ की एक डंडी तोड़ ली और उससे यूसुफ़ पर ताबड़तोड़ प्रहार करने प्रारंभ कर दिये। यूसुफ़ उन प्रहारों के नीचे बिलबिला गया। वह अपना स्थान छोड़कर कादिर पर टूट पड़ा। यदि झाऊ की असंख्य छोटी-छोटी टहनियाँ उनके नीचे न होतीं तो दोनों सीधे पानी में आ पड़ते।

यूसुफ़ ने कादिर को अब पीटना प्रारंभ किया। कादिर विशेष प्रतिकार न कर पाया।

जैनब को अनुभव हुआ कि वे दोनों उसके लिए लड़ रहे हैं। गर्व से उसका हृदय भर गया। कुछ क्षण वह कादिर को पिटते देखती रही। फिर उठी।

यूसुफ़ की दृष्टि जैसे उसी पर लगी थी। उसके उठते ही उसका हाथ रुक गया।

जैनब ने हाथ के संकेत से उसे अपने निकट बुलाया। यूसुफ़ ने आज्ञा पालन की। कादिर ने उठकर उस पर पुनः प्रहार न किया। जैनब यूसुफ़ से क्या कहती है? इस उत्सुकता में वह अपने को भूला रहा।

जैनब ने यूसुफ़ को अपने सिरहाने बैठने का आदेश दिया। यूसुफ़ ठीक प्रकार से स्थान बनाकर बैठ गया। जैनब लेटी और अपना शीश उसकी जंघा पर रख दिया।

कादिर का मुख उतर गया। मन में सोचा, कुछ भी करे निकाह तो मुझ से ही करना होगा। निकाह हो जाने दे, फिर हरामज़ादी से पूरा-पूरा बदला चुका लूँगा।

सोचने और भुनने के अतिरिक्त वह और कुछ न कर सका। वह भी निकट ही एक डाली पर बैठ गया। जिससे यूसुफ़ और जैनब के कार्यों पर दृष्टि रख सके। ईर्ष्या की लपटें उसके अस्तित्व को जलाये डाल रही थीं। यदि वश चलता तो वह जैनब और यूसुफ़ दोनों को आग में डाल देता।

पर वह पहिले यूसुफ़ को मारकर जैनब को मृत्यु से भी कठिन यंत्रणा देना चाहता था, वह जैनब से अब और भी अधिक निकाह करना चाहता था, पर अब घर बसाने के विचार से नहीं, जैनब को दंड देने के विचार से।

जैनब के शीश का स्पर्श पा यूसुफ़ के हृदय में एक मीठी धधक उत्पन्न हो

गई। शांत, सीधी-सादी जैनब कैसे ऐसी हो गई। क्या वह मेरे ऊपर आशिक हो गई है? यदि नहीं तो यह सब क्या है? क्यों है?

उसकी कल्पना को नवीन दिशा मिल गई। पहला संसार जितना करुण और हृदयद्रावक था उतना ही अब सुख की तरंगों से आलोडित। उसका भी तो सब कुछ खो गया है। उसे पुनः अपना संसार बसाना है। और जैनब उसपर आशिक हो गई है। उसके प्रेम में पड़ गई है।

उसने सोचा कि वह असुंदर नहीं है। उसकी सुंदरता, उसकी शक्ति, इन्हीं पर जैनब आकर्षित हुई होगी। उसके मन में उठा—जैनब कितनी अच्छी है। वह प्राणपण से कादिर के विरुद्ध उसकी रक्षा करेगा।

जैनब यूसुफ़ की जाँघ पर अर्द्ध निद्रित-सी पड़ी रही। कादिर उसके और निकट आ गया। उसने विरोध नहीं किया।

वह शांत पड़ी थी। कादिर और यूसुफ़ एक दूसरे के विरुद्ध उसकी रक्षा का प्रण किये एक दूसरे की ओर रह-रहकर रक्तिम नेत्रों से घूर रहे थे।

– २५ –

जैनब रात्रि भर शांति से सोती रही। यूसुफ़ और कादिर स्वामीभक्त कुत्तों की भाँति उसपर पहरा देते रहे। चारों ओर नदी वैसी ही गरजती रही।

दोनों अपनी-अपनी कल्पनाओं में मग्न थे। दोनों की कल्पना में जैनब सम्मिलित थी। एक जैनब के लिए दोज़ख (नरक) को भूमि पर उतार लाना चाहता था और दूसरा उसके आश्रय धरती को जन्नत (स्वर्ग) बना लेने के सपने देख रहा था। जैनब दोनों के मनस्तारों में लिपट-लिपटकर भी वहाँ वैसी ही पड़ी थी।

प्रातःकाल जब जैनब ने नयन खोले तो यूसुफ़ मुस्काया और कादिर क्रोध से काँपने लगा।

जैनब ने देखा कि नदी का पानी उतरने लगा है।

'अल्लाह का शुक्र है।' यूसुफ़ ने कहा।

कादिर ने मुख फेर लिया। फिर कुछ सोचकर पुकारा—

'जैनब!'

जैनब बोली नहीं।

'जैनब !' उसने फिर पुकारा।

'क्यों बेचारी को तंग कर रहे हो ? पड़ी रहने दो।' यूसुफ़ ने जैनब के ललाट पर हाथ फेरते हुए कहा।

'वहाँ टँगी हुई थी, उतारकर इस पलंग पर लिटा दिया तो यह तंग ही किया न ?'

यूसुफ़ चुप रहा।

कादिर कुछ बहुत तेज बात कहने जा रहा था कि उसकी दृष्टि नीचे गई। उसने देखा कि टीले की भूमि निकल आई है। वह एक दम नीचे कूद पड़ा।

'तू कल बड़ा पहलवान का बच्चा बन रहा था, आ तो तुझे बताऊँ।' उसने यूसुफ़ को ललकारा।

यूसुफ़ नीचे कूदने लगा तो जैनब ने उसका हाथ पकड़ लिया, 'क्या पागल आदमी की बात पर ध्यान देते हो।'

यूसुफ़ वहीं बैठा रह गया।

कादिर ने सुना। चीखा—मैं पागल हूँ, हरामज़ादी, लुच्ची ! और न जाने कितनी कथनीय-अकथनीय गालियाँ ज़ैनब को सुनाईं। बैठाये अपने यार को पर··।

यूसुफ़ नीचे कूद पड़ा। दोनों जने गुथ गये। संभव था कि लड़ते-लड़ते जल में जा पड़ते कि बस्ती की ओर से आती नाव के डाँड़ों का शब्द सुनाई पड़ा।

इस जोश में जिनके भूखे शरीर को अपनी दुर्बलता भूली हुई थी वह स्मरण आ गई और वे दोनों प्रतिद्वंद्वी पुनः वृक्ष पर आ बैठे।

रक्षार्थी स्वयंसेवक एक बड़ी नाव लाये थे। यहाँ उन्होंने केवल तीन प्राणी ही पाये।

'और लोग कहाँ हैं ?' एक ने पूछा।

'बह गये।' कादिर ने कहा। 'मैं बचा हूँ, मेरी घरवाली और एक यह आदमी।'

यूसुफ ने कहा—बाबू सा'ब, यह इसकी घरवाली नहीं है। कादिर, तुम झूठ क्यों बोलते हो ?

'चुप क्यों नहीं रहते तुम ? मिया बीबी के बीच में बोलते तुम्हें शरम नहीं आती ? क्या मुझे अपनी घरवाली को तुम्हारी दृष्टि से पहचानना होगा ?'

'कादिर !'

'यूसुफ़ !'

और दोनों उस नाव में लड़ने को उतारू हो गये। रज्जन डाक्टर नाव के नेता थे। उन्होंने धमकाया 'दोनों अलग-अलग बैठो।'

जैनब से पूछा-- तुम किसकी घरवाली हो ?

'किसी की भी नहीं।'

'बाबू, इसका विश्वास न कीजिए, यह अपने यार से फँसी है। मुझे अपना पति मानने से इंकार करती है।'

डाक्टर रज्जन एक झंझट में पड़ गये। उन्हें ध्यान आया कि बाढ़ में पीड़ित प्राणियों को बचाना मात्र उनका कर्त्तव्य है। कौन किसकी पत्नी है यह निर्णय करना उनका काम नहीं है।

बोले--तुम लोग चुपचाप बैठे रहो। थाने में चलकर अपने झगड़े का निर्णय कर लेना।

यूसुफ़ बोला—क्यों कादिर, चलोगे थाने में !

'क्यों नहीं। मैं क्या डरता हूँ ? जो बाहर मेरी घरवाली है वह क्या थाने में नहीं होगी ! चलो थाने में। बाबू हमें पहले थाने में ले चलना।'

'अल्लाह से डरो।' यूसुफ़ ने कहा।

'अल्लाह से तुम डरो जो दूसरों की औरत को बहकाते फिरते हो। जो सच्चा है उसे अल्लाह से क्या डरना।'

डाक्टर रज्जन ने ऐसे लोगों के लिए भोजन से अधिक न्याय की आवश्यकता समझी। उन्होंने दो वालंटियरों के साथ उन्हें थाने भेज दिया। स्वयंसेवकों ने सब कथा थानेदार को कह सुनाई।

थानेदार ने यूसुफ़ से पूछा—क्यों बे, क्या बात है ? सालों भूखे मरते हो, घर मस्ती नहीं जाती !

'हजूर...' और यूसुफ़ ने सब बात थानेदार से कह सुनाई ।

'नहीं हजूर, अल्लाह की कसम, यह मेरी घरवाली है । यह आदमी इसे बहकाना चाहता है ।'

'तुम झूठ बोलते हो । अल्लाह से डरो ।'

'झूठा तू है । कमीना कहीं का !'

यूसुफ़ को क्रोध आ गया । वह कादिर पर टूट पड़ा ।

'बांध दो बदमाश को' थानेदार ने आज्ञा दी ।

'हजूर !' जैनब ने बोलने की चेष्टा की ।

'चुप रह हजूर की बच्ची । जा अपने मालिक के साथ !'

'हजूर ।'

'चलती है कि नहीं हरामज़ादी,' कादिर ने डाटा ।

जैनब ने देखा कि थानेदार वहाँ नहीं है । और यूसुफ़ को उन्होंने कोठरी में बंद कर दिया है ।

उसकी कहीं सुनवाई नहीं है ।

'चलती है कि नहीं !' कादिर ने उसे धक्का देते हुए कहा—चल तो बाहर तेरा सब याराना झाड़ दूँगा ।

भय से थर-थर कांपती जैनब प्रार्थी नेत्रों से थाने की ओर देखती, थाने से बाहर निकल गई ।

थाने से बाहर निकलते ही कादिर ने जैनब की कमर में लात मारकर कहा—'चलती है कि नहीं ?'

— २६ —

कादिर के जाने के आध घंटे पश्चात् एक सिपाही ने यूसुफ़ को हवालात से बाहर निकाला । चार थप्पड़ लगाये और थाने से बाहर धक्का दे दिया ।

पुलिस की कहा-सुनी और मार-पीट का यूसुफ़ पर कोई प्रभाव न पड़ा । वह कादिर के विरुद्ध उबलता रहा । थाने से निकलते ही उसने कादिर को दंड देना विचारा ।

उसने सोचा, कादिर ने जो उसके प्रति अन्याय किया वह चाहे क्षमा भी हो पर जो अल्लाह का नाम ले-ले कर जैनब को अपनी घरवाली बताया है, उसका दण्ड उसे अवश्य दिया जाना चाहिए। प्रत्येक अल्लाह के सच्चे बंदे का फ़र्ज़ है कि वह ऐसे नास्तिक को दंड दे जिससे अल्लाह के पाक नाम पर ये लोग काला धब्बा न लगा पायें।

उसने स्मरण किया कि जैनब उसके साथ है। जो इतना नीच है वह जैनब के साथ कैसा व्यवहार कर सकता है ? निःसंदेह जैनब को वह कठिन दंड देगा। और जैनब, वह उससे प्रेम करती है।

उसका क्रोध कादिर पर उमड़ पड़ा। जो दण्ड वह निर्लेप होकर उसे देना चाहता था वह व्यक्तिगत हो गया। कादिर ने उसका अपमान किया है। जैनब का अपमान किया है। जैनब उसकी है। उसने उसकी दुलहिन को उससे छीना है। यूसुफ़ की मुट्ठी मिंची, दांत जमें, माथे पर सलवट पड़ी और नयन विस्तीर्ण होकर अंगारे-से लाल हो गये। साँस ज़ोर से चलने लगी।

वह भूखा कमज़ोर है तो क्या है ? कादिर को आज वह छोड़ेगा नहीं। उसकी जैनब कादिर के साथ...। आगे वह सोच न सका।

कादिर का वह ख़ून करेगा।

उसने कल्पना की कि सम्मुख कादिर और जैनब एक गुदड़ी में लिपटे पड़े हैं। उसने कादिर पर कल्पना में प्रहार कर दिया।

वह उन्मत्त हो उठा। वह ख़ून करेगा ख़ून। इस कादिर का ख़ून करेगा।

वह ख़ूनी कुत्ते की भाँति उसे उस छोटे से नगर की सड़कों पर खोजने लगा।

साधारण अवस्था में नगर में इतनी भीड़ सड़कों पर न होती थी, पर आजकल बाढ़ के कारण निकटवर्ती ग्रामों के लोग, बचाये हुए बुभुक्षित व्यक्ति यहाँ भरे हुए थे। इतने लोगों में से इस झुकती संध्या के समय कादिर को खोज निकालना सरल कार्य न था। पर वे दो हैं। कादिर और जैनब। पहिचान लेना उसके लिए कठिन होगा।

कादिर के साथ जैनब का स्मरण आते ही उसका क्रोध भीषण रीति से भड़क उठा। वह कादिर को छोड़ेगा नहीं।

वह गली-गली उसे खोजने लगा। जहाँ भूखों को निरंतर भोजन वितरण किया जा रहा था, वहाँ पहुँचा। भोजन लिया। उसे खाने बैठा। प्रथम ग्रास उठाया ही था कि हाथ रुक गया। नहीं, वह जब तक कादिर से इस अपमान का बदला न ले लेगा भोजन नहीं करेगा। शाम के समय वह जैनब को कादिर के पास नहीं छोड़ सकता।

उसने भोजन बाँध लिया और फिर कादिर की खोज में चल दिया। उसे लगा कि उसकी खोज व्यर्थ जा रही है। क्या नगर की गलियाँ उसे निगल गईं? नगर अपरिचित न था। जहाँ कादिर, जब मछलियाँ बेचने आता था, ठहरता था वहाँ वह पहुँचा।

वह स्थान भरा हुआ था। मनुष्य आ-जा रहे थे। बच्चे रो रहे थे और उनकी मा-बहिनें उन्हें धमका चुप रहने को प्रोत्साहित कर रही थीं। पर यह प्रोत्साहन विशेष फलदायक सिद्ध न हो रहा था।

अब तक यूसुफ़ जैनब के सहारे कादिर को खोज रहा था। जैनब स्वयं भी अपनी रक्षा कर सकती है इस ओर उसका ध्यान नहीं गया था अब उसे अनुभव हुआ कि कल रात्रि जिस कुशलता से उसने कादिर को मूर्ख बनाया था। अवसर पाते ही अवश्य ही वह उसके पास से निकल भागेगी।

नवीन खोज में उसे सफलता शीघ्र हुई। कादिर वहीं अपने पुराने स्थान के पास नींद में बेहोश पड़ा था। उसे देखते ही उसके नयनों में रक्त उतर आया। पर इतने मनुष्यों के बीच वह उसका खून कैसे करे?

वह इधर-उधर घूमता रहा। जी में आता कि भोजन जो बँधा है उसे खा ले, पर रुक गया। पहिले कादिर को दंड दे ले तब।

पर जैनब कहाँ है। क्या कादिर ने उसे कहीं छुपा दिया है।

यदि जैनब का पता न चला तो कादिर की हत्या करने से लाभ? पहिले जैनब का पता लगाया जाय। उसके पश्चात् कादिर को तो वह जब चाहे मार सकता है। मनुष्य की जान लेना क्या बड़ी बात है?

वह जाकर कादिर के निकट बैठ गया।

'कौन है?' कादिर ने अर्द्ध सुप्त अवस्था में पूछा।

सागर-सरिता और अकाल

'कादिर !'

कादिर करवट लेकर सो गया।

'कादिर !'

उसने उसे पकड़कर झकझोर डाला। पर कादिर ने उठकर उत्तर न दिया। अब यूसुफ़ ने उसकी दाढ़ी पकड़ ली और उसे खींचना प्रारंभ कर दिया।

काफ़ी प्रयत्न के पश्चात् कादिर जागा।

'क्या है ?'

'उठेगा या नहीं।'

'क्यों ?'

और यूसुफ ने फिर उसकी दाढ़ी खींची।

चैतन्य होने पर कादिर ने आश्चर्य से देखा। उसे अपने नयनों पर विश्वास न हुआ। उसने समझा कि यह यूसुफ़ का भूत उसे जगा रहा है। वह डर गया।

'आँ आँ' वह डरा।

'ओ मैं यूसुफ़ हूँ।'

'यूसुफ़ तो थाने में है।'

'छूट आया हूँ।'

'अरे उन कमबख्तों ने तुझे छोड़ दिया ?'

'छोड़ते नहीं तो क्या घरजमाई बनाते।'

'तेरी तबियत तो ठीक हो गई न ?'

'वह तो पीछे बताऊँगा। पहिले यह तो बता कि जैनब कहाँ है।'

'यहीं होगी।'

'कहाँ ?'

और इसके पश्चात् दोनों जने जैनब को खोजने लगे। कादिर का पारा अत्यंत ऊँचा चढ़ गया।

'मिली तो मारते-मारते इस बार दम ही निकाल दूँगा।'

'कहाँ गई ?'

'ढूँढ तो रहा हूँ।'

'तो ठीक ठीक बता ?'

'बात क्या है ?'

'बता जैनब कहाँ है ?'

उन्होंने आस-पास देखा, अँधेरा काफी घिर आया था। जैनब उन्हें कहीं दिखाई नहीं पड़ी।

'बतायेगा नहीं !'

'क्या बताऊँ !'

'देख कादिर, तू मुझे जानता नहीं है। मैं बहुत बुरा आदमी हूँ।'

'तो मैं क्या करूँ।'

'बतायेगा नहीं ?'

'क्या बताऊँ ?'

यूसुफ़ को लगा कि कादिर ने उसे कहीं छिपा दिया है।

'कादिर !'

यूसुफ़ भीतर-भीतर भुन रहा था। उसने कादिर की खुशामद करने की चेष्टा की थी। पर काम बनता दिखाई न दिया। यह कादिर एक ही घुटा हुआ है।

वह एकाएक कादिर पर टूट पड़ा। कादिर सँभल न पाया, गिर पड़ा। यूसुफ़ आपे में न था, उसने उसे मारना प्रारंभ किया। पहिले दो-तीन प्रहार कादिर ने रोके। पर इसके पश्चात् जैसे उसकी शक्ति सूख गई। वह जड़वत् पिटता रहा।

यूसुफ़ चीखा—बता कहाँ छिपाया है जैनब को।'

'मुझे क्या पता ?'

'अभी पता हुआ जाता है।'

मारते-मारते यूसुफ के हाथ थक आये और साथ-साथ निकट के लोग भी एकत्रित हो गये।

'बताता नहीं ?'

'कादिर चुपचाप उठकर बैठ गया।

'बतायेगा नहीं ?' यूसुफ़ ने फ़िर धमकाया।

'क्या बात है ?' एक दर्शक ने पूछा।

'तुमसे मतलब ! जाओ अपना काम करो।' यूसुफ़ ने डाँटा।

'बतायेगा नहीं ?'

कादिर इतना पिटा था। अब खिलखिला कर हँस पड़ा। उसने यूसुफ को हाथ पकड़कर बैठाया।

पूछा—खाने को मिला ?

'तू बतायेगा नहीं ?'

'बताऊँगा। पर पहिले खाने को खाले तब। जा—गली में बँटता है।'

'हाँ, जिससे मैं वहाँ जाऊँ और तू कहीं और खिसक जाये।'

'अल्लाह की कसम मैं कहीं नहीं जाऊँगा।'

'मुझे तेरी कसम का विश्वास नहीं। खाने के लिए मेरे पास है।'

'ला तो बिस्मिल्लाह करें।'

यूसुफ़ ने भोजन निकाला और वहीं अंधेरे में खाने बैठ गये।

बीच में यूसुफ़ ने पूछा—कादिर, बता दे तूने जैनब को कहाँ छुपाया है ?

'बताऊँगा !'

वे भोजन समाप्त कर चुके। पानी पिया और फिर वहीं आ बैठे।

'बता न कहाँ छुपाया है ?'

'यूसुफ़, मुझे तेरी अक्ल पर रहम आता है।'

'ठीक-ठीक बता कहाँ छुपाया है ?'

'वह तो मैंने थाने से निकलते ही पाँच-सात हाथ मार लिये, नहीं तो मेरे हाथ कुछ न आता।'

'बतायेगा नहीं ?'

'बताता तो हूँ।'

'बता न ?'

'मुझे पता नहीं। यहाँ तक वह मेरे साथ आई थी। मैंने उसे खाने को नहीं

दिया। उसके बाद सो गया। फिर मुझे पता नहीं।'

'पहिले से क्यों नहीं बताया।'

'यूसुफ़ उसके पीछे पागल न बन। वह बहुत चलती हुई है। तेरे हाथ नहीं आयेगी। देखता नहीं किस होशियारी से हम दोनों को लड़ाकर वह निकल गई है।'

'कादिर!'

'मैं ठीक कहता हूँ। वह हम दोनों को उल्लू बना गई है।'

'कादिर!'

'यूसुफ़!'

—२७—

जैनब अनुभव कर रही थी कि कादिर की अपेक्षा यूसुफ़ से पीछा छुड़ाना अधिक कठिन है। पर अल्लाह ने बानक बना दिया है, यह उसे पीछे ज्ञात हुआ, जब कि कादिर दो जनों का भोजन अकेला खाकर नशे से झूमकर सो गया।

इस अवस्था में यदि यूसुफ़ साथ होता तो वह अपने को स्वतंत्र न पाती। पर कादिर थाने गया और यूसुफ़ वहाँ बन्द कर लिया गया, यह सब अत्यंत अच्छा हुआ।

उसने कादिर को इस परोक्ष सहायता के लिए धन्यवाद दिया और चुपचाप वहाँ से उठकर जनसमूह में खो गई।

वह इन लोगों से अधिक से अधिक दूर चला जाना चाहती थी।

—२८—

अनिल को विपत्ति के इन दिनों जो अनुभव हुआ वह नवीन था। पुरुष के नाते उसने कितनी ही बातों की कल्पना की थी, इस समय वे रहस्यमय पुस्तक की भाँति उसके नयनों के सामने थीं। वह अपने को उसमें खोया-सा अनुभव कर रहा था।

इसमें उसे अतिशय आनंद प्राप्त हुआ था। इतना तीव्र केंद्रित आनंद उसने कभी जाना नहीं था। वह आनंद जो शरीर की नस-नस में स्फूर्त प्राण डालकर अस्तित्व को सुखद शांति से भर देता था। पर इस आनंद अनुभव के साथ-साथ अनिल के मन में एक भँवर उत्पन्न हो गई। आनंद के पीछे एक भय उसमें व्याप्त हो गया।

वह इन क्षणों के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं के जाल में खो गया। वह समझ नहीं पा रहा था कि इन घटनाओं से उसमें कुछ जुड़ा है अथवा उसमें से कुछ घटा है। वह दोनों ही बातें अनुभव कर रहा था।

दो दिन पहले अनिल जो था वह अब नहीं रहा है। नारी के प्रति उसकी धारणा में महान् परिवर्त्तन हो गया। नारी कल्पना के उच्चाकाश से उतरकर संसार में उसी के तल पर आ गई। वह उससे भी अधिक मर्त्य है।

प्रारंभ में अनिल को मेहर नितांत असमर्थ लग रही थी। परन्तु अब उसे अनुभव हो रहा था कि मेहर उससे अधिक समर्थ है। अनिल ने नहीं, उसने अनिल को अपने वश में कर लिया है।

अनिल इस बंधन में जहाँ एक सुख अनुभव कर रहा था, वहाँ यह बंधन है यह भी उसे ज्ञात था।

पानी जब अपने सर्वोच्च तल पर पहुँचकर उतर चला तो एक नवीन समस्या उनके संमुख उपस्थित हुई।

'अब क्या होगा ?' वटपत्रों से लज्जा ढांपे मेहर ने कहा।

अनिल बोला नहीं। वह भी इसी समस्या पर विचार कर रहा था। क्या वह अब आत्मवंचना बिना आश्रम में लौटकर जा सकता है ? क्या उसने मेहर के संपर्क से अपने को पतित नहीं कर लिया है ?

अब जब पतित होने की बात मन में उठी तो विचार किया कि इस पतित होने का उत्तरदायित्व अधिक किस पर है ?

उसने समस्त घटनाओं को मन में दुहराया। वह नितांत अनभिज्ञ था। उसे नारी का कुछ भी ज्ञान न था। मेहर आई पुरुष के ज्ञान से संपन्न।

वही उसे नीचे खींच ले गई है। उसी ने स्वर्ग नरक का मार्ग उसे दिखाया है। यदि वह न आती तो। मेहर के प्रति वह क्रुद्ध हो गया। बोला नहीं। गंभीर होकर बैठ गया।

मेहर ने उत्तर की प्रतीक्षा की। पर उत्तर प्राप्त न हुआ। उसे लगा कि अनिल को इस प्रश्न में कोई रुचि नहीं है। उसके लिए जैसे यह समस्या ही नहीं है।

परंतु मेहर के लिए यह अत्यंत महान् समस्या है। मृत्यु के मार्ग में उसने अनिल को पाया है अमृतस्वरूप। वह उसे खो नहीं देना चाहती।

बोली— 'क्या बात है ?'

'कुछ नहीं।' अनिल ने रूखेपन से कहा।

'क्या तबियत खराब है, हो जाना असंभव नहीं'—चिंता का भार इन शब्दों पर अनिल को स्पष्ट हो गया। उसने अनिल के मुख को अपनी ओर फेरा। दोनों हाथों के बीच उसे स्थिर कर ध्यान पूर्वक देखा।

अनिल ने इस क्रिया में स्पष्ट पाया कि मेहर उसका अस्वास्थ्य कल्पना कर चिंतित और व्यथित हो उठी है।

बोला—'नहीं, शरीर ठीक है।'

मेहर ने उसके मुख पर हाथ फेरा। उसके शीश को कोमल स्पर्श से पुलकित करते अपनी ओर खींचा।

'तो फिर बोलते क्यों नहीं ? क्या मुझ से क्रुद्ध हो।'

'नहीं तो !' अनिल अपने विराग को साधता हुआ बोला।

'बताओ न ? कहीं कुछ पीड़ा अवश्य है।'

'नहीं।' अनिल ने अपने को छुड़ाने का उपक्रम करते हुए कहा। मेहर उसे छोड़ने को प्रस्तुत न थी। उसने शीश को अपने वक्षःस्थल से लगा लिया।

'तुम बोलते क्यों नहीं ? क्या मैं बुरी लगती हूँ ?'

'नहीं तो।'

'तो फिर ?'

'क्या बोलूँ ?'

मेहर ने अनिल के नयनों में दृष्टि डाली। अनिल के नयन झँपक गये। वह अपने हृदय की बात नेत्रों द्वारा प्रकट न होने देना चाहता था।

'इसके बाद क्या होगा ?'

'होगा क्या ?'

'क्या हम दोनों साथ साथ... ?'

'यह कैसे संभव है ?'

'इसमें असंभव क्या है ? मैं अपने दादा को खोज लूँगी । तुम्हारा जी चाहे उस परिवार में संमिलित हो जाना । उनके साथ कुछ ही दिनों में कुशल मछुए हो जाओगे ।'

अनिल गंभीर हो गया । क्या उसका पिछला जीवन भविष्य के इस जीवन के ही योग्य है ? वह विचारमग्न चुप रहा ।

'बोलते क्यों नहीं ?'

'मेहर, यह कैसे संभव है ?'

मेहर उसका शीश छोड़ते हुए बोली, 'तो फिर मुझे बचाया क्यों ? बही जा रही थी, बही जाने देते ।' उसके नयनों में अश्रु आ गये ।

'मेहर !'

'मर ही तो जाती ! मैं तुम्हें कुछ और समझी थी ।'

'मेहर !'

'नहीं, मेहर अब तुम्हारे लिए नहीं है । तुमने उसपर दया करके उसकी यंत्रणा बढ़ा दी है ।'

अनिल को लगा कि उसके हृदय में जो एक दृढ़ शिला थी वह केवल बर्फ़ की चट्टान थी । अब वह घुलकर बही जा रही है । बोला, 'मेहर ! भूल हुई, क्षमा करो ।'

'तुम पुरुष हो । नारी को क्षमा करने का अधिकार कहाँ है । वह तो क्षमा की जाने के ही लिए है ।'

'मेहर ! तुम कैसी स्थिति में हो यह मैं भूल गया था ।'

'मैं तुमसे दया की भीख तो नहीं माँग रही हूँ । इतना बड़ा संसार है । उसमें क्या एक अभागी मेहर के लिए स्थान न होगा ?'

अनिल को लगा कि उसके व्यवहार से मेहर को आवश्यकता से अधिक कष्ट पहुँचा है । मेहर की केशराशि को हाथ से संवारते हुए उसने कहा—

'मेहर बुरा न मानो । तुम्हीं बताओ, हम तुम एक साथ कैसे रह सकते हैं ?'

'बाधा क्या है ?'

तीसरा अध्याय

अकाल

– १ –

कादिर ने जो कहा उस पर यूसुफ़ को विश्वास न हुआ। जी चाहता था कि विश्वास करे। शक्तियाँ इसका समर्थन करती थीं। कौन जैनब के पीछे दौड़े? गई है मरने दो।

पर इसके विरुद्ध उसके हृदय में जैसे एक सुलगती आग भड़क उठी। जैनब का कोमल तप्त भावनामय स्पर्श स्मरण आया। वह रोमांचित हो गया। जैनब के उस बर्ताव का कारण क्या था? अवश्य ही वह उसपर आसक्त हो गई है।

नारी पुरुष के प्रति आसक्ति दिखाये, इससे बढ़कर पुरुष की खुशामद और कोई नहीं हो सकती। प्रशंसा से जो न फूले ऐसा पुरुष कल्पना में ही संभव है।

यूसुफ़ को लगा कि जैनब ने उसके प्रति अपनी आसक्ति जनाने में कोई कमी नहीं की। नारी जहाँ तक जा सकती थी, वह गई। आगे बढ़ना यूसुफ़ का कार्य है।

उसे विश्वास हो गया कि कादिर ने यदि जैनब को कहीं नहीं छुपाया है तो वह स्वयं ही यूसुफ़ की खोज में वहाँ से चली गई है। उसका कर्त्तव्य है कि वह उसे खोजे।

उसने देखा कि कादिर फिर ऊँघने लगा है। रात्रि बढ़ती आ रही है। अंधकार देख उसकी शक्तियाँ मंद पड़ने लगीं। पर जैनब ने आकर्षित किया और यूसूफ़ उठकर जैनब की खोज में चल दिया।

बाढ़-पीड़ितों की भीड़ और उस अधंकार में जैनब को खोज निकोलना सरल न था। यूसुफ़ इधर-उधर, सड़कों पर फिरा। उसे थकान अनुभव हुई। वह रुका, आँखें मलीं, चेहरे पर हाथ फेरा और फिर अनुभव किया कि जँभाई आ रही है, रुकेगी

नहीं। जँभाई आई, नयनों में पानी भर आया। एक मादक भभक उसके मस्तिष्क में भर गई।

उसे लगा कि इस समय जैनब क्या मिलेगी! खोजने का कोई अर्थ नहीं। वह कृष्णनगर की सड़क के किनारे बैठ गया। अपने ऊपर उसका कोई वश न रहा। निद्रा बाढ़ की भाँति उमड़ती आ रही थी।

वह कब लेटा और कब सो गया, इसका उसे पता न चला।

– २ –

अनिल और मेहर जब बचाये गये तो उन्हें पहिनने को वस्त्र मिले। अनिल ने पाया कि ऐसे वस्त्र धारण करना तो दूर वह स्पर्श भी नहीं करता। जैसे-तैसे लज्जा निवारण कर वे खड़गपुर पहुँचे।

दस सहस्र प्राणियों का यह छोटा-सा नगर कृष्णनगर से पाँच मील दक्षिण-पश्चिम में था। यहाँ सर्वप्रथम कठिनाई जो अनिल को अनुभव हुई वह उसकी कल्पना से परे थी।

हिंदू-मुसलमान दोनों स्वयंसेवक अपनी जाति के बाढ़-पीड़ितों के लिए पृथक् प्रबंध कर रहे थे।

अनिल से हिंदू-विभाग ने पूछा—'तुम्हारा नाम ?'

'अनिल कुमार !'

हिंदुत्व की मोहर उसपर लग गई। मेहर के लिए यह अवसर अत्यंत कठिन था। अनिल और अपने पितृकुल में से उसे एक का चुन लेना था। इन दोनों पक्षों से परे वह नारी थी।

'तुम्हारा नाम ?' मुसलमान स्वयंसेवक ने प्रश्न किया।

'मेरु बाला !'

और वह अनिल के साथ चली गई। यहीं समाप्ति न थी। यदि वह अनिल को खोना नहीं चाहती है तो उसे सत्य को और भी छलना होगा।

जिस समय नाम और पता लिखनेवाले स्वयंसेवक ने उनकी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा तो अनिल को पीछे छोड़ मेरुबाला आगे बढ़ गई, और इससे पहिले

अनिल चुप हो रहा।

'तुम स्वस्थ हो, कमा सकते हो। क्या जिसकी प्राणरक्षा की है उसके लिए थोड़ा कुछ और न कर सकोगे ?'

'मेहर ! तुम समझतीं नहीं।'

'समझने को उसमें विशेष नहीं है।'

अनिल नहीं कहना चाह रहा था। पर मुख से निकला, 'तुम मुसलमान हो न ?'

मेहर ने उसके हाथों से अपने केश छुड़ा लिये, एक विचित्र दृष्टि से अनिल की ओर देखा। वह जैसे उस पुरुष को समझ लेने की चेष्टा कर रही हो, अनिल का बाह्य आवरण भेद उसके अंतर में जो पुरुष है उसका स्वरूप देख पाने का प्रयत्न कर रही हो। एक क्षण मौन रहकर बोली, 'मैं मुसलमान हूँ। तुम मुझे नीच समझते हो। मेरे साथ संसार में क्या मुख लेकर रहोगे ?'

एक क्षण चुप रहकर वह फिर बोली—

'बस एक बात बता दो। जब तुमने हाँफ-हाँफकर मुझे नदी में से ऊपर खींचा था, तब क्या पूछा था कि तुम मुसलमान तो नहीं हो ? अंधकार में जब मेरे लिए वटफल खोजने को प्राण संकट में डाले थे, तब क्या मैं मुसलमान नहीं थी ? रात्रि में मैं जब शीत से कांप रही थी, तब मुझे सुरक्षित स्थान में कर स्वयं तुमने वायु का वेग सहा था, तब मैं क्या मुसलमान नहीं थी ! और उस समय..., क्या मैं मुसलमान नहीं थी ?'

वह चुप हो गई। अनिल नीचे बहती प्रतिक्षण उतरती जलधारा को देख रहा था। उसके मस्तिष्क में एक चक्र घूम रहा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि इन कुछ घंटों में अनिल दो हो गये हैं, या मेहर दो हो गई हैं। दोनों के बीच जो अपने को दूसरे में खो देने का सरल भाव था वह कहाँ गया ! उसके मुख से निकला केवल 'मेहर !'

'मैं तुम्हें दोष क्यों दूँ। मुझे विश्वास नहीं होता था कि पुरुष को लगाया लांछन इतना सत्य है, पर अब मैं नयनों देख पा रही हूँ।'

अनिल के मन में चक्र तीव्रता से घूमा और घूमता चला गया।

'जो कुछ मेरे भाग्य में है वह तो होगा ही।'

अनिल ने देखा कि मेहर बिलकुल निराशा की पुतली बन गई है। और उसका कारण है स्वयं वह।

बोला—मेहर! मैं तुम्हें धोखा न दूँगा। पर मछुवापन मुझसे न हो सकेगा। मैंने जो इतना पढ़ा-लिखा है इसका उपयोग···?'

मेहर का मुख खिल उठा। उसने अनिल के दोनों हाथ पकड़ लिये। बोली, 'तुम बड़े अच्छे हो। पढ़े-लिखे हो, कोई नौकरी करना। अल्लाह सबको देता है।'

'मेहर!'

'देखो, ऐसी प्रसन्नता के समय कोई बुरी बात मुख से न निकालना। मैंने तुम्हें पड़ा पाया है। तुम गाँठ बँध गये हो, मैं तुम्हें गिरने न दूँगी।'

अनिल को अनुभव हुआ कि वह विवश है। मेहर ने उसे सब ओर से जकड़ लिया है, बिलकुल मकड़ी के जाले की भाँति। निकल भागने का प्रयत्न वह भूल गया है। बोला, 'मेहर! घबराओ नहीं। यथासंभव मैं तुम्हें अकेली न छोड़ूँगा।'

मेहर ने पास रखा एक वटफल उठाकर अनिल के मुख में दे दिया। दोनों चार दिन से इन्हीं पर निर्वाह कर रहे थे।

———

तीसरा अध्याय

अकाल

– १ –

कादिर ने जो कहा उस पर यूसुफ़ को विश्वास न हुआ। जी चाहता था कि विश्वास करे। शक्तियाँ इसका समर्थन करती थीं। कौन जैनब के पीछे दौड़े? गई है मरने दो!

पर इसके विरुद्ध उसके हृदय में जैसे एक सुलगती आग भड़क उठी। जैनब का कोमल तप्त भावनामय स्पर्श स्मरण आया। वह रोमांचित हो गया। जैनब के उस बर्ताव का कारण क्या था? अवश्य ही वह उसपर आसक्त हो गई है।

नारी पुरुष के प्रति आसक्ति दिखाये, इससे बढ़कर पुरुष की खुशामद और कोई नहीं हो सकती। प्रशंसा से जो न फूले ऐसा पुरुष कल्पना में ही संभव है।

यूसुफ़ को लगा कि जैनब ने उसके प्रति अपनी आसक्ति जनाने में कोई कमी नहीं की। नारी जहाँ तक जा सकती थी, वह गई। आगे बढ़ना यूसुफ़ का कार्य है।

उसे विश्वास हो गया कि कादिर ने यदि जैनब को कहीं नहीं छुपाया है तो वह स्वयं ही यूसुफ़ की खोज में वहाँ से चली गई है। उसका कर्त्तव्य है कि वह उसे खोजे।

उसने देखा कि कादिर फिर ऊँघने लगा है। रात्रि बढ़ती आ रही है। अधंकार देख उसकी शक्तियाँ मंद पड़ने लगीं। पर जैनब ने आकर्षित किया और यूसूफ़ उठकर जैनब की खोज में चल दिया।

बाढ़-पीड़ितों की भीड़ और उस अधंकार में जैनब को खोज निकोलना सरल न था। यूसुफ़ इधर-उधर, सड़कों पर फिरा। उसे थकान अनुभव हुई। वह रुका, आँखें मलीं, चेहरे पर हाथ फेरा और फिर अनुभव किया कि जँभाई आ रही है, रुकेगी

नहीं। जँभाई आई, नयनों में पानी भर आया। एक मादक भभक उसके मस्तिष्क में भर गई।

उसे लगा कि इस समय जैनब क्या मिलेगी! खोजने का कोई अर्थ नहीं। वह कृष्णनगर की सड़क के किनारे बैठ गया। अपने ऊपर उसका कोई वश न रहा। निद्रा बाढ़ की भाँति उमड़ती आ रही थी।

वह कब लेटा और कब सो गया, इसका उसे पता न चला।

– २ –

अनिल और मेहर जब बचाये गये तो उन्हें पहिनने को वस्त्र मिले। अनिल ने पाया कि ऐसे वस्त्र धारण करना तो दूर वह स्पर्श भी नहीं करता। जैसे-तैसे लज्जा निवारण कर वे खड़गपुर पहुँचे।

दस सहस्र प्राणियों का यह छोटा-सा नगर कृष्णनगर से पाँच मील दक्षिण-पश्चिम में था। यहाँ सर्वप्रथम कठिनाई जो अनिल को अनुभव हुई वह उसकी कल्पना से परे थी।

हिंदू-मुसलमान दोनों स्वयंसेवक अपनी जाति के बाढ़-पीड़ितों के लिए पृथक् प्रबंध कर रहे थे।

अनिल से हिंदू-विभाग ने पूछा—'तुम्हारा नाम?'

'अनिल कुमार!'

हिंदुत्व की मोहर उसपर लग गई। मेहर के लिए यह अवसर अत्यंत कठिन था। अनिल और अपने पितृकुल में से उसे एक का चुन लेना था। इन दोनों पक्षों से परे वह नारी थी।

'तुम्हारा नाम?' मुसलमान स्वयंसेवक ने प्रश्न किया।

'मेरु बाला!'

और वह अनिल के साथ चली गई। यहीं समाप्ति न थी। यदि वह अनिल को खोना नहीं चाहती है तो उसे सत्य को और भी छलना होगा।

जिस समय नाम और पता लिखनेवाले स्वयंसेवक ने उनकी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा तो अनिल को पीछे छोड़ मेरुबाला आगे बढ़ गई, और इससे पहिले

कि अनिल को बोलने का अवसर प्राप्त हो, उसने दोनों को पति पत्नी बनाकर एक घर और पता दे दिया था।

अनिल की इच्छा हुई कि वह प्रतिवाद करे। पर भीड़ थी और इससे भी अधिक इस इच्छा का विरोध उसके मन में ही था। उसने स्थिति स्वीकार की।

वह देख रहा था कि जिस घटनाचक्र का वह पात्र है, वह उसकी इच्छाओं की अस्वीकृति होने पर भी घूम रहा है। वह उसे प्रत्येक पग पर झुकने को बाध्य कर रहा है।

अनिल चाहता था कि वह कहीं रुके; अपने व्यक्तित्व को दृढ़ करे। इस प्रकार बहे जाने में कोई शूरता नहीं, पर ऐसे विचारों में वह स्वयं अपनी अंतरात्मा की प्रेरणा का विरोधी होता था। उसकी आत्मा में, उस आत्मा में जो स्थूल को सूक्ष्म से संबंध किये हुए है, एक तीव्र भूख मेरुबाला ने जगा दी थी।

मेरुबाला के बिना उसका जीवन असंभव था। अनिल की दशा उस बालक की-सी थी, जो माता-पिता की ताड़ना से भयभीत होता हुआ भी क्रीड़ा की ओर आकर्षित होता चला जाता है। वह अपने को रोकना चाहता है, पर रोक नहीं पाता है।

अनिल अब एक नहीं था। दो अनिल थे और वे निरंतर एक दूसरे से झगड़ रहे थे।

मेरुबाला ने कहा—दादा गाजीपुर में मिलेंगे। हमें वहीं चलना चाहिए।

अनिल विचारमग्न रहा। मेरुबाला उसके ऊपर जैसा आधिपत्य जमा बैठी है, वह उसे स्वीकार करके भी स्वीकार नहीं करता। वह भी तो कुछ है।

बोला कुछ नहीं।

'क्यों, क्या जी में नहीं है! तुम्हारी इच्छा हो उनके साथ रहना!'

'तुम्हारे दादा क्या मेरुबाला को देखकर चौंकेंगे नहीं?'

'चौंकेंगे क्यों?'

'तुम हिंदू जो हो गई हो!'

मेरुबाला खिलखिलाकर हँस पड़ी—कितने भोले हो तुम! क्या मेरुबाला नाम रख लेने से हिंदू हो जाते हैं?

'तुम तो अपने दादा की बेटी हो। परंतु मैं तो बाहरी व्यक्ति हूँ।'

उसने प्रश्नवाचक दृष्टि से मेरु की ओर देखा। वह बोली—मैं तुमसे वहाँ रहने को थोड़े ही कहती हूँ। मैं जीवित हूँ, यह उन्हें सूचना दे, जब तुम्हारी इच्छा हो चले चलना। दादा प्रसन्न ही होंगे।'

'मेरु! यहीं तुम भूलती हो। रूढ़ियाँ मनुष्य के प्राकृतिक आकर्षणों से अधिक शक्तिशाली हैं। तुम्हारे दादा तुम्हें मेरे साथ जाने की आज्ञा नहीं देंगे।'

'नहीं, तुम दादा को जानते नहीं। काम वे अवश्य नीचा करते हैं, पर हृदय से विशाल हैं। दादा बहुत अच्छे हैं। कभी मुझपर क्रुद्ध तक नहीं हुए।'

अनिल का मन शंकाशील रहा। पर गाज़ीपुर तो निकट नहीं। उत्तर-पूर्व में आठ मील है। जाना सरल नहीं।

बोला—'जैसी तुम्हारी इच्छा!'

मन के एक भाग ने कहा—वहाँ चलने से कदाचित् इससे पीछा छूट जाये।

दूसरा भाग बोला—मेरुबाला का साथ छोड़ना चाहते हो? वह कितनी अच्छी है। संसार की गहराई में जो चिरंतन आनंद है वह इसी से तो तुम्हें मिला है। प्रकृति और पुरुष के जिस दैवी संयोग पर समस्त विश्व नाचता है, उसकी झाँकी उसी ने तो तुम्हें दी है। अनिल तुम कैसे मूर्ख हो, जो उसका साथ छोड़ना चाहते हो? उसके साथ रहो। आवश्यकता पड़े तो मुसलमान हो जाओ। तुम्हारा संसार में उसके अतिरिक्त और कौन है? और हिंदू-मुसलमान क्या एक ही परमात्मा के पुत्र नहीं?

अनिल काँपकर अपने से भयभीत हो गया। नहीं, एक नारी के पीछे वह धर्म त्याग नहीं करेगा। वह जैसा उत्पन्न हुआ है वैसा ही मरेगा।

— ३ —

खड़गपुर की मुख्य सड़कें नगर के बीचोबीच एक चौक में मिलती थीं। इन्हीं सड़कों में से गलियाँ निकलती जाती थीं और इन्हीं में मिलती जाती थीं।

खड़गपुर धान की मंडी थी। फसल के दिनों में चहल-पहल होती थी। शेष दिनों ऐसा जान पड़ता था जैसे नगर सो रहा हो। कुछ दिन जागकर जो उदरस्थ

कर लिया उसे अजगर की भाँति निस्तब्ध लेटा पचा रहा हो। व्यस्तता इस नगर की जनता के केवल अत्यंत छोटे अंश को स्पर्श कर पाई थी। इसी से वे लोग बेकाम के कामों में अधिक व्यस्त रहते थे।

क्योंकि व्यस्तता नहीं थी इसी से जीवनधारा का तल नीचा था। संस्कृति के नाम से जो वस्तु बाज़ार में है वह व्यस्तता में से जीवन लेकर अव्यवस्ता में उत्पन्न होती है।

आजकल खडगपुर की सड़क, चौक और गलियाँ भरी हुई थीं। प्रत्येक उसारे, सायबान और बरामदे में बाढ़-पीड़ित आश्रय ले रहे थे; और उनके पीछे नागरिकों के बंद द्वार जैसे काँप रहे थे।

फसल के दिनों में ग्रामीण वहाँ आते थे अन्न प्रदान करने के लिए और इस समय वहाँ फेंक दिये गये थे दाने दाने को भिखारी बनाकर।

बाढ़-पीड़ितों ने वहाँ की जनसंख्या ही नहीं बढ़ा दी थी, वरन् वहाँ एक नवीन समाज भी निर्माण कर दिया था। जहाँ मनुष्य है तथा बेकार है, वहाँ समाज बनते समय नहीं लगता।

अनिल को पुरुष-समाज मिल गया और मेरु को नारी-समाज। उनके सम्मुख एक ही कार्य था, बातें करना; और इसमें वे पूर्ण मनोयोग से दत्तचित्त हुए थे।

नारियल पर चिलम चढ़ाये चार-पाँच जने बैठे थे। बीच में एक राख के ढेर में उपला दबा हुआ था, जिससे अग्नि अपने हृदय में छिपा रखने की आशा की जा रही थी।

अनिल उनके निकट पहुँचा। दो ने सरककर बैठने को स्थान बना दिया।

अनिल ने अपने कुर्ते की लंबी और फटी बाहों को उलटकर छोटी और पूर्ण करना चाहा। पर उसमें उसे सफलता न हुई। जो लम्बे छेद कंधे पर थे वे इस लपेट में नहीं आ सकते थे। अनिल को हतोत्साहित करने के लिए एक घटना और भी हो गई। वह जब बाहों को इस प्रकार सुधारने का प्रयत्न कर रहा था तो वह कुर्ता छाती पर से चटक गया।

अनिल निराश हो चला।

सूखे धूलि भरे बालों पर हाथ फेरते हुए करीम ने कहा—रहने भी दो भई, सारे कुर्ते को भी लपेट लो तो भी छेद तो रहेंगे ही।'

'लो···।' नारियल आगे बढ़ाते हुए इक़बाल ने कहा।

'मैं पीता नहीं।'

लोगों ने उसकी ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा। यह आश्चर्य शीघ्र प्रशंसा में परिवर्तित हो गया।

सुरेन ने कहा—अच्छा है जो नहीं पीते। पीना कौन-सी अच्छी बात है।

'लत ही तो है।' करीम ने कहा।

अब्दुल्ला बड़े ध्यान से इक़बाल के चेहरे की ओर देख रहा था। वह इक़बाल को बहुत दिन से देखता आया है। इक़बाल अत्यंत स्वस्थ, और सतेज रहा है। उसने अभी तक उसमें कोई परिवर्तन नहीं देखा, परंतु इस समय अचानक उसका हृदय धक से हो गया, जैसे कि एक भयानक भेद उसपर खुल गया हो।

वह काँप उठा। इक़बाल और अब्दुल्ला प्रायः प्रति दूसरे वर्ष बाढ़-पीड़ित हो खड़गपुर का आतिथ्य स्वीकार करते थे। यह दिवस उनके लिए अवकाश के होते थे।

अंतर इतना ही था कि इस वर्ष नदी वास्तव में विशेष चढ़ आई थी।

उसे अनुभव हुआ कि यह रोग नहीं है, जो इक़बाल के अंगों पर पीलापन ले आया है।

बोला—क्यों इक़बाल, तबियत तो ठीक है न?

प्रश्न उसने अपने हृदय में वास्तविक कारण जानते हुए किया था। उसे यह भी विदित था कि सीधा उत्तर इक़बाल का नहीं मिलेगा।

इक़बाल बोला—'तबियत तो ठीक है।' इतना कहकर वह जैसे लजा गया। मानों कि उसकी बड़ी भारी चोरी पकड़ ली गई हो।

वह आधा पेट खाता है, भूखा भी रहता है, पर यह नहीं चाहता कि किसी पर यह रहस्य प्रकट हो। वह जानता है कि अब्दुल्ला का मंतव्य सहानुभूति-पूर्ण है।

इसी से वह लजाया। यदि उसमें अपमान तनिक भी आभासित होता तो वह क्रुद्ध हुआ होता।

इकबाल ने अब्दुल्ला की ओर जिस दृष्टि से देखा, वह एक क्षण में कह गई; सहानुभूति के लिए धन्यवाद ; जानते हुए भी क्या पूछते हो ? मेरे सूखने का कारण वही है जो तुम्हारे सूखने का।

सुरेन ने कहा—इस वर्ष सेवासमितिवाले भोजन ठीक प्रकार का नहीं दे रहे हैं। भोजन का नाम करके कलेऊ भर को देते हैं।

'पहिले ऐसा कभी नहीं हुआ।' करीम ने कहा।

'पहिले इतनी भीड़ कहाँ होती थी ?'

'और इतना मँहगा कहाँ था !'

'कहाँ रुपये के तेरह सेर और कहाँ चार सेर !'

'हाँ भई !' अब अब्दुल्ला की बारी लजाने की थी।

वे तिल-तिलकर भूखे मर रहे थे और समझ रहे थे कि कोई भीषण अपराध कर रहे हैं।

अनिल को अब तक यह अनुभव नहीं हुआ था। यह सत्य है कि उसे भी पेट भर से कहीं कम भोजन मिल रहा था, पर वह समझता था कि ऐसे भीषण प्रकोप के पश्चात् इस प्रकार की कठिनाई कुछ न कुछ तो होगी ही।

'कुतुबुद्दीन आजकल दिखाई नहीं पड़ता।'

कुतुबुद्दीन कुछ अच्छी अवस्था का व्यक्ति था। वह जब कभी गाँव छोड़कर नगर में आया तो अपने पैसे से खरीद कर खाया। कभी खैरात लेने के लिए उस विशाल व्यक्ति ने हाथ नहीं पसारा।

'क्यों, क्या हुआ ?'

'उसकी बेटी और घरवाली ख़ैराती खाना लेने जाती है।'

'ऐसा, क्या सब समाप्त हो गया ?'

'हो गया होगा तभी तो !'

'मैंने परसों देखा था। बिल्कुल बदल गया है, पहिचाना नहीं जाता। बचता दिखाई नहीं देता।'

'जिसने सदा दूसरों को खिलाया, वह........।'

'समय है।'

एक संतोष और करुणा सब पर छा गई।

चिलम फिर घूमी। सुरेन ने अपने नारियल पर रखकर उसे गुड़गुड़ाया और फिर नयन सिकोड़कर आराम से मुख खोल दिया। धुआँ धीरे-धीरे निकला। अनिल ने देखा कि वह वायु में शीघ्र ही ऐसा मिल गया जैसा दूध में पानी।

अनिल के मन में उठा कि इनमें मुख्यता किसे है? धुएँ को या वायु को? दूध को या पानी को? विस्तार में तो धुआँ और दूध वायु तथा पानी के संमुख नगण्य हैं। वायु का गुण लेकर धुआँ-धुआँ है, एवं पानी का गुण लेकर दूध दूध है।

'लो गफूर भी आ गया।' इकबाल ने कहा।

अनिल ने देखा कि एक लंबा-चौड़ा व्यक्ति चला आ रहा है। कपड़े मैले चीथड़े हैं। चाल में एक प्रकार की तरलता है, जो मुख के भाव के साथ मिलकर पूरे शरीर के लिए गंभीरता में परिवर्त्तित हो जाती है।

'आओ पठान!' सुरेन ने स्वागत किया।

पठान निकट आ गया। अनिल ने देखा, उसके पीछे एक लड़की भी है।

'बाबा, कुछ दे दे न!' लड़की ने पठान से गिड़गिड़ा कर माँगा। उसे लगा कि पठान कहाँ से देगा।

गफूर आकर मंडली में बैठ गया। सहानुभूति और दयामिश्रित जो भाव उसके मुख पर था वह अनिल को अच्छा लगा। कुछ क्षण वह उसकी ओर देखता रहा।

गफ़ूर ने तुरत करीम के हाथ से नारियल ले लिया और बड़े वेग से गुड़गुड़ाने लगा, मानो कि कोई महान् हृदयताप उसके पीछे छिपाने की चेष्टा में हो।

वह कन्या भी वहाँ आ पहुँची। 'बाबा दे दे, मैं दो दिन की भूखी हूँ।'

सब चुप बैठे रहे। असमर्थ दया सबके हृदय में कसमसा रही थी। गफ़ूर क्रुद्ध हो गया। बोला—'भूखी है तो जा मर'

स्वयं पुनः बड़े वेग से नारियल गुड़गुड़ाया, जैसे कि धुआँ ही नहीं वह उसका समस्त जल पी जाना चाहता हो। उसके ललाट पर विचित्र सलवटें पड़ रही थीं। नयन प्रायः मुँद रहे थे।

'बाबा !'

'जायगी नहीं ?'

'बाबा दे दे। दो दिन से......।'

'हाँ, पहिले तो तुझे जैसे मोहनभोग मिलता था। दो दिन से नहीं मिला। भाग यहाँ से ! कमबख्तों से भूखा रहने का अभ्यास भी तो नहीं किया जाता !''

उसने चिलम छोड़ी नहीं और बलपूर्वक धुआँ खींचने लगा। किसी को उसके नारियल पर से चिलम उतारने की इच्छा भी न हुई।

लड़की स्तब्ध खड़ी रही। लालसा लगाये।

अनिल को उसपर बड़ी दया आई। पर वह असमर्थ था। गफ़ूर ने एक विचित्र दृष्टि अनिल की ओर डाली। वह स्पष्ट कह रही थी ; देख रहा हूँ तू भी वज्र मूर्ख है।

'बाबा !' लड़की ने स्मरण कराया।

गफ़ूर ने चिलम सुरेन को दे दी और नारियल करीम को। छाती के निकट से एक पोटली निकाली। खोला। लड़की के नेत्र चमक उठे। लोगों की दृष्टि उस पर लग गई।

देखा, कुछ उबले चावल हैं।

गफ़ूर ने एक मुट्ठी चावल लड़की को दिये। इतने ही जो बचे, बाँधकर रख लिये।

'ले, बैठ जा ; खा ले, मर।'

लड़की कृतज्ञता से भर गई, अधिकार से बोली—'यहाँ नहीं खाऊँगी। मेरा छोटा भईया है, पहिले उसे दूँगी, पीछे...।'

गफ़ूर ने लड़की की ओर देखा और फिर सब ओर से दृष्टि समेटकर राख के ढेर पर जमा दी।

अनिल को गफ़ूर बहुत अच्छा लगने लगा। वह मुग्ध उसकी अबूझ-सी चेष्टाओं को देखता रहा।

गफ़ूर कुछ क्षण वहाँ ठहरा। इक़बाल उसे चिलम दे रहा था, उसने देखा नहीं। उठा और एक ओर को चल दिया।

सब जने उसकी पीठ की ओर देखते रहे।

'कौन है?' अनिल ने पूछा।

'गफ़ूर पठान है।'

'क्या करता है?'

'करता तो कुछ भी नहीं, वैसे सभी कुछ करता है।'

'तो भी!'

'मछली पकड़ने से लेकर नर-हत्या तक सभी काम करता है।'

'हत्या तक?'

'हाँ, इसने स्वयं अपने बेटे की हत्या की।'

'कैसे?'

'बीमार था। अच्छा होने की आशा न थी। मरता भी न था। एक दिन वेदना हुत अधिक थी। इसने उसका गला घोंट दिया।'

'पुलिस…?'

'पुलिस क्या करती? वह तो मरता ही था।'

'पत्नी?'

'अब अकेला है।'

'कहता हूँ कि वह जो एक मुट्ठी चावल बचे हैं, वह भी उसके पेट में नहीं जायेंगे।'

'पता नहीं दिल का कच्चा क्यों है?' करीम ने वैसे ही कहा।

'भगवान् की इच्छा है।'

अनिल को गफ़ूर में और भी रुचि हो गई। वह जैसे उसके प्रेम में पड़ गया।

चिलम फिर घूमने लगी।

—४—

पीड़ितों को पेट भर भोजन देने की इच्छुक होने पर भी सेवासमितियाँ असमर्थ थीं। बाढ़-पीड़ितों की संख्या की अधिकता दूसरी कठिनाई थी। उनकी शक्ति सीमित थी। जो था, उसी को सबमें आवश्यकतानुसार यथाशक्ति वितरण का प्रयत्न था।

पीड़ित जन-समुदाय भोजन की इस कमी के कारण अनशन-अभ्यास को विवश हो रहा था।

अनिल दो-तीन दिवस ठहरा। उसे अनुभव हुआ कि इस प्रकार यदि वह दो सप्ताह और रहा तो उसमें उठकर खड़े होने की शक्ति भी न रह जायगी। मेरु की दशा तो उससे भी गिरी हुई है।

उसने कोई कार्य अपने लिए खोजने की चेष्टा की, पर सफलता उसके निकट नहीं आई। भावी स्वामी उसके चिथड़े के समान वस्त्रों को देखकर ही प्रस्ताव सुन लेने से पहिले ही मुख फेर लेते थे। अनिल के मन में एक भावना उत्पन्न होने लगी। क्या वह वास्तव में अभागा है?

जीवन में जो कार्य उसने करने का उपक्रम किया है, उसी में जाने कहाँ से बाधा उत्पन्न हो गई है।

उसका हृदय इस विचार से बैठ चला। उसे लज्जा आने लगी। वह अभागा है। अपना मुख वह दूसरों को कैसे दिखाये?

इसी विचार में वह नीचे गिरता जा रहा था। सड़क के किनारे बैठ गया। उसे वह स्थान गंदा लगा। पर जो अभागा है, उसे इसकी चिंता क्या?

स्वच्छता-अस्वच्छता की सीमा उसे क्यों बांधे? वह बैठेगा, गंदे में बैठेगा। उसे भीतर से जैसे आशा थी कि कोई आयेगा उससे प्रार्थना करेगा, अनिल यहाँ से उठो। तुम्हारे योग्य यह स्थान नहीं है।

वह उठेगा नहीं। वहीं बैठे रहने का हठ करेगा।

आगंतुक भी हठ करेगा। प्रेम से उसे वहाँ से……।

इसी कल्पना में उसके नयनों से अश्रु निकल आये। उसकी कल्पना, परंतु,

वास्तविकता रिवर्त्तित न हुई। कोई उसकी ओर प्रेम से अथवा क्रोध से वहाँ से उठा देने को न बढ़ा। हृदय से लगाने को कोई हृदय न उमड़ा।

सड़क पर मनुष्य जा रहे थे ... गे, अधभूखे। वे शरीर को बलात् प्राणों से चिपटाये हुए थे। भावना-शून्य नयनों से वह उनकी ओर देखता रहा और उसका मन अपने में नीचे गिरता रहा। वह गिरा और गिरता गया, जैसे कि उजाले से अँधेरे में फिसलता गया।

उसे अनुभव हुआ कि इस पतन के मार्ग में पत्थर थे। वे उसे घायल कर देते। वह बाल-बाल बच गया है। इसी समय वह जैसे एक कठोर तप्त चट्टान पर जाकर ठहर गया।

इस आघात से प्रश्न उठा।

'उस जैसे अभागे को क्या करना चाहिए?'

अंधकार में गूँजा, 'आत्महत्या।' अनिल ने देखा, इस गूँज का पार्थिव रूप था और अत्यंत भयानक।

वह काँप उठा। आत्महत्या! उसने साहस बटोरा। आत्महत्या! उसने मुख बिचका दिया, हुँ! वह आत्महत्या करेगा! आत्महत्या करेगा!

वह मुस्काया।

कभी नहीं। यदि अभाग में शक्ति है तो वह उसकी हत्या करे। वह स्वयं अपनी हत्या कभी नहीं करेगा।

वह अभाग को ठोकर मारेगा। वह किसी की सुनेगा नहीं। वह करेगा, जो उसके जी में आयेगा।

इसके साथ उसका पतित मन जैसे उछलकर खड़ा हो गया। उसके नयनों में रक्त आ गया। उसने पशुओं की भाँति आते-जाते जनसमुदाय को देखा।

ये कितने तुच्छ हैं। इस अभाग से भिड़ क्यों नहीं जाते!

वह उठ खड़ा हुआ। भाग-अभाग की सीमा उसके लिए न रही। वह वास्तविकता को देखेगा। सिद्धांतों को भूल जायेगा।

फिर मेरुबाला है। वह उसके पथ का प्रकाश बन सकती है।

— ५ —

मेहर के पिता नसीरुद्दीन पैंतालीस के निकट ही थे, पर बूढ़े थे। लगभग प्रति वर्ष जब नदी चढ़ती थी तो वे सपरिवार गाज़ीपुर में एक मास बिताते थे। जब वे बालक थे तो उनके पिता सुलतान मियाँ नगर के बाहर जहाँ चाहते डेरा डाल लेते थे। ग्यारह मास में जो कुछ कमाते थे उसका अधिकांश इस अवकाश के अवसर पर व्यय कर देते थे।

जैसे-जैसे मनुष्य ने उन्नति प्राप्त की वैसे-वैसे वह भूमि अपनी स्वतंत्रता खो बैठी। उसके अनेक स्वामी बन बैठे। भूमि को खंड-खंड कर उसपर मानव की नश्वर मुहर लगा देने की लालसा बढ़ती ही गई। इस बार जब वे आये तो बड़ी कठिनाई से तीन रुपये देकर उन्हें तीन खटिया डालने भर को स्थान मिला।

यहीं उन्होंने अपने गूदड़ों और दो टटियों की झोपड़ी खड़ी की, और सदैव की भाँति रहने की योजना बनाई। पर जब गाँव से लौटे व्यक्तियों ने बताया कि मेहर बह गयी है, कम-से-कम उसका पता नहीं चला तो वृद्ध की हिम्मत टूट-सी गई। मेहर उसकी सर्वप्रथम संतान थी।

पत्नी के शरीरांत होने पर उसी ने सब कुछ सँभाला हुआ था। अब वह भी नहीं रही। क्या कभी मिलेगी? बूढ़ा रोता, दिन रात रोता। कार्य से यह अवकाश जैसे उसे रोने के लिए ही मिला हो।

मेहर के अतिरिक्त तीन भाई और थे। बड़ा तैयब विवाहित था, घर रहता था। उससे छोटा सलीम कलकत्ते में नौकरी करता था, और सबसे छोटा सात वर्ष का मुनीर था, जिसका मुख्य कार्य भतीजे शफ़ीक़ को खिलाना था।

मेहर के बह जाने से दुःख सभी को हुआ, पर भाई की पत्नी सलीमा को कुछ संतोष भी हुआ था।

जब से मेहर अपना पति खोकर बाप के यहाँ लौट आई थी तबसे सलीमा को अनुभव हो रहा था कि ननद की शक्तियाँ उससे व्यापक हैं। वह सभी से खुलकर बोल सकती है। इस तनिक-सी सुविधा ने उसे समस्त गृहस्थी पर एक पकड़ दे दी थी, जिसपर नीति-रीति के अनुसार सलीमा का अधिकार था।

सागर-सरिता और अकाल

मुनीर अपने काम पर डटा शफ़ीक़ को मिट्टी का महल बनाकर खिला रहा था। सलीमा झोंपड़ी में थी और वृद्ध नसीरुद्दीन बैठा नारियल पी रहा था। आकाश में बादलों की कमी न थी। सूर्य कभी-कभी तूफ़ान में समुद्रस्थित चट्टान की भाँति चमक जाता था।

नसीर ने एक कश खींचा और ध्यानमग्न हो गया। वह अपने जीवन के इतने वर्ष पार कर आया है, जवानी उसने देखी है और उसके पश्चात् इस तरंग का पतन भी उसने देखा है।

उसने अपनी स्नेहसिक्त पत्नी रशीदा को मेहर को गोद में खिलाते देखा। मेहर बढ़ी। कितनी सुंदर हो गई वह! और फिर विवाह। वह वापिस आ गई।

वास्तव में उसकी इच्छा कभी उसे इस घर से बाहर भेजने की नहीं थी। पर संसार की रीति से असमर्थ था। जब वह लौट आई तो उसे जामाता के निधन के दुःख के साथ इतना संतोष भी हुआ कि अब वह निरंतर उसके नयनों के सम्मुख रहेगी, अपनी मा की प्रतिमूर्तिस्वरूप।

नसीरुद्दीन उसे देख रशीदा की याद हरी कर लेता था। एकांत में बैठकर रो लिया करता था। इस प्रकार आँसू बहाने में बूढ़े को महान संतोष प्राप्त हो जाता था।

जब रोये बिना कई दिन बीत जाते, तो उसे अपने भीतर एक धुआँ-सा, तनाव-सा, ऐंठन होने लगती। उसे जान पड़ता कि अब वह बीमार पड़नेवाला हैं। वह इस औषधि का प्रयोग करता, पुनः कुछ दिनों के लिए अच्छा हो जाता।

उसकी मेहर बह गई है। मन में उठा—

तैयब तो उसे पहिली बार ही साथ लाने को कह रहा था। मैंने उसे पीछे छोड़ने का सुझाव दिया था। मैं ही खोटा हूँ; अभागा हूँ। तथा जब सब बचे वह नहीं बच पाई। वह अपनी तक़दीर से नहीं बही है, मेरी तक़दीर से बही है।

तभी उसके वृद्ध हाथों में जैसे शक्ति नहीं रही। उसे लगा कि नारियल गिर पड़ेगा। उसने उसे भूमि पर रख दिया।

दृष्टि ऊँची थी। उन धँसी वृद्ध आँखों में अश्रु उमड़ आये। वह वैसा ही बैठा

रहा। आँसू बहते रहे जैसे उनका स्रोत खुल गया हो। आँसू उमड़ते, नयनों के कोनों में एकत्रित होते, फिर झुर्रियों के मार्ग नीचे बह आते। उसकी छिद्री दाढ़ी के बालों पर करुणा के नयन-तारों की भाँति कुछ क्षण लटके रह जाते, फिर नीचे गिरकर धरती में बिला जाते।

वह बैठा रोता रहा। रोना स्तब्ध प्रारंभ हुआ था, पर न जाने कब सिसकियाँ उसमें सम्मिलित हो गईं।

जब तैयब ने नगर से लौटकर उसे देखा तो इसी अवस्था में पाया। वह जानता है कि दादा मेहर के लिए अत्यंत दुखी हैं। इतने कि वह तंग आ गया है।

एक बार इस विषय पर कहा-सुनी हो गई। उसने जलकर कह दिया था—मैं तो उसे ला रहा था। तुम्हीं ने उसे पीछे ठहर जाने को कहा था।

अपने इस कथन पर उसने बारंबार पश्चात्ताप किया है। पर दादा रो रहे हैं और वह उनके इस रोने से तंग है।

'दादा!'

'कौन?' तब नसीर ने जागकर जैसे नयन खोले, आँसू पोंछे।

'क्या है तैयब?'

'चावल पाँच सेर से तीन सेर हो गये हैं।'

नसीर अब पूर्णतया जागा।

'क्या?'

'चावल पाँच सेर से तीन सेर हो गये हैं।'

'हैं?'

'हाँ।'

'कितने का लाया है?'

'तीन रुपये का ले आया हूँ, सुना है अब मँहगा ही होगा।'

'तीन का और ले आ। अल्लाह रहम करे। क्या समय है! कहाँ पंद्रह सेर और कहाँ तीन सेर!'

तैयब वृद्ध से आज्ञा ले निश्चिंत हो गया। पुनः बाजार चला गया।

नसीर पुनः विचारमग्न हो गया। पर इस बार मेहर को नहीं, चावल के भाव को लेकर। वह हिसाब लगा रहा था कि उसकी ग्यारह मास की कमाई पूंजी, पैंतीस रुपये, कितने दिन इस भाव परिवार का व्यय चला सकेंगे ?

मन में अनिच्छित उठा—मेहर गई अच्छा हुआ। अल्लाह उसपर रहम करे। जो हैं वे कैसे बचें ?

पर ऐसा तो कभी हुआ नहीं। यह जो मँहगाई है, अधिक ठहरेगी नहीं। रेलें हैं, फसल है। भला अँगरेज़ी राज में आदमी कहीं भूखा मरा है। वे हवाई जहाज से अन्न उड़ा दें।

इस प्रकार सोचा-विचारकर नसीर ने अपने को आश्वस्त कर लिया। पर खटका तो है ही। अधिक समय तक बेकार बैठना असंभव है। शीघ्र ही कार्य प्रारंभ करना होगा। बाढ़ इस बार भीषण थी। कुछ और काम ?

चिंता क्या है ? सलीम कलकत्ते से रुपये भेज देगा। अब आने ही वाले होंगे। कई मास से नहीं आये हैं।

नसीर इसी विचारधारा में डूबता-उतराता रहा।

मुनीर ने कहा – देखो दादा, शफ़ीक कैसे चलता है !

वृद्ध ने उस ओर देखा। पोते को देखकर मुख पर मुस्कान आ गई। यदि आज इसकी दादी जीवित होती तो !

हृदय पुनः भर आया।

उसने शफ़ीक की ओर से मुख फेर लिया।

नसीर इस करुण, खोई सी अवस्था में बैठा था कि उसे स्वर सुनाई पड़ा जैसे कि उसकी मेहर पुकार रही है। वह लौट आई है।

नसीर को विश्वास न हुआ ; उसका हृदय काँपा।

उसके पार्थिक कानों ने सुना, 'दादा।'

वह जैसे जागा। हड़बड़ाकर उठा। दृष्टि ऊँची की। देखा—सचमुच मेहर ही सामने खड़ी है ; उसके साथ एक व्यक्ति और ; दोनों फटे वस्त्र पहिने।

'मेहर ?'

नसीर उठकर खड़ा हो गया। बड़े ध्यान से उसका मुँह देखने लगा। उसे अपने नयनों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

'मेहर?'

'हाँ दादा!'

'क्या तू सचमुच लौट आई है!'

और उसने मौन अल्लाह को लाख-लाख शुक्रिया अदा किया। वृद्ध के नयनों से आँसू बह निकले। उसने बेटी को हृदय से लगा लिया।

पुत्री को अपने हाथों में पाकर भी उसे विश्वास न होता था कि वह लौट आई है। यह भूतों की छलना तो नहीं है? अथवा उसका भ्रम है?

'मेहर!'

'दादा!'

'क्या तू सचमुच लौट आई है?'

'हाँ, दादा, आ तो गई हूँ मैं। पर बिलकुल पहिले जैसी...।'

बूढ़े ने अंतिम वाक्य पर ध्यान नहीं दिया। सुना ही नहीं। वह मेहर है इतना ही पर्याप्त है। रशीदा की प्रतिमूर्ति तो है।

उसने पुकारा, 'अरी तैयब की बहू, देख अपनी मेहर लौट आई है।'

सलीमा झोंपड़ी से बाहर आ गई। मुनीर भी शफ़ीक को गोद में उठा उस ओर लपका। उन्होंने देखा कि वास्तव में उनकी मेहर लौट आई है।

सलीमा के हृदय में क्षणिक पीड़ा हुई और फिर वह पीड़ा की गांठ पानी होकर बह गई। उसने मेहर का हाथ पकड़ लिया; बोली कुछ नहीं।

झोंपड़ी की ओर चलने का संकेत किया। मेहर उसके पीछे सरकने लगी कि नसीर ने पकड़ लिया।

अनिल परिवार से बिछुड़े व्यक्ति के मिलन-सुख देख रहा था। वह भी द्रवित हो आया। स्तब्ध खड़ा था।

मेहर को रोक, नसीर ने अनिल की ओर देखा।

'इन्हीं ने मेरी जान बचाई है।'

वृद्ध ने अचानक अनिल का हाथ पकड़ छाती से लगा लिया।

'बेटा, तुम्हारा कर्ज़ मैं किस तरह अदा करूँ? तुमने मुझे जिला लिया। मैं रो-रोकर मर जाता। बेटा, अल्लाह तुम्हें इस सबाब का बदला देगा। अरे मुनीर, चिलम में ताज़ो तमाखू तो रख ला।'

मेहर और सलीमा झोंपड़ी में गईं। अनिल नसीर के पास बैठ गया। नारियल अनिल की ओर बढ़ाते हुए उसने पीने का निमंत्रण दियो।

अनिल ने धन्यवाद के साथ कहा—मैं पीता नहीं।

नसीर के नयन चमक उठे। 'बड़ा अच्छा करते हो जो नहीं पीते।'

फिर पूछा, 'बेटा बताओ मेहर को कैसे बचाया?'

अनिल ने कथा का जो भाग कथनीय था, कह सुनाया।

'अल्लाह तुम्हें इसका फल देगा, बेटा? तुमने मेहर को नहीं बचाया, मेरी जान बचा ली।'

अनिल अपने से अत्यंत संतुष्ट था।

— ६ —

सलीमा ने बड़े ध्यान से घूर-घूरकर ननद की आंखों में देखा। मेहर भौजाई के इस कृत्य पर खिलखिलाकर हँस पड़ी।

बाहर नसीर ने अनिल से कहा—जबसे मेहर नहीं थी, ऐसी हँसी सुनने को नहीं मिली थी, बेटा! अल्लाह तुम्हें इसका बदला अवश्य देगा।

सलीमा ने फटी धोती उतारकर मेहर को उसके वस्त्र पहिनाये और फिर दोनों जनी शफीक़ को लेकर बैठ गईं। मुनीर बाज़ार भाग गया कि तैयब भैया को बहिन के आगमन की सूचना दे।

भौजाई ने पूछा शैतानी के साथ, 'यह अपने साथ किस बंदर को पकड़ लाई हो! देखने में तो अच्छा-सा लगता है। कहाँ मिला?'

मेहर ने मुस्काकर भौजाई के मुख पर हल्की-सी चपत जमाने और भतीजे को चूमने के अतिरिक्त और कोई उत्तर नहीं दिया।

'क्या वह यहीं रहेगा?'

'चाहती तो हूँ, यदि रहें तो।'

'तो क्या ये दूल्हा भाई हैं?'

मेहर ने इसका प्रतिवाद न किया। सूचना मात्र दी, 'इन्होंने मेरी जान बचाई है।'

इस पर भौजाई ने कहा—तुम्हारे भाई को आने दो, अभी मिठाई लेने भेजती हूँ।

नसीर अपनी पुत्री और पुत्रवधू की फुस-फुसाहट में आनंदविभोर हो रहा था। उसे शीघ्र ही अनुभव हो गया कि बातें बढ़ती ही जा रही हैं। ऊँचे स्वर में बोला, 'अरी, बातें ही करती रहोगी, या इनके लिए खाने को भी बनाओगी, खड्गपुर से चले आ रहे हैं।'

इसपर सलीमा ने कहा—जा रे शफीक़, अपने फूफा के साथ खेल!

नसीर ने सुना। कुछ समझा, कुछ नहीं।

— ७ —

तैयब ने कहा—तुम हिंदू हो। क्या हमारे यहाँ भोजन करोगे?

'इसमें हर्ज ही क्या है?' अनिल बोला।

'मुसलमान के यहाँ खाने से क्या मुसलमान न हो जाओगे?'

अनिल ने कहा—यदि हिंदू के यहाँ खाने से मुसलमान हिंदू नहीं हो जाते तो मुसलमान के यहाँ खाने से हिंदू मुसलमान कैसे हो जायेगा?'

तैयब जैसे चकित हो गया हो। उसने नेत्र फाड़कर अनिल को देखा। मन में उठा कि मेहर से विवाह करने के लिए ही यह व्यक्ति मुसलमान होना चाहता है। पूछा—तो क्या मुसलमान होना चाहते हो?

'नहीं तो!'

'फिर?'

अनिल चुप रहा। नसीर दोनों युवकों के वार्तालाप को अत्यंत ध्यान से सुन रहा था।

तैयब ने कहा—हमारा घर मुसलमान का घर है। जहाँ और वस्तुएँ पकती हैं वहाँ बड़े का मांस भी पक सकता है। क्या तुम वह खाओगे?

अनिल के मुख पर एक मुस्कान आ गई। वह अबाध है, कहीं रुकेगा नहीं।

इस मुस्कान ने तैयब को और भी उलझा दिया। मन में उठा कि यह अनिल नाम का जो व्यक्ति उसके सामने है, क्या वास्तव में हिंदू है? अथवा मुसलमान है जो हिंदू होने का नाटक कर रहा है।

अ नल बोला—हिंदू गोमांस नहीं खाते। मैं भी नहीं खाता। घर में बने ही भले, मैं हीं खाऊँगा।

तैयब ने कहा—यदि खा लिया तो?

'हाँ, ऐ पे तो मनुष्य संखिया खाता है और मनुष्य ही बना रहता है। यदि खा लिया तो क्या हो जायगा? मैं अनिल हूँ, अनिल ही रहूँगा।

तैयब का ष्र जैसे बढ़ गया। पूछा—सच बताओ, तुम मुसलमान तो नहीं हो?

अनिल हँस पड़ा। बोला—मैं हिंदू हूँ और संसार के किसी भी कोने में रहकर हिंदू ही रहूँगा। परमात्मा की दृष्टि में हिंदू-मुसलमान क्या है? सब मनुष्य हैं, उसके बेटे हैं।

नसीर यह सुन रहा था। बोल उठा—'बेटा, तुम ठीक कहते हो। अल्लाह तो बहुत बड़ी हस्ती है। इस पानी को देखो न! हिंदू-मुसलमान का अंतर नहीं देखता। आग दोनों को जलाती है। रोग दोनों को होते हैं। तभी समंदर की लहर आई, न हिंदू को छोड़ा, न मुसलमान को। बहुत ठीक कहते हो बेटा! जब यह ज़रा-ज़रा-सी चीज़ें हिंदू-मुसलमान का फ़र्क नहीं करतीं तो क्या वह अल्लाह, जिसने इन सबको बनाया है, जो इन सबसे लाखों-करोड़ों गुना ऊँचा है, इस फ़र्क पर ध्यान देगा!'

नसीर के नेत्र प्रकाश से चमक उठे। समस्त मानव को पुत्रवत् देखनेवाले अल्लाह को जैसे उसने देख लिया हो।

तैयब को विश्वास न हुआ। उसकी उलझन सुलझी नहीं। बोला—'अनिल, चाहे तुम हिंदू हो चाहे मुसलमान; मेरी बहिन को तुमने बचाया है, इतना ही मेरे लिए बहुत है।

नसीर ने पुकारा—'मुनीर, पूछ तो, खाने में कितनी देर और है ?'

समाचार पाकर तीनों पुरुष भोजन करने उठे।

— ८ —

जैनब को कादिर से सहायता और भोजन के स्थान पर प्रहार प्राप्त हुए। भूखी और उनींदी तो वह थी ही; अब बाढ़ से बची थी तो कादिर से बचना भी उसने आवश्यक समझा।

जब भोजन और थकान के प्रभाव से कादिर निद्रित होकर लेट गया तो जैनब की स्वतंत्रता जागी। वह उसके निकट से उठकर चल दी।

कम से कम समय में अधिक से अधिक दूर निकल जाना था। यह सत्य था कि वह कादिर की घरवाली नहीं है, पर जब थानेदार ने कादिर को उसका पुरुष करार दे दिया था तो सत्य-असत्य का कोई मूल्य नहीं रह गया था।

डगमगाते पैरों को भयभीत प्राणों ने शक्ति दी। वह तेज़ी से चल पड़ी। जब वह आध घंटे के लगभग चल चुकी तो उसने अनुभव किया कि उसके शरीर की पीड़ा पुनः शीश उठा रही है। उसने पैरों के जोड़ों पर प्रहार कर दिया है।

एक पीड़ा तीर-सी उसके हृदय को बेध गई। वह डगमगाई। गिरने को हुई। सँभली। कठिन परिस्थितियों में जो रोग लुप्त हो गया था वह पुनः जाग उठा। जैनब ने दीवार पकड़कर अपने को साधा और उसी के सहारे चलती गई।

शारीरिक शक्ति के अभाव में मानसिक शक्ति ने उसे बल प्रदान किया। वह इच्छाशक्ति उसके शरीर को बढ़ाये लिये गई।

अचानक उसका पैर धुँधले अंधकार में एक पत्थर पर पड़ गया। तनिक-सा झटका लगा और जैसे उसके प्राण निकल गये। सिर चकराने लगा। नेत्रों की शक्ति जाती रही। तीव्र इच्छाशक्ति के विरुद्ध भी उसने अनुभव किया कि वह बैठती जा रही है।

इसके दो क्षण पश्चात् चारों ओर से अंधकार हहराकर उसके ऊपर दौड़ पड़ा। वह उसमें खो गई। उसे पता न था कि वह कहाँ पड़ी है और कैसे पड़ी है।

सागर-सरिता और अकाल

— ९ —

जैनब सोई तो सोती ही चली गई। जब उसकी नींद खुली तो उसने अपने को एक अस्पताल में चारपाई पर पाया।

यह अस्पताल बाढ़-पीड़ितों के सेवार्थ अस्थायी रूप से बनाया गया था।

प्रातःकाल जब बाबू नारायणचंद्र ने अपना द्वार खोला तो एक क्षीणकाय नारी को सड़क पर पड़े देखा। ध्यान से देखने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उसके पैरों के जोड़ सूजे हुए हैं। उन्होंने अनुमाना कि युवती क्षुधावती ही नहीं है, रोगिणी भी है।

पड़ोसी समिति के दलपति के घर अपने पुत्र को भेज दिया। स्वयं-सेवक स्ट्रेचर पर उसे उठा ले गये। इस प्रकार जैनब उस स्वर्ग में पहुँच गई।

जैनब ने देखा कि खाटों पर सब स्त्रियाँ ही हैं। परिचर्या करनेवाली भी सुंदर कन्याएँ हैं। उन्होंने उसके वस्त्र उतारकर उसे स्वच्छ साड़ी पहिना दी है।

उसके नयन खुलते ही एक लड़की उसकी ओर आई। डाक्टर के आश्वासन देने पर भी इन चार दिन के लिए बनी स्वयं-सेविका नर्सों ने उसे मृत्यून्मुखी समझ लिया था। उसके नेत्र खुलना एक आश्चर्य का विषय था। उनके लिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना थी।

डाक्टर को सूचना दी गई। लड़कियों में एक प्रसन्नता दौड़ गई। उन्होंने एक नारी को मरने से बचा लिया है।

जैनब के मन में उठा कि यह अस्पताल है। अनिल संन्यासी औषधि बाँटते थे, यहीं होंगे। अनिल को एक बार देखने की इच्छा उसके हृदय में बलवती हो गई।

उसने एक परिचारिका की ओर देखा। वह तुरंत जैनब के निकट गई।

'क्या है?' परिचारिका को अनुभव हुआ कि इस महत्त्वपूर्ण रोगिणी के निकट से उसे विशेष गौरव है।

जैनब ने कहा—अनिल संन्यासी को बुला दो।

अस्पताल में अनिल तो क्या, कोई भी संन्यासी न था। डाक्टर, मैनेजर, स्वयं-सेवक, स्वयं-सेविकाएँ सभी असंन्यासी थे।

स्वयं-सेविका ने इसी से प्रथम बार में जैनब को समझा नहीं। पूछा, 'क्या?'

जैनब ने दुहराया, 'अनिल संन्यासी को बुला दो।'

परंतु वह किसी अनिल संन्यासी से परिचित नहीं है। परिचय होने पर वह अवश्य बुला लाती। उसने प्रमुख सेविका को रोगिणी की इच्छा सूचित की।

प्रमुख सेविका स्वयं आईं। वे स्थानीय कन्या-पाठशाला की प्रधान-अध्यापिका थीं।

उन्होंने प्रश्न दुहराया और फिर उत्तर में कहा—अनिल संन्यासी यहाँ कोई नहीं है।

जैनब लजा गई। अपनी मूर्खता उसपर प्रकट हो गई। अनिल होगा तो अपने आश्रम में होगा। यहाँ स्त्रियों के बीच में क्यों होगा।

सेविका ने पूछा—वे तुम्हारे कौन हैं?

जैनब ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। उसे स्वयं पता नहीं कि वह उसके कौन हैं? वह तो केवल इतना जानती है कि अनिल संन्यासी हैं, औषधि बाँटते हैं और उसे अच्छे लगते हैं। क्यों अच्छे लगते हैं, यह भी नहीं जानती।

वह बोली नहीं। केवल सेविका की ओर देखती भर रही।

सेविका ने पुकारा—'जैनब!'

अब भी वह बोली नहीं। स्वयं-सेविका ने निश्चय किया कि वह वैसे ही बड़बड़ा रही थी। वह वहाँ से चली गई।

जैनब स्वयं-सेविका की उपस्थिति से एक साँसत में पड़ रही थी। उसके जाने से स्वतंत्रता अनुभव करने लगी।

— १० —

अनिल नसीर के परिवार का व्यक्ति हो गया। उसके और मेहर के संबंध को मौन स्वीकृति सबने दे दी। इस प्रकार एक सप्ताह के लगभग व्यतीत हो गया। वह बीता भी यह भी अनिल को ज्ञात न हुआ।

उसका शील-स्वभाव प्रत्येक को मोह लेता था। परंतु इस प्रकार जो समय बीतता है वह सदा नहीं बीतता। अनिल का मन इस अवस्था से ऊबने लगा। परिवार पर जो आर्थिक संकट आ रहा था वह धीरे-धीरे उसपर प्रकट हो गया।

उसने अनुभव किया कि वह इस परिवार पर भारस्वरूप है। इन लोगों की गाढ़े परिश्रम की कमाई बैठकर खाने का उसे कोई अधिकार नहीं।

मेहर इस परिवार की कन्या है, पर उसे तो अपने लिए कुछ करना ही चाहिए।

उसी दिन उसने सुना कि चावल का भाव ढाई सेर हो गया है। नसीर का चिंताग्रस्त मुख उसने देखा। तैयब के नेत्रों में उसने पढ़ा, सस्ते में तुम्हें खिलाना मुझे बुरा न लगता, परंतु इस महँगी में यदि तुम कोई और स्थान देखते तो अच्छा होता।

उसने अनुभव किया कि अब उसके सामने भात पहिले से थोड़ा परसा जाता है। सलीमा यदि अपने पति से और लेने को पाँच बार पूछती है तो उससे केवल एक बार।

वह जानता है कि मेहर विवश है, परंतु इसके आगे विचारते उसे भय लगता था। यदि आवश्यकता हुई तो मेहर अनिल और तैयब में किसे चुनेगी? यदि वह तैयब का समर्थन करे तो अनिल को आपत्ति क्यों होनी चाहिए।

इसी स्थान पर वह अड़ गया। उसने कल्पना कर ली कि वास्तव में मेहर को उसकी आवश्यकता नहीं है। वह इस घर में बेकार अनाथ की भाँति पड़ा हुआ है।

इस भावना ने उसे तिलमिला दिया। उसके हाथ-पैर हैं, वह किसी के आश्रय नहीं रहेगा।

अनिल झोंपड़ी के सामने बैठा था। उठा, और नगर की ओर चला गया। जब डेढ़ घंटे पश्चात् भोजन के लिए उसकी खोज हुई तो वह न मिला।

मेहर चिंतित हो गई।

– ११ –

अनिल ने यह निश्चय नहीं किया कि क्या करना है, निश्चय केवल यही किया कि नसीर के यहाँ नहीं रहना है। इसलिए उसके पैरों और अवचेतन ने उसे घर से दूर ले जाने को हो प्रधानता दो।

सागर-सरिता और अकाल

अनिल गाज़ीपुर की सड़कों पर चला जा रहा था। उसने अनुभव किया कि आजकल जिस जीवन में वह रह रहा है वह उसे कहाँ ले जायेगा।

इसी विचार के बीच में एकाएक आश्रम आ उपस्थित हुआ। वह संन्यासी था, कितने आनंद से था। ताड़ना और उपहास जो उस जीवन में उसने सहा उसमें भी एक आनंद था। नैतिक तल उसका ऊँचा था। उससे ऊँचे-ऊँचे व्यक्ति दया के पात्र थे।

उसे अनुभव हुआ कि संसार में जैसे कुछ रह नहीं गया है। मेहर, तैयब, नसीर उसी प्रकार घुल गये हैं जिस प्रकार सुहासिनी, मौसी और उसके माता-पिता। वह यहाँ पर है। पता नहीं नरेश की मा कहाँ होगी? जैनब कहाँ होगी? उसे व्यापा कि संसार सब भ्रम है, उसे छोड़ देना ही अच्छा है।

वह ससार से भागने की राह खोजने के लिए इधर-उधर ताकने लगा। उसकी दृष्टि इस खोज में एक सुंदर वाटिकामय घेरे पर पड़ी। पाया कि वह अपने ही आश्रम की शाखा है।

उसने बिना विचारे द्वार में प्रवेश किया। कोई व्यक्ति दृष्टिगोचर न हुआ। वह खड़ा इधर उधर ताक रहा था कि संमुख से एक संन्यासी आते दिखाई पड़े।

'क्या है?' उन्होंने पूछा।

'अधिष्ठाता से मिलना चाहता हूँ।'

संन्यासी ने अनिल के मुख को देखा। जैसे उससे आश्वस्त न होकर उसके चरणों को देखा और फिर सिर से पैर तक संपूर्ण अनिल को जाँचा-तौला।

बोले 'अधिष्ठाता बाहर गये हैं, कल आयेंगे, तभी मिल सकेंगे।'

अनिल ने पूछा—स्थानापन्न भी तो कोई होंगे?

'तो इस बेंच पर बैठो। आते ही होंगे। रोगी को देखने गये हैं।'

अनिल ने निकट के बेंच पर आसन ग्रहण किया।

पंद्रह मिनट पश्चात् अनिल ने एक संन्यासी को द्वार में प्रवेश करते देखा। उसे लगा कि चाल परिचित है। तनिक देर में वह व्यक्ति को पहिचान गया। वे उसके पूर्व परिचित महाराजजी थे।

उन्हें देख वह खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर प्रणाम किया। महाराजजी ने पहिले तो उसे न पहिचाना ; उसके चेहरे की ओर ध्यान से देखा कि यह परिचित-अपरिचित कौन है।

पहिचान कर बोले—'अरे अनिल !'

अनिल ने पुनः प्रणाम किया।

महाराजजी आगे बढ़ गये। अनिल उनके पीछे-पीछे चला। निवास के द्वार पर बरामदे में दो-तीन कुर्सियाँ पड़ी थीं। उन्हीं में से एक आराम-कुर्सी पर महाराजजी विराजे। अनिल को बैठने का संकेत किया।

पूछा—'कैसे, कहाँ रहे ?'

अनिल ने सूचित किया, 'बह गया था, किसी प्रकार परमात्मा ने बचा लिया।'

'अब क्या कर रहे हो ?'

'आश्रम में आया हूँ।'

महाराजजी बोले—भई, तुम्हारे चरित्र को लेकर आश्रम में एक उपद्रव खड़ा हो गया है। स्वामीजी ने तुम्हें दंड नहीं दिया, इसलिए उन्हें अधिष्ठाता के पद से हटा दिया गया है। ऐसी दशा में मैं तुम्हें आश्रम में रहने की आज्ञा कैसे दे सकता हूँ ?

अनिल को दृष्टि ने प्रश्न किया—'तब ?'

महाराजजी बोले—गुरुजी स्वयं परसों यहाँ आनेवाले हैं। यदि तुम परसों आ सको तो कुछ निर्णय हो जायगा। उनके अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को अब तुम्हें आश्रम में ले लेने का अधिकार नहीं है।

अनिल के सामने जो मार्ग खुला था वह महाराजजी ने अपने कुछ वाक्यों से बंद कर दिया। वास्तव में वे यह मार्ग एक सप्ताह पहिले ही बंद कर चुके थे। स्वामीजी पर अनिल के मामले को लेकर उन्होंने विजय प्राप्त की थी। स्वामीजी को दंडित करने के लिए उन्होंने अनिल को दंड दिया था। अनिल प्रणाम कर आश्रम के बाहर निकल गया।

उसके सामने पुनः अंधकार था। जिस स्थान को उसने संसार के बाहर समझा था वहाँ संसार को अपना गढ़ बनाते पाया। इस ओर से उसे निराशा हो गई।

पर उसे न जाने क्यों अपनी यह असफलता सुखद लगी। वह संसार से निकल भागने की चेष्टा करने पर भी उसके प्रति विरक्त न हुआ था।

वह पुनः सड़क पर चलने लगा। भविष्य की चिंता करने लगा। पर कुछ समय पश्चात् उसकी चिंता तो मिट गई, पर मस्तिष्क में धुएँ के-से भभके उठते रहे।

धीरे-धीरे उसका मस्तिष्क एक अनुभव-शक्ति-रहित, सुन्न, अंधकारमय पदार्थ से भर गया, जिसे न संसार से संतुष्टि थी और न असंतुष्टि।

उसने एक-एक सड़क का चक्कर तीन-तीन बार लगाया। कौन मार्ग उस अनंतचक्र के बाहर उसे निकाल ले जायगा, यह उसे ज्ञात न था।

संध्या समय जब तैयब ने उससे पूछा कि दिन भर कहाँ रहे तब उसे ज्ञात हुआ कि वह नसीर की झोंपड़ी के संमुख खड़ा है और तैयब उसका आत्मीय है।

वह कुछ उत्तर न दे पाया। हाँ, यह निश्चय हो गया, कि वह पुनः आश्रम में प्रवेश पाने का प्रयत्न नहीं करेगा।

मेहर के नयन जो अनिल के इस प्रकार अंतर्ध्यान हो जाने पर भौजाई से छिप-छिपकर बरसने लगे थे, खिल उठे।

मुनीर से कहा—पूछ तो, बिना कहे कहाँ गये थे?

— ४२ —

अस्पताल में जैनब की अवस्था में सुधार प्रारंभ हुआ। इस सुधार का श्रेय मुख्यतया भोजन को था। उसके पश्चात् सेविकाओं की सहानुभूति का नंबर आता था। अस्पताल होने पर भी औषधि की कमी थी और इस कमी को उपचार से पूरा करने की चेष्टा की जा रही थी।

जैनब के हृदय में स्फूर्ति और नयनों में ज्योति लौट आई। बीच के दिनों में जो संसार के प्रति एक वैराग्य और अस्पष्ट मिट जाने की भावना उसमें आ गई थी, वह अब धीरे-धीरे लौट गई। जीवनेच्छा विजयिनी हुई थी।

स्वंय-सेविकायें जो कर रहीं थीं वह सत्कार्य होने पर भी उनका व्यवसाय न था।

कार्य चाहे कितना ही सत् क्यों न हो, यदि उसे निरंतर होना है तो उसे व्यवसाय बनना पड़ेगा और व्यवसाय का अर्थ है कि कार्य और कर्त्ता के बीच सामान्यतया संबंध रुपये का हो।

इसलिए जो उत्साह था वह मंद पड़ गया। पीड़ितों की संख्या में जो कमी होने की आशा थी वह न हुई, उसके विपरीत उनकी संख्या बढ़ती ही गई। और सेवापथ की कठिनाई जैसे उनके वर्ग के अनुपात में, ज्यों-ज्यों मनुष्य का जीवनतल नीचे गिरने लगा त्यों-त्यों अन्न का भाव ऊपर चढ़ने लगा। जैसे कि अन्न अचानक चेतन हो गया हो, तथा उसने मनुष्य के संमुख से पलायन की उसी भाँति सोच ली हो जैसे कि खरगोश कुत्ते के संमुख से दूर भाग उठता है।

सेवा-समिति के संचालकों ने निश्चित किया कि इतना भार वहन करना उनकी सामर्थ्य के बाहर है, इसलिए इससे पहिले कि उस भार से उनके कंधे टूट जायें उन्होंने अपना अस्पताल बंद कर देना ही उचित समझा।

स्थानीय सरकारी अस्पताल में बड़ी कठिनाई के पश्चात् कुछ रोगियों के लिए स्थान बढ़ा। उसी अस्पताल को सैंतीस रोगी भेज दिये गये।

जैनब के लिए यही स्वर्ग का अंत था। सरकारी डाक्टर के सामने समस्या औषधि की तो थी ही, उससे अधिक भोजन की थी। अस्पताल में अन्न गोदाम में था वह समाप्त हुआ जा रहा था। जिस गति से वह घट रहा था उस गति से बढ़ नहीं रहा था।

अस्पताल ने ही नहीं, प्रत्येक परिवार ने शत्रु द्वारा घेरे दुर्ग का रूप ले लिया। जो उनके पास था उसी पर अधिक से अधिक समय तक जीवित रहना था। तात्कालिक सहायता की कहीं से आशा नहीं की जा रही थी।

डाक्टर ने जैनब से कहा — तुम्हें अस्पताल में रहने की आवश्यकता नहीं। तुम दवा ले जाओ और नगर में रहने का प्रबंध करो।

जैनब संपूर्ण वाक्य सुनने से पहिले ही सन्न हो गई। उसने दया की याचना करती दृष्टि से डाक्टर विश्वास की ओर देखा। डाक्टर उसके नयनों से अपने नयन न मिला सके। उन्होंने दृष्टि हटा ली। बोले—अस्पताल में स्थान नहीं है।

'डाक्टर साहब !' जैनब ने अपनी समस्त विवशता को अंतिम प्रार्थना का रूप देते हुए कहा।

डाक्टर चुप रहे। शीश की गति से संकेत किया कि उसकी प्रार्थना स्वीकार होने की संभावना नहीं है। जैनब के नयनों ने पुनः डाक्टर के नयनों को खोजना चाहा। पर डाक्टर के नयन थे कि जैसे अब रो पड़ेंगे। वे उसके संमुख न हुए।

उन्होंने चपरासी से कहा—लतीफ़, इससे कह दो कि अस्पताल में स्थान नहीं है।

लतीफ़ ने कहा—सुनती हो, अस्पताल में स्थान नहीं है, तुम नगर में रहो। दवा ले जाया करो।

जैनब ने निराशा में डूबते हुए, फिर एक बार प्रयत्न किया, 'भैया, मैं अनाथ हूँ, मुझपर रहम करो।'

लतीफ़ ने जैनब के नयनों में नयन डाले। उन करुणा की दो झीलों में कुछ अपने अर्थ की वस्तु खोज लेने का जैसे वह प्रयत्न कर रहा हो।

मन में उठा—औरत बुरी तो नहीं है। युवती है; युवती है तो हुआ करे। उससे क्या ?

बोला—'तुमसे कह दिया, यह अस्पताल है, अनाथालय नहीं, सुनती हो ?'

जैनब हिली नहीं। ठगी-सी रह गई। सामने जो भविष्य का अंधकारमय गह्वर है उसकी कल्पना कर सकते में आ गई। बोलना नहीं चाहती थी, पर जीभ हिल ही गई।

'भैया !' और हाथ नीचे बढ़ाकर चरण स्पर्श कर लेने को हुए।

लतीफ़ के मन में उठा—इतना समय हो गया, वह इस औरत को यहाँ से चले जाने का अर्थ नहीं समझा सका। डाक्टर देखते होंगे, क्या कहेंगे ? आखिर वह तो नौकर है। यह जाती क्यों नहीं ? वह क्रुद्ध हो गया। जोर से बोला—

'कह दिया तुमसे, सुना नहीं ? यहाँ से चली जाओ।'

जैनब का चेतन शरीर सुन्न हो गया। हाथ लटके रह गये। नयन पथरा गये। जिस भविष्य के अस्तित्व के प्रति वह शंकाशील थी वह अब अकाट्य था, उसी भाँति

उसके पति का भरती होकर लापता होना अकाट्य था, जिस प्रकार बाढ़ आना अकाट्य था, जिस प्रकार अम्मा का सबसे पहिले पानी में गिरना अकाट्य था एवं जिस प्रकार उसके पश्चात् समस्त बस्ती का जल की लहरों में बिला जाना अकाट्य था।

वह इस अनिवार्यता के फंदे में बुरी भाँति फँसी थी। वह फंदा धीरे-धीरे उसकी ओर कसता जा रहा था।

उसे लग रहा था कि वह फंदा असाधारण है।

वह डगमगाई। फिर अपने पैरों पर बल दिया और अस्पताल से बाहर चली गई। दवा की शीशी निकट रख एक वृक्ष का सहारा लेकर बैठ गई।

वह वहाँ ठहरेगी नहीं। जहाँ उसके लिए स्थान नहीं है वहाँ उसके ठहरने की आवश्यकता क्या है। वह वहाँ से चली जायेगी। इतने क्षण ठहरने के कारण वह जो थक गई है, बस, उस थकान के मिट जाने पर।

उस वृक्ष का सहारा लेने पर वह दिन का समय उसके लिए रात्रि में नहीं एक विचित्र अंधकारमय वातावरण में परिवर्तित हो गया। वह रात्रि न थी, पर दिन की अपेक्षा रात्रि के अधिक निकट था।

उस तम में उसने अनुभव किया कि वह एक विशाल जाल से घिरी है। उसके फूले-फूले काले डोरों के फंदे एक भयानक रूप से उसकी ओर सरकते आ रहे हैं।

वह प्रथम इतनी भयभीत नहीं हुई। उत्सुकता से उस सरकने को देखा। वह मोहित दो क्षण बैठी रही और फिर यकायक व्याकुल हो उठी।

उसे लगा कि वह मछली है। यह जाल उसे फँसाने के लिए है। वह मछली है, इस जाल में आ गई है। वह छटपटाने लगी। उसके नयनों में मृत्युभय झलक आया। मृत्यु अब अवश्य है। वह काट डाली जायेगी। जल के बाहर छटपटा-छटपटाकर मरेगी।

जैनब के शरीर ने बिलकुल मछली की भाँति छटपटाना प्रारंभ किया। इस क्रिया में उसका हाथ वृक्ष से टकराया। हृदय में पीड़ा काँटे की भाँति चुभ गई। जैनब जाग गई

न वहाँ जाल था और न मछली थी। पर उसका हृदय उस विभीषिका से वायु में डोलते पत्ते की भाँति काँप रहा था। वह उस स्थान पर स्थिर न रह सकी। उठी और एक ओर चल दी।

— १३ —

दस-बारह दिन जैनब जो अस्पताल में रही उससे उसकी अवस्था कुछ सुधर गई थी। यदि रोगी शरीर न होता तो वह स्वस्थ मनुष्यों में एक हो गई होती।

अस्पताल से बाहर यह दस-बारह दिन नगर के जोवन में कभी विस्मरण नहीं होंगे। आशा थी कि जल ज्यों-ज्यों उतरता जायेगा, वैसे-वैसे ग्रामीण, कृषक, श्रमी, मछुए अपने-अपने निवासस्थान को लौट जायेंगे। पर दशा उसके विपरीत थी।

कुछ लोग लौटे अवश्य! पर आनेवालों की संख्या जानेवालों से दसगुनी थी।

ये लोग जब आये तो अपने साथ अन्न की बेढब माँग लाये। नगरवालों को अनुभव हुआ कि वे भूखों के मध्य में पड़ गये हैं।

जैनब ने देखा कि वह जिस सड़क पर चल रही है उसपर वह अकेली नहीं है। वह मनुष्यों से भरी हुई है। और वे मनुष्य साधारण मनुष्य नहीं हैं।

आँधी के झोंके से जिस प्रकार सूखे पत्ते वृक्ष से टूटकर गलियों में उड़ आते हैं उसी प्रकार वह मानव समूह उस नगर की गलियों में आ पहुँचा है। सड़कें थीं कि निरंतर चल रही थीं। जितने व्यक्ति थे, सूखे, झुलसे हुए से। सभी गतिवान् थे।

जलकण जिस प्रकार नदी के दो तटों के बीच में बहते हैं उसी प्रकार वह जन-समुदाय नगर की एक सड़क से दूसरी सड़क पर, दूसरी से तीसरी पर, तीसरी से चौथी, पाँचवी पर और पाँचवी से लौटकर पुनः पहिली पर घूम आता था।

सभी चल रहे थे। ऐसा लगता था कि जैसे निरुद्देश्य; जैसे कि चींटियों के झुंड के झुंड बेमतलब इधर-उधर घूमते दिखाई पड़ते हैं। उद्देश्य कोई उनका है यह ज्ञात नहीं होता पर वे चलती रहती हैं। और वह जनसमुदाय चलता रहा। एक नशे में अपने को भूलकर चलता गया।

समुदाय विचित्र था। उसमें एक मोहिनी थी। जिस प्रकार बहते पानी का

झोंका पा किनारे के तिनके स्वयं उछलकर धारा में बह जाते हैं उसी प्रकार अनजाने उस समुदाय में संमिलित हो गई और सड़क पर चल निकली।

उसे पता नहीं था कि वह कहाँ जा रही है। आगे का मनुष्य आगे बढ़ता था और पीछे से अन्य लोग आगे बढ़ने को उतावले थे, इसी में वह निरंतर आगे बढ़ी जा रही थी। रुके, ऐसी भावना इस सामूहिक गति की उपस्थिति में उसके मन में नहीं आ पाई। गति, निरंतर अबाध गति!

भीड़ थी। उसमें बाल, वृद्ध, युवा, नर-नारी सभी थे। बालक थे नंगे, पेट प्रायः बढ़ा हुआ, पसलियाँ चमकती हुई जैसे कि खाल भीतर को धँसे पंजर-स्थित हृदय को स्पर्श कर लेने की चेष्टा में हो। उनके सूखे टेढ़े-मेढ़े पैर, डगमगाते डग और उत्सुक खोज से नाचते नयन!

जैनब ने देखा कि उसके सामने से एक बालक एक द्वार पर पड़े कूड़े के ढेर की ओर दौड़ गया। अत्यंत उत्सुकता एवं आशा से उस कूड़े को उलटने-पुलटने लगा। उसने देखा कि वही अकेला बालक ऐसा न था, सारी भीड़ प्रायः इसी प्रकार का व्यवहार कर रही थी।

सड़क पर कुछ न था जो जन की इस धारा ने भोजनप्राप्ति की आशा से उलट-पुलट न डाला हो। कूड़ेदानियाँ उलट दी गईं, कुत्तों की भाँति उसमें भोजन खोजते अर्द्धनग्न मनुष्यों ने कूड़ा सड़क पर फैला दिया। घरों से आती नालियाँ टटोली गईं। सड़कों की बहती नालियों के पानी में कुछ पा जाने की आशा से कुछ लोगों ने उसका इंच-इंच खोज डाला।

मानवधारा रुकती टकराती बहती गई। कोई थककर बैठ जाता। कोई गिरता-गिरता सँभल जाता और कभी-कभी कोई गिर भी पड़ता। पर भीड़ चली जाती थी।

जैनब के संमुख एक नारी गोद में शिशु लिये चल रही थी, ऐसी लड़खड़ाती कि जैनब को लग रहा था अब गिरी, अब गिरी। वह एकाएक बैठ गई। बच्चे को उसने काष्ठवत् भूमि पर रख दिया और स्वयं उठकर चल निकली।

लोग गिरते, बैठते-उठते इस धारा में चले जा रहे थे। मनुष्यों के मुख पर

भूख का प्रभाव व्याप्त था। चेहरे पर अखंड उत्सुकता और भीषण विवश भय था। नयन थे जो निराशा में डूबे हुए अबुझ आशा की ज्योति से जल-जल उठते थे।

सूखे, कांतिहीन, भूखे चेहरे, नयन भीतर को धँसे, कपोल की हड्डियाँ अपने अस्तित्व को उच्च स्वर से पुकार रही थीं। यह जलूस था, सूखे नरशरीरों का जलूस था। कंकालों का जलूस था, श्मशान से उठ आये भूतों का जलूस था।

जैनब को अपने तन की सुध नहीं थी। जो नशा सबपर था वह उसपर भी छा गया। जल-प्रवाह में तिनके की भाँति वह शक्तिहीन थी।

भीड़ अति शब्द करती, द्वार-द्वार पर चिल्लाती, किवाड़ों को धक्का देती बढ़ी जा रही थी।

नगर में घोर आतंक था। दुकानें बंद थीं। मनुष्य घरों में थर-थर काँप रहे थे जैसे कि भूखे भरे पेटों में से भोजन निकाल लेंगे।

जैनब चली जा रही थी। कहाँ? यह विचारने की शक्ति शून्य हो रही थी। पृथ्वी जैसे विचित्र शक्तियों द्वारा परिचालित अपनी कक्षा पर गतिवान है उसी प्रकार जैनब गतिवान थी।

अचानक जैनब को अनुभव हुआ कि वह मुख्य जनधारा को तजकर एक दूसरी ओर घूम गई है। उसके आगे मनुष्य तेजी से बढ़ रहे हैं और जो पीछे हैं वे अपनी गति से उसे कुचल देना चाहते हैं।

भीड़ के धक्के से एक जर्जर किवाड़ टूट गया था। भीड़ उस घर में इस प्रकार घुसी जा रही थी जैसे कि नदी का जल इधर-उधर मिलते गड्ढों में प्रवेश कर जाता है। देखते-देखते वह मकान भूखों से भर गया।

जिस वस्तु पर हाथ पड़ा वह भूखों ने तोड़ डाली। बर्तन उछाल दिये गये। घड़े फोड़ दिये गये। अन्न जो जैसा मिला वैसा ही लोगों ने मुँह में भर लिया। जिस समय एक-एक मुट्ठी अन्न पर गाली-गुफ़्ता और मार-पीट हो रही थी, उस घर की वृद्धा स्वामिनी और पंच वर्षीय पोता एक कोने में डरे दुबके भयभीत नेत्रों से भीड़ की ओर देख रहे थे। उनके और क्षुधायातना के बीच वह जर्जर किवाड़ों की जोड़ी थी जो तोड़ डाली गई थी।

इस घर के बाहर पंद्रह सेर चावल का दाना-दाना खाकर भीड़ उन्मत्त हो उठी। उसने जो संमुख पाया, सब नष्ट कर दिया, उसके पश्चात् जैनब को अपने में समेटते अमीबा के झूठे चरण की भाँति भीड़ इस मकान से खिंच गई।

भूमि पर जो कुछ चावलों के दाने बिखरे थे उन्हीं को बीनते कुछ बालक और नारियाँ रह गईं। वृद्धा और उसका पोता काँपते-काँपते आकर उन्हीं में संमिलित हो गये।

और शीघ्र ही वे लोग एक-एक दाने के लिए परस्पर लड़ने लगे।

— ५४ —

भूखों में भोजन बाँटने के लिए दो जनता के लंगरों के अतिरिक्त एक सरकारी वितरणालय भी था। पर जितने भूखे थे उन सबका पेट भर देना इनकी संमिलित शक्ति के लिए असंभव था। इस वितरण में भी भोजन वही पाता था जो बलिष्ठ होता था। बालकों और स्त्रियों के लिए वहाँ विशेष संभावना न थी।

वितरण करनेवालों को या तो सूझा नहीं कि दुर्बलों को भी भोजन की उतनी आवश्यकता है जितनी कि सबलों को; अथवा सूझने पर भी इस दिशा में वे विवश थे। प्राणरक्षा के प्रश्न में कोई क़ायदा क़ानून भीड़ मानने को प्रस्तुत न थी। जैनब पहले भूखी रही।

अस्पताल में क्योंकि उचित रीति से उसे भोजन प्राप्त हो जाता था, इसलिए यह भूख की यंत्रणा उसे बहुत व्यापी। उसे लगा कि इस प्रकार शीघ्र ही प्राणांत हो जायगा। वह पागलों की भाँति इधर-उधर घूमती रही। सौभाग्य से थक बहुत गई थी। रात्रि आने से पहले ही वह सड़क के किनारे बैठ जाने को बाध्य हुई। नयन झँपे और शीघ्र सो गई।

प्रातःकाल जब उसकी नींद खुली तो दिन चढ़ चुका था। औषधि का ध्यान उसे आया, पर उसकी शीशी न जाने कब किस प्रकार उससे पृथक् हो चुकी थी। उसे संशय हुआ कि शीशी होने पर भी क्या वह अस्पताल तक जा सकेगी और फिर जब भोजन ही नहीं है तो औषधि-उपचार का अर्थ क्या है ? जब मरना है तो दवा खाकर मरना, वैसा ही बिना दवा खाये मरना।

इस एक दिन ने जैनब में भीषण परिवर्त्तन कर दिया था। कल की जैनब, जो अपने को स्वास्थ्य की ओर बढ़तो अनुभव कर रही थी, मर चुकी थी, अब जो जैनब बची थी वह थी मरणोन्मुख जैनब, वह जैनब जिसके प्राणों में छेद हो चुका था, जिसमें होकर जीवन बूँद-बूँद कर रिसता जा रहा था।

सबसे महान प्रश्न था भोजन! जैनब उसी की खोज में फिरने लगी।

एक स्थान में उसे कुछ चने जैसी वस्तु पड़ी दृष्टिगोचर हुई। उसने उठाया, ध्यान से देखा, पाया बकरी की मैंगनी है। विचार आया कि जब चने जैसी लगती हैं तो प्रभाव में उससे भिन्न उन्हें क्यों होना चाहिए। इसके पश्चात् तुरंत हो घोर घृणा उसके मन में उत्पन्न हो गई। उसने मैंगनी फेंक दीं। आगे बढ़ गई।

भोजन न मिलने का कष्ट इतना नहीं था जितना कि भोजन-हीनता के परिणाम की कल्पना का। भूखी वह रह सकती थी, पर उसे भूखे रह तिल तिल जठराग्नि-में सुलगकर मरना होगा यह दारुण यत्रंणा थी।

जैनब ने देखा कि एक पुरुष कुछ नवयुवतियों से वार्तालाप कर रहा है। युतियाँ उसी की भाँति क्षुधापीड़ित हैं। परंतु उनके मुख पर से अब भय के भाव तिरोहित हो गये हैं जैसे उनकी यंत्रणा समाप्त हो गई हो। नरक में अपने दुष्कर्मों का फल भोगकर वे अब स्वर्ग-सुख भोगने जा रही हों।

पुरुष ने पुकारा—छाया, नसीम, अख़्तर, मृणालिनी, छबि, कमली, रहीमन।

और सबने हाँ कहकर उसका उत्तर दिया। जैनब अख़्तर की ओर आकर्षित हुई। धीरे से पूछा—क्यों बहन, ये कौन है! तुम कहाँ जा रही हो?

अख़्तर जैनब के मुख को देखकर बोली—यह हमें कलकत्ते ले जायेगा। खाने को मिलेगा। जानती नहीं करना क्या होगा, पर कहता है कि जो काम नारी के करने का नहीं है वह तुम से नहीं लिया जायेगा।

जैनब ने ललचाये नयनों से उस पुरुष की ओर देखा, जो इन युवतियों के जीवन में सौभाग्य-नक्षत्र की भाँति उदय हुआ है। क्या उसके प्रकाश से उसका जीवन भी आलोकित हो सकेगा? वह उसे भी कलकत्ते ले चले! भोजन मिले, वह सब कुछ करने को तैयार है।

अख़्तर से कहा—बहन, क्या तुम मुझे भी अपने साथ शामिल नहीं कर सकतीं ?

अख़्तर ने उस पुरुष की ओर देखा, बोली—बाबू, यह भी चलना चाहती है।

बाबू ने ध्यान से जैनब के मुख की ओर देखा। उसकी नासिका को बनावट की आलोचना की, नयनों का आकार-प्रकार निरखा, अधरों को वेधक दृष्टि से निहारा, और फिर जैसे मन में कहा—हाँ, काम चल जायेगा।

बोला—हाँ चल सकती है, क्या नाम है इसका ?

अख़्तर ने जैनब की ओर देखा। इससे पहिले कि अख़्तर का प्रश्न जैनब तक पहुँचे, जैनब ने सूचना दी, 'जैनब।'

'अच्छा, तुम हमारे साथ चल सकती हो। भोजन-वस्त्र की कमी तुम्हें नहीं होगी।'

जैनब को जैसे स्वर्ग मिल गया। बाबू ने सिर से पैर तक उसके अंग-प्रत्यंगों का अवलोकन किया और संतुष्ट होकर सिर हिलाया। सब-की-सब जहाँ उनके लिए मोटर प्रस्तुत थी उस ओर चलीं।

अब तक जैनब को अपनी बीमारी जैसे भूली हुई थी। जोड़ों में सूजन के साथ जो दर्द था, वह जैसे स्मृति से फिसल गया हो। पर अब वह पुनः हरा हो गया।

उसे अनुभव हुआ मैं लँगड़ा रही हूँ। और इस अनुभव के साथ भय की तरंग उसपर लहरा गई। वह काँपी। यदि कहीं यह बाबू उसे लँगड़ाते देख ले और साथ ले जाना अस्वीकार कर दे तो क्या होगा ?

उसका हृदय वेग से धड़क उठा।

दुर्भाग्य ऐसी वस्तु है जिसकी गति के विषय में निश्चित नियम नहीं। जिस समय जैनब यह कल्पना कर रही थी उसी समय बाबू ने अकस्मात मुड़कर इन युवतियों की ओर देखा। जैनब पर उसकी दृष्टि अटक गई। उसने देख लिया कि वह लँगड़ा रही है।

'तुम लँगड़ाती हो ?'

जैनब नहीं कैसे करे ? लँगड़ाती वह सत्य ही है।

'हाँ।'

'क्या बीमारी है तुम्हें ?'

जैनब घबरा गई। सच्ची बात उसने कह दी। उसके जोड़ों में दर्द रहता है।

बाबू उसके निकट आया। ध्यान से उसके पैरों का निरीक्षण किया। पाया कि उनपर सूजन है। उसका मुख गंभीर हो आया। वह चिंतामग्न हो गया। वह इन युवतियों से कुछ काम कराने के लिए लिवा ले जा रहा है, उनका इलाज कराने नहीं।

बोला—'तुम ठहरो, मोटर में जगह नहीं होगी। दूसरी बार जब मैं आऊँगा। तो तुम्हें लेता जाऊँगा। तब तक अपनी बीमारी का इलाज करा लेना।'

जैनब धक से रह गई। उसका स्वर्ग एक झाँकी देकर ओझल हो गया। अन्य युवतियाँ मोटर में बैठ गईं। लारी में स्थान की कमी न थी, यह उसने देखा।

लारी का इंजन घरघराया और वह सर्र से वहाँ से सरक गई। जैनब ने कुएँ की जगत पर पहुँचकर कुएँ को सूखते देखा। वह सोच रही थी, उसने अपने लिए वह दुष्कल्पना न की होती तो कदाचित बाबू ने उसका लँगड़ाना न देखा होता।

जो कुछ उसके साथ हो गया है, उसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है।

— १८ —

जैनब तीन दिन इसी प्रकार घूमती रही। कहा तो यही गया कि घूमती रही, पर वास्तव में इसमें घूमने की क्रिया का अंश बहुत कम था। वह एक स्थान पर पड़ी रहती, उठती और पुनः दूसरे स्थान पर जा पड़ती।

बाबू ने जो स्वस्थ हो जाने की शर्त उसे ग्रहण करने को लगा दी है, उससे उसका हृदय टूट गया। वह अब आशा से निश्चित हो भूख से कितने दिनों में मरती है, इस ओर आ लगी।

भोजनप्राप्ति की चेष्टा उसने की। प्रत्येक व्यक्ति के संमुख हाथ पसारा और बदले में पाई, विवश करुणा, उपेक्षा और अंत में उपहास!

ऐसे भी थे जिन्होंने उपदेश दिया, कहा—टाँय-टाँय क्यों करती है। कितने ही तुझसे अच्छे भूखे मरे जा रहे हैं, तू चुपचाप मर क्यों नहीं जाती?

जैनब उस सुझाव के पश्चात् बहुत देर तक सोचती रही, उसने ठीक कहा एक दो दाना अन्न पा जाने से वह अमर नहीं हो जायेगी! मरना तो है ही। चुपचाप क्यों न मर जाये!

उसने निश्चय कर लिया कि वह अब किसी से माँगेगी नहीं। वह ठीक ही कहता था, चुपचाप क्यों नहीं मर जाती! वह चुपचाप हो मरेगी।

उसने दृढ़ निश्चय किया, नहीं, वह माँगेगी नहीं।

कुछ क्षणों तक यह निश्चय उसके अस्तित्व के तंतुओं को कठोर बनाये रहा। परंतु समय के साथ धीरे-धीरे शक्ति दुर्बल पड़ने लगी, विराग आया, तनु कोमल हो चले, उनमें लचक आ गई।

इस लचक पर कल्पना की सृष्टि हुई। न जाने कैसे उसका मन कल्पना कर चला—उसने मरने का जो व्रत लिया है उससे फ़रिश्ते प्रसन्न हो गये हैं और उसके संमुख भोजन की इफ़रात हो रही है। वह अपने संमुख मछली भात और भाँति-भाँति के स्वादिष्ट भोजन देखने लगी।

भोजन के इस दर्शन से उसकी भूख और भी भड़क उठी। उसे अनुभव हुआ कि और कुछ नहीं, उसे भोजन चाहिए, केवल भोजन!

वह कल्पना में मग्न थी। भाँति-भाँति के भोजन देख उसकी जिह्वा और उसके हाथ लालायित हो उठे। वह अपने को रोक न सकी। उसने हाथ बढ़ाया कि एक मछली का सिर उठाकर मुख में रखे।

हाथ चला और मुख खुला। पर न हाथ की पकड़ में कुछ आया, न मुख में कुछ गया। सूक्ष्म में अपने इस प्रयत्न की विफलता से जैनब जगी।

वास्तविक संसार उसके सामने आ गया। उसने देखा कि वह वैसी ही दीन-हीन, भूखी एक धूसरित भूमिखंडपर नगर के बाहरी भाग में बैठी है। दो मनुष्य उसके संमुख होकर निकल गये। वह खोई-सी रही। पर जब तीसरी पद चाप सुनाई दी तो उसके भीतर किसी ने जिह्वा को हिला दिया।

बोली, माँगा, 'अल्लाह के लिए भूखी को कुछ देते जाओ।'

व्यक्ति उसका स्वर सुनकर ठिठक गया। उसने ध्यान से जैनब के मुख की ओर देखा। फिर जैसे क्रोध से काँपने लगा।

'तू जैनब है न ?'

जैनब अचंभित हुई। स्वर उसे पहिचाना-सा लगा। दृष्टि ऊपर उठाकर उसने कहा—'हाँ।'

व्यक्ति ने कहा—तू अभी तक जिंदा है ! मैंने तो समझा था कि तू मर गई होगी। अच्छा, यदि जिंदा है तो ले…।

कादिर ने एक लात जैनब की पीठ पर जमा दी, 'हरामजादी, और भागेगी ?'

कादिर जैनब को लेकर यूसुफ़ से पिटा, और उसके पश्चात् तीन दिन साथ रह दोनों पृथक्-पृथक् हो गये। कादिर समझ रहा था कि जैनब समाप्त हो गई होगी। आज उसे अचानक यहाँ पाकर उसे पहली घटनाएँ स्मरण आ गईं। वह अपमान की आग में जल उठा।

पदघात से जैनब एक बार चीखी और फिर भूमि पर लेट गई। कादिर ने अत्यंत निर्ममता से उसके ऊपर प्रहार प्रारंभ किये। कुछ प्रहार हुए थे कि भीड़ एकत्रित हो गई।

एक युवा ने कादिर को खींचकर अलग किया। गफूर भीड़ चीरता बीच में आ गया।

'क्या है ?' कादिर से पूछा।

कादिर ने उत्तर दिया, 'है क्या ? मेरी घरवाली है, यार के साथ भाग गई थी अब मिली है।'

सबने दोषारोपण करती दृष्टि से जैनब की ओर देखा।

जैनब ने अपने नेत्र गफूर की ओर उठाये जैसे कि वह इस बलिष्ठ व्यक्ति से न्याय-याचना कर रही हो।

गफूर को लगा कि कादिर बिलकुल सच्चा नहीं है। उसने जैनब से पूछा—क्यों री, क्या बात है ?

जैनब ने कहा—यह आदमी झूठ बोलता है। मैं इसे बिल्कुल नहीं जानती।

ग़फ़ूर ने डाँटकर कादिर से पूछा—क्यों, क्या बात है ?

कादिर ने विवश क्रोध से काँपते हुए कहा—मियाँ-बीवी के बीच में बोलनेवाले तुम कौन होते हो। जाओ अपना काम करो।

ग़फ़ूर को कादिर का स्वर अच्छा न लगा। उसने उसे पकड़कर भीड़ से बाहर ले जाना चाहा। कादिर अड़ गया।

'तुम मुझे छोड़ दो।'

एक ओर से आवाज़ आई, 'मियाँ-बीबी हैं, झगड़ने दो, बीच में पड़ने से कोई लाभ नहीं।'

ग़फ़ूर ने कादिर को घसीटा तो एक व्यक्ति कादिर की ओर से बोल उठा—तुम उसे छोड़ क्यों नहीं देते ? उसकी घरवाली है, चाहे जो करे !

ग़फ़ूर ने कहा—इसकी घरवाली भी तो नहीं मालूम होती !

वह बोला—तुम्हें पता क्या ? औरत ऐसी ही होती है।

ग़फ़ूर ने उस व्यक्ति की ओर देखा ; पाया, कि कादिर के स्थान पर वह स्वयं हो जैसे जैनब को दंडित करने को उतावला हो रहा है। उसे हँसी आने को हुई, पर तभी कादिर को बल लगाते देख वह क्रोध से भर गया। उसे धक्का देकर बोला, 'जाता है कि नहीं ?'

चार व्यक्ति ग़फ़ूर की ओर भी बोल उठे। कादिर को वहाँ से चला जाना पड़ा। जैनब वहीं पड़ी रही। लोग उसके इतिहास के प्रति कुछ क्षण उत्सुक रहे। फिर इधर-उधर चले गये।

जैनब अब कुछ सोच नहीं पाती थी। साधारण कल्पना के फलस्वरूप उसे यह दंड मिला था। उसे अनुभव हुआ कि वह ठीक था। उस मनुष्य को कितना अच्छा गुण याद था, चुपचाप मर जाना सबसे अच्छा है।

वह अपने भूत के सुखद क्षणों की कल्पना करती, दुःखद क्षणों पर आँसू बहाती वहीं पड़ी रही।

लगभग तीन घंटे पश्चात् ग़फ़ूर उस ओर लौटा। पाया कि वह वहीं पड़ी है। निकट जाकर ध्यान से उसकी ओर देखा। सूजे हुए जोड़ और सूखा हुआ शरीर।

पूछा—'खाने को मिला ?'

जैनब इस प्रश्न पर ही कृतज्ञता से भर आई। नयनों में जल आ गया। सिर उठाकर ग़फ़ूर की ओर देखा।

बोली—'नहीं'—और अत्यंत धीमे स्वर में।

ग़फ़ूर को देखकर वह समझ रही थी कि भूख की मार से अछूता वह भी नहीं है। पूछ रहा है केवल सहानुभूति वश। वह कुछ सहायता नहीं कर सकेगा। ऐसी अवस्था में अपने को भूखा बताकर उसे विवशता से दुखी क्यों किया ? पर जो सच था वह मुख से निकल ही गया। ग़फ़ूर के प्रति उसकी दया केवल उसका स्वर ही नीचा कर सकी।

ग़फ़ूर बैठ गया। उसने एक पोटली निकाली, और कुछ पत्तियाँ, बाजरा, भात मिला गोटा-सा उसके संमुख रख दिया। पदार्थ तीन-चार कौर से अधिक नहीं था। जैनब ने खाया और रोने लगी।

चुपचाप मर जाने का व्रत वह न निबाह सकी थी।

— १६ —

अनिल परिवार में लौट गया। उसका भाग इन लोगों के साथ कितनी दृढ़ता से बँध गया है, यह उसे विदित हो गया।

वह रात्रि में लेटा सोचता रहा। उसे कुछ करना चाहिए। परिवार को उसके श्रम की अत्यंत आवश्यकता है। पर वह क्या काम कर सकता है। निश्चय किया कि कल नौकरी खोजने जायगा। इतने छोटे-से नगर में ऐसे समय क्या काम मिलेगा इसकी ओर उसका विशेष ध्यान न गया। उसने कल्पना कर ली कि यदि मनुष्य काम करने पर उतारू हो जाये तो काम छुपा न रह सकेगा।

वह शीघ्रातिशीघ्र नगर में जाकर कुछ काम खोजना चाहता था कि अपने कमाये पैसे से कुछ वस्तु लाकर मेहर को चौंका दे।

उसे नींद न आई। दिन निकलने की प्रतीक्षा वह व्यग्रता से करता रहा।

अनिल प्रातःकाल जब झोंपड़े से बाहर निकला तो ज्ञात हुआ कि पीड़ितों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

उसके संमुख अभी तक करना स्पष्ट और क्या करना अस्पष्ट था। पर अब वह बाज़ार में था और इस क्या के निश्चित हो जाने की अत्यंत आवश्यकता थी।

सोचा—नौकरी! वह शिक्षक था। मास्टरी कर सकता है। आशा की ज्योति उसमें जगने को हुई, कि उसका ध्यान अपने वस्त्रों की ओर गया। वह इस वृत्ति के लिए किसी के पास किस प्रकार प्रार्थी होकर जाये?

मन में उठा, छोटा नगर है, एक दो साधारण स्कूल होंगे। नहीं, इस वृत्ति में सफलता को आशा नहीं है।

उसे एक सज्जन दिखाई पड़े। खिलते गोरे रंग पर चश्मा चढ़ाये। वे चले जा रहे थे; कल्पना में बुदबुदा रहे थे जिससे उनका नीचे का ओठ लटक-लटक जाता था, जैसे कि बीच में से टूट गया हो।

अनिल का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। वह उन्हें अपनी ओर आते बड़े ध्यान से देखने लगा।

मानव की त्वचा भी किसी रहस्यमय रीति से दृष्टि के प्रति क्रियात्मक हो उठती है। इसी कारण वे चश्माधारी अनिल की दृष्टि न सहन कर सके। उन्होंने भी अनिल की ओर ध्यान से देखा। एक मैला-कुचैला युवक।

वे वैसे ही आगे बढ़ जाना चाहते थे कि अनिल ने प्रणाम किया।

'क्या है?' असंतुष्टि प्रत्यक्ष दर्शाने का प्रयत्न करते सज्जन बोले।

'क्या आप मेरी कुछ सहायता कर सकेंगे?'

'संसार में परमात्मा ही·····।'

'महाशय, मैं शिक्षित हूँ। यदि आप मुझे कहीं कोई नौकरी दिलवा दें तो···।'

'असंभव है महाशय, इस समय नौकरी से अधिक मनुष्य को अन्न की आवश्यकता है।'

और वे चले गये। उनके स्वर में गहिरी उपेक्षा थी।

अनिल को लगा कि उसके वस्त्र ही इसका कारण हैं। पर दूसरे वस्त्र वह कहाँ से लाये? इसका मूल्य जैसे उसके वस्त्रों के मूल्य पर निर्भर है।

इन वस्त्रों ने उसके व्यक्तित्व को इतना छोटा कर दिया है इसपर उसे विश्वास न हुआ।

इस असफलता से उसे अपनी विवशता अनुभव हुई और पैसा कमाने का हठ जैसे बढ़ गया। उसे स्मरण आया कि वह अभागा है। वह किसी काम में हिच-केगा नहीं।

उसने अब शारीरिक मज़दूरी की ओर ध्यान दिया। पर इस अपरिचित स्थान में वह भी एक समस्या ही थी। उसी के हल में चिंतित वह जा रहा था कि एक लकड़ी की टाल के निकट भीड़ के कारण उसे रुकना पड़ा।

देखा—एक व्यक्ति लकड़ी खरीद रहे थे। ले जाने के उत्सुक चार कुली खड़े थे।

नारायण ने कहा—बाबू दो आने दे देना। अनिल ने देखा कि नारायण अधेड़ है। शरीर लंबा-चौड़ा है, पर पीला पड़ चुका है। दृष्टि में एक विचित्र चपलता है।

बाबू ने शीश हिलाया।

महेश बोला—'छः पैसे देने हों तो मुझसे ले चलने को कहिए।' उसके हृदय ने आशा की थी कि बाबू अवश्य स्वीकार कर लेंगे। छः पैसे मिलेंगे। दूसरी मज़दूरी करने से पहिले वह उसकी कोई वस्तु खरीदकर घर दे आयेगा। पिछले दो दिनों से जो उसके बच्चों को कुछ नहीं मिला; अब तनिक सहारा हो जायगा। उसने अपनी रस्सी भूमि पर फैला दी।

बाबू चुप रहे। उन्होंने उसकी ओर जैसे देखा ही नहीं। लकड़ी एक ओर डाल दी गई।

जमील ने अपनी बूढ़ी मा की सुध की। उसे लगा कि आज भी कुछ मज़दूरी यदि न हुई तो वह जवान बेटा क्या बूढ़ी मा को मुख दिखाने योग्य रहेगा? उसने महेश की कल्पना पर प्रहार किया।

बोला—'पाँच पैसे मैं ले लूँगा, महाशय!'

ग्राहक ने चारों ओर दृष्टि घुमाई जैसे कि इससे कम में ले जानेवाले किसी को खोज रहे हों।

उनकी दृष्टि जाकर किसी प्रकार अनिल पर अटक गई। अनिल एक क्षण चुप

रहा। वह दृष्टि उचटकर जैसे पुनः उसी पर लौट आई। मानों कि कह रही हो बोलते क्यों नहीं? बोलो, तुम कितने में ले चलोगे?

अनिल ने अकस्मात् जागते हुए, बे समझे कह दिया। 'चार पैसे...।'

ग्राहक ने अपनी रस्सी अनिल के हाथ में दे दी। अनिल ने देखा कि महेश ने टूटे-से हाथों से अपनी रस्सी उठा ली। उसकी रस्सी फटे टाट और वस्त्र लपेटकर बनी थी। अनिल ने उसमें धोती की कन्नी देखी। एक मोटी भद्दी गाँठ देखी और दो छोटी-छोटी।

महेश की ओर देखने का उसका साहस न हुआ। उसने जैसे चोरी की हो। वह मंत्रमुग्ध की भाँति रस्सी फैलाकर उसपर लकड़ियाँ रखने लगा।

नारायण, महेश और जमील एक दूसरे की ओर देखते पीछे हट गये। दृष्टि कह रही थी ऐसे ही मरभुखे तो मज़दूरी बिगाड़ते हैं।

पर भीतर हृदय काँप रहा था। 'चार पैसे ही ...।'

अनिल ने पूछा नहीं कि कहाँ जाना है।

प्रफुल्ल बाबू और दूकानदार ने वह मन भर लकड़ियाँ उठवाकर अनिल के शीश पर रख दीं और वह उन बाबू के पीछे चल पड़ा।

अनिल ने जब बोझ शीश पर रखा तो उसे लगा कि मन भर क्या इतना हल्का होता है? इतना भार तो वह पृथ्वी के छोर तक ले जा सकता है, रात-दिन शीश-से न उतारे।

वह प्रसन्नचित्त डग उठाने लगा। लगभग पचास डग उठाने के पश्चात् उसे लगा कि उसकी गर्दन की शक्ति समाप्त हो रही है। उसने इच्छाशक्ति का प्रयोग कर अपने शीशपर रखे भार को भूल जाना चाहा। मेहर का स्मरण किया, चाहा कि सुखद कल्पना से वास्तविकता को ढँक दे।

पर उसकी शक्ति डगमगा रही थी। उसकी कमर में जैसे पीड़ा की लहर दौड़ गई। उसे लगा कि कमर जैसे टूट जायेगी और अनिल दो खंड होकर भूमि पर गिर पड़ेगा।

उसने शीघ्रता से डग उठाये। ऐसी दुर्घटना से पहिले जितनी दूर वह चल ले वही सही।

अधिक समय तक उसकी शक्ति ठहरी नहीं। पैर डगमगाने लगे। उनपर जैसे उसका वश न रहा। वह उन्हें रखता कहीं था और वे पड़ते कहीं थे।

अनिल ने पुनः चाहा कि विचारशक्ति से इस दुर्बलता को जीत ले। उसे लगा कि वह सफल हो रहा है। उसने अपने दो ओर सड़क के किनारे खड़े मकान की श्रेणियों को देखा। भाँति-भाँति के छोटे-बड़े मकान एक पंक्ति में खड़े थे। जैसे कि वे ऊपर उठने के लिए तो प्रयत्नवान् हों पर भूमि पर फैलने के विषय में अत्यंत संयमित हों।

अनिल ने अपने पैरों में और मानसिक शक्ति डाली, शीघ्रता से डग उठाये।

उसे लगा कि उसकी गर्दन अब ठहरेगी नहीं। टूटकर दो खंड हो जायेगी; और फिर जैसे सड़क, मकान, दूकान सब उसकी दृष्टि से ओझल हो गये। एक गंभीर अंधकार उसके बाहर-भीतर छा गया। वह पहिले काँपा, फिर काँपती भूमि की भाँति हिला, और अंत में तूफान-ग्रस्त पोत की भाँति वेग से डगमगा पड़ा। उसे पता नहीं क्या हुआ, वह कितना कैसे झुका!

लकड़ी का गट्ठा गिरने का शब्द हुआ तो वह चौंका पर जागा नहीं। वह स्थिर मूढ़ दृष्टि से उस भार की ओर देखता रहा। उसे लगा कि अचानक सुख के सिंधु ने उमड़कर उसे ढँक लिया है। उसने हाथ से कंठ सहलाया।

प्रफुल्ल महाशय ने पीछे फिरकर देखा।

'क्या हुआ?'

'कुछ नहीं।'

'फिर...?'

अनिल लज्जावश अधिक उत्तर न दे सका। वह अपनी दुर्बलता क्यों दूसरे पर प्रकट करे।

प्रफुल्ल और अनिल दो क्षण वहाँ खड़े रहे। प्रफुल्ल बोले—चलो शीघ्र, दफ़्तर को देर हो रही है।

अनिल के मन में उठा कि वह उनसे दफ़्तर में नौकरी के विषय में वार्तालाप करे। पर साहस न हुआ। उसने मन को समझाया कि यह उपयुक्त अवसर नहीं है।

भार शीश पर रखकर वह पुनः चल खड़ा हुआ। भार हल्का न हो गया था। पर करने में जो अनिवार्यता थी वही अनिल को साध रही थी। वह पसीना बहाता जाता था और चलता जाता था।

वह जैसे-जैसे थकता जाता था वैसे ही उन महाशय का घर जैसे पीछे सरकता जाता था।

अनिल को लगा—बस, अब इस जीवन में क्या है? इससे अच्छा तो फाँसी लगाकर मर जाना है। ऐसा जीवन वह नहीं रख सकेगा।

जब वह प्रफुल्ल के घर पहुँचा तो वह इस जीवन से पूर्णतया ऊब चुका था। वह अब केवल जीवन के मोह में इतना कष्ट नहीं झेलेगा।

पर जिस समय एक इकन्नी प्रफुल्ल बाबू ने उसके हाथ में दी, तो उसका समस्त कष्ट, संसार के प्रति उसका समस्त वैराग्य जाने कहाँ तिरोहित हो गया। एक मुस्कान उसके अधरों पर आ गई। उसने इकन्नी को उलट-पुलटकर भली भाँति उसका स्पर्श प्राप्त किया।

उसने यह चार पैसे कमाये हैं। ये अब उसके हैं। उसका हृदय गर्व से भर गया। थकन जैसे मिट गई। वह अधिक मज़दूरी करेगा, अधिक पैसे कमायेगा। बस तनिक सुस्ता भर ले।

उसने इकन्नी को दो बार ध्यान से देखा। उसका स्पर्श अत्यंत सुखद था। कहीं गिर न जाये इस भय से वह एक बार काँप उठा। उसने उसे अत्यंत सँभालकर गांठ में बाँध लिया।

अनिल मज़दूरी की खोज में इधर-उधर घूमता रहा, पर विशेष सफलता न हुई। सोचा—कहीं बँधी मज़दूरी मिल जाती तो कितना अच्छा होता!

वह घर लौट चला। कहकर नहीं आया था; चिंता होगी। वह जानता है कि और किसी को नहीं, मेहर को, या मुनीर को जिसे वह कहानियाँ सुनाता है।

झोंपड़ी के बाहर एकांत में जब उसने वह इकन्नी मेहर को दी तो मेहर के नयन खिल उठे।

'कैसी है ?'

'तुम्हारी है।'

'कहाँ··?'

'मज़दूरी करके···।'

मेहर के नयनों में अश्रु आ गये। आज अपने जीवन में प्रथम बार उसे किसी ने अपना समझकर पैसे दिये थे। ये पैसे जो वास्तव में उसके थे। उसका प्रथम पति भी जो लाता था अपनी मा को देता था।

मेहर का हृदय अनिल के प्रति प्रेम से लबालब भर आया। उसने उसका हाथ पकड़कर दबा दिया ; प्रेम का शेष भाग उपयुक्त समय के लिए स्थगित रखा।

भावना उठी—दोनों की अलग झोपड़ी होती। अनिल कमाता, वह उसका घर सँभालती। उन्हें इस प्रकार छिपकर मिलने की आवश्यकता न होती।

अनिल ने मेहर के नयनों में देखा अपने परिश्रम का घुलकर बहना, और उसका पारितोषिक। उसे लगा कि वह मेहर को प्रसन्न रखने के लिए परिश्रम करेगा, अधिक से अधिक परिश्रम करेगा।

भोजन के समय अनिल को अनुभव हुआ कि परिवार में अब किसी को भी भर पेट भोजन मिलना संभव नहीं है। केवल हिस्से के अनुसार थोड़ा-थोड़ा बाँटा जायगा।

अनिल फिर बाहर निकल गया।

– १७ –

अनिल ने कुछ पैसे और कमाये। भोजन का प्रश्न उसके संमुख अत्यंत तीव्र था। उसने पाया कि जो कुछ उसने कमाया है उसका मूल्य अन्न के रूप में नहीं के बराबर था।

तब उसे अनुभव हुआ कि वास्तव में अन्न है जो पैसे से अधिक आवश्यक है। पर उसकी प्राप्ति का उपाय !

बाज़ार में अध-खुली-सी दुकानों के बीच वह बैठा था। दो-तीन जने और आ एकत्रित हुए।

मुनव्वर ने कहा—शमोम की बहू बचेगी नहीं।

खलीक़ ने अपनी करील की झाड़ी-सी दाढ़ी के बीच उँगलियाँ चलाईं। 'अल्लाह की मर्ज़ी!'

अनिल को कुछ बोलना था—'जब खाने को नहीं तो औषधि-उपचार कहाँ?'

'ठीक कहते हो!' केदार ने अनिल की ओर देखकर कहा।

'यही बात है।'

अनिल को अत्यंत बलपूर्वक अनुभव हुआ कि भोजन सबसे बड़ी आवश्यकता है।

इसी समय एक गाहक टाल के द्वार में प्रवेश करता दिखाई पड़ा। सब लोग उठकर उस ओर दौड़े।

खलीक़ ने अनिल के कंधे पर हाथ रखकर कहा—इस बार मुझे ले जाने देना। हालत बहुत खराब है। अनिल ने इसमें उसकी आत्मा की भिक्षायाचना सुनी।

'अच्छा।'

मज़दूरी का सौदा प्रारंभ हुआ।

'दो आने।' केदार बोला।

'छः पैसे।' मुनव्वर ने कहा।

'पाँच पैसे।' खलीक़ ने सेवा अर्पित की।

'पाँच पैसे।' अनिल ने कहा।

गाहक ने शीश हिलाया और फिर मज़दूरों की ओर देखा।

'चार पैसे!' मुनव्वर ने काँपते हुए कहा।

अनिल बोला नहीं।

खलीक़ ने सोचा—चार पैसे से भी कम क्या? मुख से निकला—'तीन पैसे।'

मुनव्वर ने ललकारा—'खलीक़!'

'क्या है?' मुनव्वर को उत्तर मिला।

'है क्य।? ले जा तीन पैसे में, समझ लेंगे।'

खलीक़ ने कहा—ले ही जाऊँगा। समझ लेना। बड़ा तीस मार खाँ बनकर आया है।

खलीक़ उठाकर ले गया। प्रायः सभी उससे असंतुष्ट हो गये।

संध्या हो आई। अनिल को लगा कि बाज़ार से कुछ ले चलना चाहिए। उसके पास छः पैसे थे। उन्हें वह खर्च भी न करना चाहता था। मेहर के लिए बचा रखना चाहता था।

मन में उठा—वह चोरी करेगा। चोरी में क्या है? वह चोरी करेगा।

किसी ने विरोध किया—नहीं, और कोई काम करे, पर चोरी? नहीं, वह ठीक नहीं।

अंधकार बढ़ा। उसने देखा कि एक ठेले पर कुछ बोरियाँ लदी जा रही हैं। वह ठेले के पीछे-पीछे चलने लगा। कल्पना उठी कि यदि वह इतना बलवान होता कि एक बोरी चुपके से उठा लेता, और ठेलेवाले को पता न चलता।

उसके हाथ अपने आप बोरी पर पड़ गये। अंधी उँगलियों ने खोजकर एक छेद पा लिया। स्पर्श ने बताया चावल हैं।

उसने अपना पल्ला छेद के नीचे लगाया। बोरी के भीतर जो छेद भरने के लिए कपड़े का टुकड़ा था उसे सरका दिया। चावल की एक धारा उसके वस्त्र में गिरने लगी। उसका हृदय काँपने लगा। पर वह ठेले के पीछे चलता गया। दूर-दूर पर मिट्टी के तेल के लैंप अंधकार को जीत लेने का असफल प्रयत्न कर रहे थे।

कुछ ही समय में पाँच सेर के लगभग चावल उसके पल्ले में आ गये। भय हुआ कि अधिक भार से उसका जीर्ण वस्त्र फट जायेगा। उसने छेद को यथासंभव बंद कर दिया और अंधकार में ठेले के पीछे से अलग हो गया।

वे चावल अब उसकी संपत्ति थे। उसने हिसाब लगाया कि इतने समय में उसने लगभग चार रुपये की मजदूरी की है। चावलों को सयत्न छुपाये वह घर पहुँचा।

पैसे मेहर को दिये और चावल सलीमा को।

अनिल का मान परिवार में तेजी से बढ़ गया।

नसीर ने कहा—पढ़ने-लिखने का यही फ़ायदा तो होता है!

मेहर ने अनिल के अधरों पर चुंबन अंकित कर अपने को धन्य माना। उसे वास्तविक पुरुष अब प्राप्त हुआ था। बाढ़ उसे फली थी।

— १८ —

गफूर ने तो जैनब को साथ न लिया, पर जैनब उसके साथ हो गई। वह सदा उसके साथ-साथ घूमने में असमर्थ थी, पर जब कभी वह दृष्टि पड़ जाता तो दृष्टि जहाँ तक जाती वह उसे देखती रहती। गफूर में उसने अपना संरक्षक पा लिया था। गफूर ने भी एक-दो बार उसे भोजन के कुछ कण दे दिये थे।

रात्रि का समय था। जैनब सड़क के किनारे एक खुले स्थान में पड़ी थी। नगर से बाहर की ओर इस स्थान पर निकट के देहातों के लिए बाज़ार भरता था।

जैनब को पता था कि गफूर उससे कुछ गज़ों के अंतर पर सो रहा है। उसकी सांस का शब्द वह स्पष्ट सुन रही थी और बीच में एवं इधर-उधर पड़े अन्य व्यक्तियों के शब्दों के बीच उसे स्पष्ट पहिचान रही थी।

जैनब को ज्ञान था कि जिस प्रकार भोजन उसे प्राप्त हो रहा है उससे वह अनिवार्य रूप से मृत्यु की ओर जा रही है। जीना वास्तव में मृत्यु की प्रतीक्षा करना है। जैनब वही कर रही थी।

प्रारंभ के दिनों में भोजन की अप्राप्ति से जो एक भारी असुविधा उसे अनुभव हुई थी, वह अब उतनी न रही थी। वह कौर-कौर खाकर दिन भर रह सकती थी। उसकी शक्तियाँ वेदना-रहित रीति से क्षीणता की ओर जा रही थीं। एक नशा उसपर आ रहा था!

परंतु भीतर-बाहर की इस निःस्तब्धता के बीच कभी-कभी भय की भीषण भावना उसपर छा जाती थी और तब कल्पना के सहारे वह काँप उठती थी।

वही अकेली इस दशा में न थी। और भी थे। नित्य वह बालकों को मरते देख रही थी, और जब प्राणों की पतझड़ मची हो तो एक पत्ते को अपने विषय में विशेष भावुक होने के लिए स्थान नहीं रह जाता।

जैनब में वैसी भावुकता विशेष न थी। उसे अल्लाह पर जो पहिले हल्का-हल्का विश्वास था, वह अब परिपूर्ण हो गया था। इस समय जो विचार-धारा उसके दुःख को

टाल बन सकती थी, वह अल्लाह पर तीव्र अखंड विश्वास की थी। उसकी इच्छा पर उसे पूर्ण विश्वास था। उसके प्रति अपना संपूर्ण समर्पण था।

वह अपने विषय में सोचने-विचारने का सब कार्य अल्लाह के ऊपर डालकर निश्चित हो गई थी। वह पीड़ा सहन कर रही थी, पर पीड़ा समझकर नहीं।

वह समझ रही थी कि उसने गुनाह किये हैं, उनके अनुसार उसे और भी कठोर कष्ट मिलने चाहिए थे। यह तो अल्लाह का रहम है जो उसे इतनी ही पीड़ा दी जा रही है। इस प्रकार वह अपने में घुँटी विधाता के लेख को सह लेने में सब शक्ति लगा रही थी। कहा जा सकता है कि वह संतुष्ट थी।

अंधकार जैनब के ऊपर घिर आया। आज का दिन उसके लिए विशेष सफलता का दिन था। गफूर ने ही उसे एक कौर भोजन न दिया था। दो अन्य व्यक्तियों से भी उसने एक-एक कौर भात प्राप्त किया था। इससे उसकी जीवनशक्ति का तल आज कुछ ऊँचा हो आया था।

जैनब अंधकार के मध्य में लेटी थी। विचार आते थे। कल्पनायें आती थीं, पर उनसे जैनब को कष्ट ही होता था। इसी से वह बलपूर्वक सब कल्पनाओं को अपने से दूर रखना चाहती थी। वह भूत-भविष्य की चिंता भूलकर केवल वर्त्तमान में रहना चाहती थी। परंतु वर्त्तमान में इस विषय में कल्पना से विमुक्त न थी।

उसने अंधकार को देखा। आकाश में, और फिर चारों ओर देखने को दृष्टि घुमाई। पर उसकी दृष्टि आकाश में जैसे मोहित होकर अटक गई।

उसने अनुभव किया कि अंधकार में फैलने का ही गुण नहीं है, वह केंद्रित भी हो सकता है। उसके ढिंमें बँध जाते हैं। वह उन अंधकार के ढिंमों की ओर ध्यान से देखती रही। उसे लगा कि वे ढिंमें स्थिर नहीं हैं, वरन् हिल रहे हैं, इधर-उधर डोल रहे हैं।

उसकी उत्सुकता बढ़ी। एक ओर से बालक के रीं-रीं का स्वर आया। दूर कहीं साँस का रोगी खाँसा। उसके खकार और थूकने का शब्द वायु में व्याप्त हो गया।

जैनब कांपी। उसे लगा कि उन ढिंमों की गति बढ़ गई है। वे इधर-उधर

गतिवान हैं। बादल के टुकड़ों की भाँति तैर रहे हैं। निःशब्द एक दूसरे से टकराते हैं, आगे बढ़ते, घूमते और लौट पड़ते हैं।

वातावरण में जैसे पर फैलाकर उड़ा, 'मेरे लाल, हाय रे!'

जैनब ने अपने नयन मूँदे। दूर के वृक्ष पर उल्लू के बोलने का शब्द वायु को कँपा गया। उससे भी दूर जंगल में सियारों के रोने की ध्वनि की गूँज मूर्तिमान होकर उन अंधकार के ढिंमों में संमिलित हो गई।

जैनब थरथरा गई। उसने नयन मूँदे। पर इस दशा में भी वह भयभीत हो रही। उसे लगा कि ऊपर से कुछ भारी पदार्थ उसपर गिरा चाहता है। एक ओर भूमि पर चाप सुनाई दी।

उसने नयन खोल दिये। ललाट से पसीने को पोंछकर चारों ओर देखा। अंधकार, नीला, मटमैला, काला अंधकार, घोर अंधकार।

ऊपर को ओर देखा, और फिर एक चीख आकर उसके कंठ में रुक गई। उसने देखा कि एक ढिंमा सीधा उसी की ओर आ रहा है। उसका दम जैसे घुटने लगा। सबसे भय की बात यह थी कि वह ढिंमा, जैसा कि अब तक वह समझ रही थी, साधारण अंधकार निर्जीव ढिंमा न था, वह और भी भयानक था।

उसने देखा कि उसके बड़ी-बड़ी सफेद दो आँखें हैं और उनके बीच में भयानक लाल पुतली है। उस नरमुंड पर मरखने भैंसे जैसे पैने-पैने सींग हैं।

वह हुंकारा नहीं। पर जैनब ने सुना कि वह चिंघाड़कर उसी पर टूटा है।

जैनब को विश्वास हो गया कि वह गई। उसने आँखें बंदकर अल्लाह का नाम लिया और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगी। समस्त साहस बटोरा, फिर भी पसीने से तर हो गई। हृदय की धड़कन भय से बढ़ चली।

वह काफी समय तक नयन मूँदे रही। जिस विभिषिका की प्रतीक्षा वह कर रही थी, वह उसके ऊपर न आई।

वह इस देरी से तनिक आश्वस्त हुई। नयन खोलने चाहे, पर शक्ति एकत्रित न कर पाई। रुकी, फिर बल लगाया और डरते-डरते अपने से बाहर देखा।

वह भय से पत्ते की भाँति काँप रही थी। उसने धैर्य एकत्रित करने के लिए

निकटवर्त्ती मनुष्यों की ओर देखा। वे लोग उसके निकट दो-दो चार-चार गज पर सोये थे। स्तब्ध, सन्न!

जैनब के मन में उठा कि कहीं ये लोग मर तो नहीं गये। एक नवीन भय उसमें प्रविष्ट हो गया। क्या वह लाशों के बीच में पड़ी है? वह काँपी और सुन्न हो गई। भय का इतना भयावह अनुभव उसे पहिले कभी नहीं हुआ था।

वह इस भय के बीच थर्रा रही थी कि एक ओर कुछ सरकने की आहट उसे सुनाई दी। ऊपर से उसकी दृष्टि दिशाओं में घूमी। निकट के ताल में मेढ़क टर्रा उठा। सियारों के रोने की ध्वनि आकाश से प्रतिध्वनित होने लगी।

जैनब को एक ओर से कोई मूर्ति अपनी ओर आती दिखाई पड़ी। उसे लगा कि यह भी एक अंधकार का ढिंमा ही है। उसे पहिले इस प्रकार का अनुभव हो चुका है। इस बार वह विशेष भयभीत नहीं हुई। उसने भय से बचने के श्रेष्ठ उपाय का अनुभव किया। नयन मूँद लिये। पर इस बार बच जाने में विशेष सफलता न हुई।

उसने अनुभव किया कि वह अंधकार का ढिंमा एक पुरुष है जो उसकी ओर आकृष्ट हुआ है। उसने जैनब का मुख रोटी के टुकड़ों से भर दिया और फिर उस नारी पर अधिकार कर लिया। जैनब ने स्थिति स्वीकार की।

वह पुरुष चला गया।

अंधकार का घनापन जैसे बढ़ गया। जैनब को लगा कि अंधकार प्रकाश की अपेक्षा संभावना से अधिक पूर्ण है। उसने करवट ले ली। सोना चाहा। जो कुछ उसके साथ हो गया था, मृत्यु के तट पर खड़े, उसपर जैसे विशेष विचारने की आवश्यकता ही नहीं थी।

जैनब को शांत स्वस्थ हुए अभी कुछ क्षण हुए थे। वह अपने नेत्र अभी भली-भाँति मूँद नहीं पाई थी कि उसने एक पुरुष का हाथ अपने मुख पर अनुभव किया। वह भी उसके मुख में खाद्य पदार्थ ठूँस रहा था। जैनब को घृणा-सी हुई, पर उसने विरोध न किया।

यह पुरुष भी चला गया।

सागर-सरिता और अकाल

रात्रि के अंधकार में वायु सनसनाने लगी। ठंड नहीं थी, फिर भी जैनब अपन भीतर तक काँप उठी। वह भूखी मरने को प्रस्तुत थी, पर इस प्रकार संसार में जो उसका स्थान बनने जा रहा है उससे वह एक क्षण को भयभीत हो गई।

उसने सोने का प्रयत्न प्रारंभ किया।

पर जितना अनुभव उसने पा लिया था, वह सब न था। उसने शीघ्र ही एक तीसरे व्यक्ति को अपने मुख में बासी भात भरते अनुभव किया।

पुरुष-अनुभव की इस निरंतरता से जैनब काँप गई। उसने निश्चय कर लिया कि वह इसका विरोध करेगी।

जैनब ने उसे धक्का देने का प्रयत्न किया।

पुरुष एक ओर को गिर गया।

'क्या है ?' प्रेम, धृष्टता, और अधिकार से उसने कहा।

'तू यहाँ से चला जा।'

'नहीं, मैं नहीं जाऊँगा!' उसने जैनब को कस लिया।

'कौन ?' जैनब ने भयभीत होकर कहा।

'मैं, मैं, मैं...।' पुरुष ने उसे अपने से और कसते हुए कहा।

'अरे तुम! या मेरे अल्लाह!'

'जैनब ?'

'हाँ!'

पुरुष के हाथ ढीले पड़ गये। जैनब लज्जा से गड़ गई। वह अपने पति के साथ वेश्या बन रही है। वह थरथरा उठी।

इब्राहीम एक क्षण स्तब्ध रहा। नारी का नशा उसपर से उतर चुका था। वह फिर एकाएक क्रुद्ध हो गया।

उसकी पत्नी और वेश्यावृत्ति! वह सहन नहीं कर सका। वह स्वयं पलटन से भागकर क्षुधा के दलदल में आ फँसा है। ऐसा कि न लौटकर जा सकता है, न आगे ही बढ़ सकता है। और उसकी जैनब और वेश्या! अभी उसके दो मित्र उसके पास होकर गये हैं।

उसके लिए लज्जा का···।

'हरामजादी', क्रोध से काँपकर उसने जैनब पर प्रहार किया। 'मैं तुझे जान से मार डालूँगा।'

जैनब ने प्रहार सह लिया। उसे अनुभव हुआ कि इब्राहीम को प्रहार करने का अधिकार है।

परंतु जब इब्राहीम के प्रहार असह्य हो चले तो वह एकाएक चिल्ला उठी। इब्राहीम ने पीटना बंद न किया।

'क्यों चिल्लाती है ?' निकट निद्रित एक व्यक्ति ने कहा।

'चुप रह !' तनिक दूर से आवाज आई।

'क्या है ?' पठान गफूर नींद में गुर्राया।

पर इब्राहीम ने प्रहार जारी रखे। जैनब को लगा कि वे अब असहनीय हैं। इस कष्ट से बचने के लिए उसमें न जाने कहाँ से शक्ति आ गई। वह उठकर भागी गफूर की ओर।

'अल्लाह के लिए मुझे बचाओ।'

गफूर के हृदय में उस स्वर की पहिचान थी। वह घबराकर उठ बैठा।

'कौन है ?'

इब्राहीम ने जाकर जैनब को गफूर के सामने पकड़ लिया। और मारने लगा।

गफूर ने समझा कि वह कादिर है। उसने इब्राहीम का हाथ पकड़ कर मरोड़ दिया और लात मारकर गिरा दिया।

इब्राहीम क्रुद्ध सर्प की भाँति फुँकार उठा।

'कौन है तू ?'

'मैं इसका शौहर हूँ।'

निकट पड़े व्यक्ति नींद में आँखें मलने लगे।

गफूर को लगा कि यह कोई अन्य व्यक्ति है।

'या अल्लाह, कितने शौहर हैं इसके। एक उस दिन इसका शौहर बन रहा था और एक आज···।'

उसने इब्राहीम का हाथ पकड़कर एक ओर खड़ा कर दिया। 'चुपचाप चला नहीं गया तो हड्डी तोड़ दूँगा। कमबख्तों को रात को भी तो नींद नहीं आती!'

इब्राहीम विवश आग्नेय नेत्रों से अंधकार को फाड़ता चला गया। अपने मित्रों में लौटने का उसका मुख न था। उसने नगर को छोड़ना ही उचित समझा।

जैनब सच वहीं गफूर के निकट पड़ गई। गफूर ने एक-दो करवटें लीं और फिर निद्रा का घर्राटा बज निकला।

जैनब संपूर्णतया जगी थी। उसके साथ जो हो रहा था वह उसकी कल्पना के परे था।

रात्रि अब भी उतनी ही अँधेरी थी। उल्लू का शब्द अब भी सुनाई पड़ रहा था। सियार अब भी बोल रहे थे। पर जो भय जैनब को दो घंटे पहिले सता रहा था वह अब नहीं था। उसे पता लग गया था कि संसार में यदि किसी से सबसे अधिक डरना चाहिए तो अंधकार से नहीं, उल्लू से नहीं, सियार से नहीं, उसे डरना चाहिए मनुष्य से।

वह नेत्र फाड़े अपने इस निष्कर्ष की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देख रही थी।

– १९ –

अनिल अब पूरा गृहस्थ हो चला था। मेहर में जैसे उसने अपना खोया भाग पा लिया हो। सुहासिनी का स्मरण उसे अब नहीं सताता। वह जैसे थी ही नहीं। पर मा! वे याद आती हैं।

उनकी स्मृति में भी उसे अब विशेष रुचि नहीं रह गई है। वह भूल जाना चाहता है, अपने भूत को बिल्कुल भूल जाना चाहता है। वह जिस समय प्रतिष्ठित था, वेतन पाता था, उस समय इतना सुखी नहीं था जितना कि आज है। आज उसे पैसे-पैसे के लिए पसीना बहाना होता है। बेईमानी और चोरी करने को वह प्रस्तुत है; आधे पेट खाने को वह तैयार है।

अनिल ने मेहर का हाथ पकड़कर दबाया। दोनों सूर्य की प्रथम किरणों में मुस्काये और फिर वह मज़दूरी के लिए चल पड़ा।

अनिल का हृदय प्रसन्न था। उसे अनुभव हो रहा था कि अब वह संपूर्ण जीवन में

रह रहा है। अपनी झोंपड़ी से तनिक दूर जाते ही उसने देखा कि जिस भूमि के खंड को नगरवालों ने नसीर को तीन रुपये लेकर दिया था, उसी के निकटवर्ती स्थान पर कितने ही ग्रामवासी आ पड़े हैं।

उन्होंने वातावरण दुर्गंधित कर दिया है। जिधर दृष्टि उठती है, मैला पड़ा नज़र आता है। कफ़ से सभी स्थान भरा हुआ है। एक भी वर्ग गज़ भूमि उसके धब्बों से रिक्त नहीं है।

अनिल को बुरा लगा। ये लोग यहाँ क्यों हैं? इस प्रकार यहाँ आकर गंदगी फैलाने का इन्हें क्या अधिकार है? और म्यूनिसपैलटी या सरकार इनका प्रबंध क्यों नहीं करती?

वह नाक दबाये शीघ्रता से आगे निकल गया। नगर में उसे इतने दिन हो गये थे, इसलिए उसे ज्ञात हो गया था कि बाज़ार जाने का सबसे छोटा मार्ग झोपड़ी से तनिक दूर हटकर ऊजड़ में होकर था। उस ओर ईंट के भट्ठों के अवशेष, एक ताल, दो बाग, तथा खुदरे कुछ वृक्ष ही थे।

अनिल उसी मार्ग से होकर जा रहा था। लंबी ओस से लदी घास दोनों ओर से झुककर पगडंडी को छुपा लेने की चेष्टा कर रही थी। अनिल के पैरों से टकराकर वह इधर-उधर हो जाती थी और पैरों के आगे बढ़ जाने पर पुनः पगडंडी पर अपना अधिकार कर लेती थी।

अनिल का पैर ओस से भींग गया। शीत लगनी चाहिए थी, पर इस ओर अनिल का ध्यान न था। उसके तनमन में मेहर रम रही थी। उसे अब पैसा चाहिए था, भोजन चाहिए था। कैसे ये जीवन के साधन प्राप्त हों, इसकी उसे चिंता न थी।

वह चाहता था जीवित रहना और मेहर के निकट रहना।

अचानक नारी-कंठ से रुदन का स्वर उसे सुनाई पड़ा। वह ठिठका। देखा, मार्ग के बाईं ओर एक छोटे वट-वृक्ष के नीचे एक छोटी-सी भीड़ है।

वह उस ओर घूमा, देखा कि वृक्ष से एक मनुष्य लटक रहा है। गले में रस्सी बंधी है और गर्दन जैसे उस रस्सी के स्थान पर टूट गई है। शीश नीचे झुक गया

है। व्यक्ति के हाथ उसकी बगल में लटक रहे हैं। संपूर्ण शरीर निश्चेष्ट है। वायु के झोंके पर धीरे-धीरे झूल रहा है जैसे कि काठ का टुकड़ा हो।

अनिल पर प्रकट हुआ कि यह लाश है। मनुष्य उसके चारों ओर वृक्ष के नीचे खड़े हैं, पुलिस उपस्थित है। वहीं एक वृद्धा, एक युवती रो रही थीं। एक सूखा-सा बालक भी उसका साथ दे रहा था।

एक व्यक्ति ऊपर चढ़ा। रस्सी काटकर लाश नीचे उतारी गई। अनिल ने अब व्यक्ति के चेहरे को देखा, पहिचान-सा गया। पर उसे निश्चित रूप से न पहिचाना।

तभी उसे केदार दिखाई पड़ गया। पूछा—क्या······?

'महेश ने आत्म-हत्या कर ली है।'

अब अनिल ने महेश को पहिचान लिया। उसकी वही धोती की कच्ची की रस्सी उसके कंठ से बँधी थी। जिसमें बाँधकर वह लकड़ी ढोता था, वह अब उसे बाँध रही थी। समस्त दृश्य उसके नयनों के संमुख फिर गया।

'क्यों?'

'कई दिन से मज़दूरी नहीं मिली······।'

अनिल के प्रश्न का उत्तर जैसे पूर्ण नहीं हुआ था। वह केदार की ओर प्रश्न-वाचक दृष्टि से देखता रहा।

केदार ने कहा—मा है, बहू है, दो लड़के थे; छोटा अभी आज ही रात को मरा है।

अनिल को एक धक्का-सा लगा। यदि वह उस दिन महेश से कम पर मज़दूरी करने को तैयार न हो जाता तो आज उसकी यह दशा न होती। उसे लगा कि महेश की हत्या का उत्तरदायी वह है। उसके बालक की मृत्यु का उत्तरदायी वह है। उसका हृदय काँप उठा। उसने महेश की ओर दृष्टि डाली।

देखा—एक ओर लुढ़का हुआ शीश, बढ़ी दाढ़ी, बिचके कपोल और मृत्यु की तंद्रा में झुकी हुई पलकें।

वह भयभीत हो गया। नहीं, वह कदापि ऐसे परिणाम का उत्तरदायी नहीं हो सकता।

नारियों का प्राण-विदारक चीत्कार उसने सुना। निकट के वृक्षों से प्रतिध्वनित होकर वह उसकी आत्मा में और भी गहरा धंसने लगा। उपस्थित जनों के चेहरों से टकरा वह मृत्यु को घोल-घोलकर जैसे उस वातावरण में भरने लगा।

वह वहाँ ठहर न सका। शीघ्रता से नगर की ओर चल दिया। महेश के मृत शरीर पर जो विवशता की भावना थी वह जैसे उसे जड़ से झकझोरे देती थी। वह उससे दूर भागना चाहता था पर महेश था कि मरने पर और भी अधिक उसका भाग बन गया था।

वह बाज़ार में पहुँच गया। चहल-पहल पूर्णतया अभी प्रारंभ नहीं हुई थी। जमील आया, खलील आया, उमेश आया और फिर बातें चल निकलीं।

'महेश ने आत्महत्या कर ली।' अनिल ने सूचना दी।

'जान पड़ता है, वही मुझे भी करना पड़ेगा।' जमील ने अपने हाथ की रस्सी की ओर ध्यान से देखकर कहा। जैसे कि वह उस रस्सी की शक्ति परख रहा हो कि वह उसे फाँसी लगाने में कहाँ तक सहायता दे सकती है।

अनिल काँप उठा।

'मरना तो एक दिन अवश्य है!'

'हाँ, पर यह भी कोई मरना है, कीड़ों की मौत है।'

'क्या करोगे तो?'

'करना क्या है?'

'जी में आता है कि गले में पत्थर बाँधकर ताल में गिर पड़ूँ।'

'मरने की यह रीति भी बुरी नहीं है। मरने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।' उमेश ने अपनी पुरानी, बीसों गाँठोंवाली रस्सी की ओर देखकर कहा।

'ऐसा न करना भई।'

'परंतु...।'

बात पूरी न हो पाई थी कि सबने टाल में घुसता गाहक देखा। उठकर सब-के-सब उस ओर चल दिये।

अनिल ने सोचा—उनका जीवन कैसा विचित्र है, अभी एक क्षण पहिले कितने

मित्र थे, परंतु अब एक-एक पैसे पर एक दूसरे का गला काटने पर उतारू हो जायँगे।

उसे लगा कि वे लोग केवल अपने भाग्य के आश्रय जी रहे हैं। जिस दिन भाग्य के शिखर पर से कोई डगमगाती चट्टान निकलकर जीवनधारा में गिर पड़ेगी, और उसका बहाव रोक देगी, उसी दिन उनका जीवन समाप्त हो जायेगा।

— २० —

इब्राहीम् उस स्थान से चला तो गया, पर उसके मन में एक तूफ़ान उठ रहा था। यह घटनाएँ उसकी समझ में नहीं आ रही थीं। 'वह कादिर से मिला। कादिर ने एक औरत को लूटने की योजना में उसे संमिलित कर लिया। वह औरत उसकी बीबी जैनब निकली।

एक ग़ैर आदमी ने उसे उसके शौहर के विरुद्ध बचाया। 'इसके कितने शौहर हैं?' ग़फ़ूर का यह वाक्य उसके मस्तिष्क में इधर-उधर टकराकर भीषण प्रति-ध्वनि उत्पन्न करता रहा। और वह जैनब उसकी बीबी है।

उसने सोचा था कि वह खड़गपुर से ग़ायब हो जायेगा। अब विचार आया कि कहाँ जायेगा? यह कादिर मिल गया है। दो-चार यार और हैं। भोजन के अभाव में हँसी-मज़ाक में समय कट जाता है। परंतु इसके आगे एक विशाल परंतु था।

परंतु कादिर क्या जैनब को पहिचानता था? न पहिचानने का कोई कारण नहीं।

उसके संमुख एक नवीन क्षेत्र विचार के लिए खुल गया। तो कादिर ने जैनब के विरुद्ध यह षड्यंत्र रचा? यदि कादिर जैनब को पहिचानकर उसके पास गया है, और उसे भेजा है तो उसके लिए अब कादिर को मुँह दिखाने का स्थान नहीं। कादिर ने ऐसा किया क्यों?

रात्रि के अंधकार में वह धीरे-धीरे चला जा रहा था। मार्ग में मुर्दों की भाँति निश्चेष्ट क्षुधा-पीड़ित सो रहे थे। उनमें से सभी सूर्य की किरण छूने से जाग पड़ेंगे यह नहीं कहा जा सकता।

इब्राहीम के मन में उठा कि वे सौभाग्यशाली होंगे जिनका सोना मौत में बदल जायगा। यदि वह मर गया होता तो आज उसके प्राणों को इतना कष्ट न होता।

यह औरत जो इस समय जैनब है दिन में बिल्कुल जैनब-सी नहीं लगी। भूख और रोग ने उसे इतना बदल दिया है कि उसका पति भी उसे पहिचान नहीं पाया।

इब्राहीम के मन में आशा उठी कि उसे कादिर से लजाने या भागने की आवश्यकता नहीं। जब उसी ने नहीं पहिचाना तो कादिर को क्या पता होगा कि यह जैनब है।

जब कादिर को पता नहीं तो उससे लजाने की आवश्यकता क्या? नेकनामी और बदनामी वहीं तक है जहाँ तक दुनिया विभिन्न घटनाओं और व्यक्तियों में संबंध स्थापित कर सकती है।

उसे भयभीत होने का कारण नहीं। जैनब किसी के द्वारा पहिचानी नहीं गई, यह अच्छा ही है। वह अब वहीं रह जाने की बात तय कर निश्चिंत हो गया। पर मित्रों के पास तुरंत लौट जाने का उसका साहस न हुआ।

एक कंप उसके शरीर में दौड़ गया। उसे लगा कि वह वास्तव में अत्यंत दुर्बल हो गया है। उसने अपनी कलाई पकड़ी; ध्यान लगाकर स्पर्श किया, कठोर सीधी हड्डियाँ। मांस जैसे वहाँ रह न गया था। उँगलियों में उसने अनुभव किया कि गाँठों के बीच का मांस घुल गया है। हथेली की नसें कठोर हो गई हैं मानो कि भोजन माँगते-माँगते उनका गला थककर बैठ गया हो।

इब्राहीम ने अपने मुँह पर हाथ फेरा। एक समय था कि वह बस्ती में प्रायः सबसे सुंदर था। उसके कपोलों की लालिमा से युवतियाँ ईर्ष्या करती थीं। परंतु!

आज इस रात्रि के धमकते अंधकार में उसके हाथ कपोलों के मांस पर नहीं, कठोर उभरी हड्डियों पर अटक गये। मन में प्रश्न उठा कि वह अचानक इतना दुर्बल कैसे हो गया!

भोजन के अभाव पर उसका ध्यान नहीं गया। प्रश्न बार-बार गूँजा कि वह दुर्बल कैसे हो गया?

और फिर एक भय उसके प्राणों में समा गया। जब मनुष्य दुर्बल होता है तो

रोग सताते हैं, और जब वह रोगी होता है तो रोगों की विशेष प्रकृति है कि वे उसे उस गहिरे ताल के तट पर टहलाने ले जाते हैं जिसे जीवधारी मौत के नाम से पुकारते हैं। इब्राहीम ने अनुभव किया कि वह उस ताल के किनारे टहल रहा है।

मार्ग बहुत ही संकुचित और ऊबड़-खाबड़ है। पैर जमाने को कठिनता से स्थान है। वह बकरी या बंदर नहीं जो अधिक समय तक वहाँ टहल सकेगा।

उसने दोनों ओर देखा। घोर अंधकार था। उसे लगा कि एक ओर ऊँची पहाड़ी है जो अपनी उच्चता के कारण अँधेरी है, और दूसरी ओर गहरा ताल है जो अपनी गहराई के कारण अँधेरा है।

उसे अनुभव हुआ कि तनिक-सी चूक हुई और वह ताल में जा रहेगा। इस विचार ने उसके पैर डगमगा दिये, हृदय काँपा, और गिर न पड़े, इस भय से जहाँ था वहीं धीरे से बैठ गया। जिस ओर पहाड़ी थी उस ओर हाथ फैलाकर कोई सहारा पाना चाहा, पत्थर के स्थान पर उसका हाथ एक सोते मनुष्य पर पड़ा, जिसका शरीर रात्रि के शीत में ठंडा हो रहा था।

उस शरीर में, इब्राहीम ने अनुभव किया कि प्राण नहीं हैं। वह घबरा उठा, चीखा और उठकर भागा। चार कदम दौड़ा होगा कि एक दूसरे मनुष्य से टकराकर तीसरे के ऊपर गिर पड़ा।

जिस कंकाल के ऊपर वह गिरा, उसकी अस्थियों की चरचराहट उसने स्पष्ट सुनी। उसे लगा कि आघात से उसकी हड्डियाँ टूट गई हैं। आहत मनुष्य जागा। चाहा कि इब्राहीम को अपने से दूर फेंक दे, पर असमर्थ रहा। चिल्लाना चाहा, आवाज़ न निकली, भयभीत एक घर्राटे का स्वर उसके कंठ से निकलने लगा। उन रातों बस्तियों में भूत फिरा करते थे। आहत ने इब्राहीम को उन्हीं में से एक समझा।

इब्राहीम भी डरा और उसके शरीर से नीचे लुढ़क गया। मट्टी का स्पर्श करते ही एक कँपकँपी उसके शरीर में दौड़ गई। सिर में दर्द होने लगा। और दशहरे के दिन शरीरस्थित पटाखों के विस्फोट से जिस प्रकार कागज़ का रावण काँपता है, उसी प्रकार इब्राहीम काँप उठा।

उसने मस्तिष्क पर संयम लाने की चेष्टा की। वास्तविक परिस्थिति को मस्तिष्क से पकड़ लेना चाहा, पर वह जैसे बारंबार फिसल जाती थी।

इब्राहीम बुरी प्रकार काँपने लगा। एक धड़कन उसे ललाट के निकट अनुभव हुई। लगा कि मुख सूख रहा है और नयनों से ज्वाला निकल रही है। इस पीड़ा के बीच में उसे अनुभव हुआ कि उसे बुखार हो आया है ?

सेना में जो उसे बलात कुनैन दी जाती थी वह मौत को दूर रखने के लिए। उसे लगा कि फौज में मृत्यु का व्यवसाय करने पर भी वह यहाँ से अधिक सुरक्षित था।

– २१ –

कादिर और तजंमुल ने दूसरे दिन इब्राहीम को ज्वर में बेहोश पड़ा पाया। उन्होंने उसे जगाया, पर वह कुछ समझा नहीं। बहुत प्रयत्नों के पश्चात् जब कुछ फल न निकला तो कादिर को क्रोध आ गया। उसने लात मारकर इब्राहीम को एक ओर सरका दिया। बोला—क्या इसके बाप के नौकर हैं जो यहाँ बैठे रहेंगे।

इब्राहीम कुछ बड़बड़ाया और बुरी तरह काँपा।

तजंमुल ने कहा—पड़ा रहने दो। इसके पीछे यहाँ बँधे थोड़े ही रहेंगे। ऐसा कमजोर था तो क्यों झख मारने गया था ?

कादिर के नयनों में एक शैतानी चमक आ गई। उसने इब्राहीम के मुख को ध्यान से देखा, पर जो वह वहाँ खोजना चाहता था वह उसे न प्राप्त हुआ। इब्राहीम का मुख सूखा, पीला और भयानक हो रहा था। साँस जोर से चल रही थी, और नयनों से पानी रिस रहा था।

तजंमुल ने कहा—छोड़ो भी, कौन मरा जाता है ?

कादिर ने इब्राहीम की ओर व्यंग्य दृष्टि फेंकते हुए कहा—अगर मर भी जायेगा तो दुनिया कौन एक हूर कम हो जायेगी ? वह तो अल्लाह के फजल से अभी जिंदा है।

इसके पश्चात् दोनों मित्र इब्राहीम को छोड़ लंगरों पर भोजन लेने चल दिये। इब्राहीम मूढ़ता भरी दृष्टि से उनकी ओर देखता रहा।

वह उन्हें पहिचान तो रहा था, पर इस पहिचान को अस्तित्व के ऊपरी धरातल पर न ला पा रहा था। इसके बोलने की शक्ति सुरक्षित होने पर भी मस्तिष्क और उसके बीच का संबंध जैसे सो गया था।

सरकारी रसोई में जब भोजन वितरण होने लगा तो कादिर ने अपना मटकैना आगे कर दिया। भात बाजरा, पत्ते डंठल, कुछ दाने दाल पानी के साथ मिलकर एक विचित्र खाद्य बन गया था। मनुष्य के शरीर में जिस प्रकार जल पचहत्तर प्रतिशत होता है लगभग उसी अनुपात में कुछ खाद्य में भी बर्त्तमान था।

अपना भाग लेने के पश्चात् तजंमुल ने इब्राहीम का बर्तन आगे बढ़ाया।

वितरक ने प्रश्नवाचक दृष्टि से तजंमुल की ओर देखा। तजंमुल ने दाढ़ी हिलाई और उसको दृष्टि का उत्तर दृष्टि से ही दिया।

तजंमुल की दृष्टि कह रही थी, तुम कैसे मूर्ख हो। उस मटकैने को पहिचानते नहीं। प्रतिदिन इसी में इब्राहीम अपना भाग लिया करता था।

उसकी इस भर्त्सनापूर्ण दृष्टि का वितरक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह अगले मनुष्य की ओर बढ़ गया। तजंमुल ने इब्राहीम का मटकैना हिलाते हुए उसके सामने कर दिया। बोला—हमारा साथी नहीं आ सका, उसके लिए दीजिए।

'क्यों नहीं आ सका?'

'बीमार है।'

'बीमार को भोजन नहीं चाहिए, औषधि चाहिए।' और वितरक आगे बढ़ गया।

कादिर और तजंमुल मारवाड़ियों के लंगर पर पहुँचे। वहाँ वितरक सरकारी वितरक की भाँति स्वास्थ्य शास्त्र का पंडित न था। उसने इब्राहीम का भाग उन लोगों को दे दिया।

दो अन्य स्थानों से थोड़ा-थोड़ा भोजन एकत्रित कर दोनों एक वृक्ष के नीचे भोजन करने बैठे।

तजंमुल ने कहा—इब्राहीम के लिए कुछ रखना चाहिए।

कादिर बोला—आवश्यकता क्या है? उसे भोजन की नहीं औषधि की आवश्यकता है।

तजंमुल ने कादिर की बात की जैसे व्याख्या की—'रोटियाँ उसे हजम नहीं होंगी। चने गरिष्ठ हैं, और बाजरे से अतिसार का भय है।'

दोनों मित्रों ने, जो तीनों के लिए पाया था, खाया। अल्लाह का शुक्रिया अदा किया।

तजंमुल ने कहा—इतना भोजन ज़रूरी ही था। अभी इब्राहीम को अस्पताल ले जाना होगा। बदन में दम भी चाहिए।

कादिर मुँह बिचकाकर बोला—यह छटांक भर खाकर बदन में दम आ जायेगा? कैसी बातें करते हो?

तजंमुल बोला—चलो, अकेला पड़ा होगा।

'ठहरो भी, ऐसी जल्दी क्या पड़ी है? कौन मरा जाता है। उधर कुछ अच्छी सूरतें हैं, ज़रा मन बहलाव हो जायेगा।'

तजंमुल ने एक क्षण इब्राहीम को कल्पना में देखा, ज्वर में बेसुध पड़ा, और फिर उसकी दृष्टि कादिर के मुख पर होकर अच्छी सूरतों की कल्पना पर फिसल गई।

बोला—उसे मरना ही है तो हम क्या बचा लेंगे!

दोनों मित्र क्षुधाहत रूप की ओर चले। सोच रहे थे कि उनके शरीर अधिक सशक्त क्यों नहीं हुए।

–२२–

जैनब कुछ क्षण अपने रोग की पीड़ा, आघातों की वेदना और मानसिक यातना से काँपती रही। इब्राहीम को मृत कल्पना कर उसे एक संतुष्टि थी, पर अब जब वह जीवित मिल गया था, तो प्रथम धक्का समाप्त होने के पश्चात् उसे प्रसन्नता ही हुई थी।

अस्पष्ट रूप से उसे वे घुले-मिले क्षण स्मरण आ गये जब इब्राहीम अल्लाह का उसे दिया वरदान था। उसके सुरूप शौहर से सभी को ईर्ष्या थी। सभी उसके भाग्य की प्रशंसा करते थे। अब उसे विश्वास न होता था कि वे क्षण कभी थे भी। पर उसका इब्राहीम लौट आया है।

उसे लगा कि वह उठे, जाये, इब्राहीम को खोजे और उसे हृदय से लगाकर

रो पड़े। पर अंधकार में उसकी सीमाएँ थीं और वह विवश थी। मनुष्य बन में काष्ठखंडों की भाँति इधर-उधर बिखरे थे। उसकी दुर्बलता ने उसे वहीं भूमि से बाँधे रखा। वह उठी नहीं, गई नहीं, इब्राहीम को हृदय से नहीं लगाया, वह लेटे-लेटे रोती रही। एकांत में मिलन के आँसू बहाती रही।

स्वामी के निकट उसे लज्जित होना चाहिए इस ओर उसका ध्यान न गया। लाज आनंद के उफ़ान में डूब गई। वह रोती रही और उन्हीं आँसुओं के बीच उसके कंठ से घर्राटे का स्वर निकलने लगा। उस अत्याचार, वेदना, यत्रंणा, रोग, शोक और अविकसित आनंद से भरी रात्रि में यदि कोई वस्तु अखंड रूप से जाग रही थी तो वह यही घर्राटे का स्वर था, जो प्रत्येक जीवित मानव के कंठ से निकल रहा था। जीवित और मृत का यही अन्तर था। रात्रि इसके प्रहार से थर्रा रही थी।

जैनब ने इस स्वर को स्वयं जन्म दिया और फिर उसी में खो गई।

— २३ —

प्रातःकाल जैनब इब्राहीम को खोजने चली। स्वर से उसने उसे पहिचाना था। भोजनाभाव ने व्यक्तियों के मुख में इतना परिवर्तन कर दिया था कि सरलता से उन्हें पहिचानना कठिन था।

इब्राहीम को मुख फाड़े, शीत से काँपते पड़ा पाकर भी जो जैनब ने नहीं पहिचान लिया, उसका प्रमुख कारण यह था कि उसने उसको ओर ध्यान से देखा नहीं। जो पुरुष रात्रि को उसके प्रति वैसा व्यवहार करने पर उतारू था वह इतना शीघ्र इस दशा को पहुँच जायेगा, इसकी वह कल्पना न कर सकी थी।

वास्तविक इब्राहीम को पीछे पड़ा छोड़ नर-कंकालों के बीच उसे दूर-दूर तक खोज आई। गूदड़ों में लिपटे कंकाल वृक्षों के नीचे अभी पड़े थे। जो उठ गये थे, वे काँप रहे थे, खाँस रहे थे। और थूक-थूककर मक्खियों को निमंत्रण दे रहे थे।

जैनब ने एक लेटे मनुष्य पर दृष्टिपात किया। वह मुख फाड़े खर्राटे के साथ सो रहा था। उसकी बगल में एक सात वर्ष की लड़की पड़ी थी, एकदम शांत मौन।

लड़की की इस स्तब्धता ने ही जैनब को अपनी ओर आकर्षित किया। उसके कंठ में स्वर क्यों नहीं है। वह निकट गई।

शरीर निःस्पंद था। एक गंभीर भाव उसके मुख पर आ गया। वह दार्शनिक बन गई। मनुष्य क्या है? पानी का बुलबुला है। साँस आई आई, न आई। वह आगे बढ़ गई।

एक ओर कुछ गूदड़ कोई छोड़ गया था। जिसमें सिलाई अत्यंत अधिक थी। वास्तविक दशा यह थी कि बिनाई और सिलाई के तारों की संख्या में विशेष अंतर न रह गया था। मैल ने जैसे घोंटकर उसके प्राण निकाल दिये थे। उसका शरीर कट-कट कर, विखंडित हो झालर बन रहा था।

जैनब ने देखा कि वह गूदड़ खाली गूदड़ नहीं है, उसमें कुछ छिपा है। उसे लगा कि एक बालक का शीश वह उसमें देख पाई है। उसके प्राणों में एक सिहरन दौड़ गई। उसने मुख फेर लिया। उसके रोगी पैर जितनी शीघ्रता से उसे वहाँ से ले जा सकते थे, वहाँ से चली गई।

वह इधर-उधर घूमी—पर उसका प्रिय इब्राहीम उसे न मिला। सोचा—मर्द बच्चा है, इतने समय सोता थोड़े ही पड़ा होगा। और पता नहीं रात्रि में ही वह कितनी दूर निकल गया हो?

उसने उसके प्रति अच्छा व्यवहार नहीं किया। वह चुपचाप पिट क्यों नहीं ली। रक्षा के लिए क्यों दौड़ी? वह और पति इस भोजनाभाव को एक दूसरे के प्रेम में भूल जाते, एक दूसरे का स्पर्श करते शांति-पूर्वक मृत्यु के अंधकार में उतर जाते।

वास्तव में उससे बड़ी भूल हो गई। ऐसी भूल कि जिसका समाधान असंभव दिखाई देता है।

वह इधर-उधर घिसटती रही। सूर्य का प्रकाश अंधकार में छिपी दयनीयता को हाथ पकड़कर बाहर खींच लाया—अभाव की आत्मा ने उसमें प्राण डाल दिये, जिससे वह चल-फिर निकली।

जैनब एक चक्कर काट जहाँ से चली थी उसी ओर लौटी। अपनी असफलता पर वह दुखित भी थी, पर भीतर ही भीतर जैसे कुछ संतुष्ट भी। यदि वह मिला तो वह क्या करेगी। उसके दिन अब गिने-चुने हैं। यह मिलन उनकी संख्या पर क्या कोई प्रभाव डाल सकेगा?

वह लँगड़ाती जा रही थी कि कादिर और तजमुल एक रोगी के निकट बैठे दिखाई दिये। कादिर को देख वह ठिठक गई। कादिर ने जिस दृष्टि से जैनब की ओर देखा उससे उसे विश्वास हो गया कि रात्रि को जो कुछ उसके साथ घटा है उससे कादिर अनभिज्ञ नहीं है।

जैनब ने चाहा कि घूमकर कादिर को बचा जाये। पर ऐसी चेष्टा में विशेष सफलता की आशा न थी।

उसने एक संतोष की साँस ली। देखा कि वे दोनों उठकर दूसरी ओर जा रहे हैं।

मन में प्रश्न उठा—वह कौन है जो उनकी सहानुभूति का पात्र है? उसने इस रोगी को भली-भाँति देखा नहीं। क्या यह उसका इब्राहीम हो सकता है? उसका हृदय ज़ोर से धड़का।

मन ने कहा—यह असंभव है। रात्रि में वह पूर्णरूपेण स्वस्थ था। अनुभव ने तर्क किया—मनुष्य का शरीर है, इस दुर्बलता के बीच उसकी मशीन बिगड़ने में क्या देर लगती है? निश्चय किया कि एक बार देख लेने में हानि ही क्या है?

जैनब का साहस रोगी के निकट ठहरकर उसे देखने का न हुआ। वह उसके पास होकर निकल गई, पूर्ण रूप से उसका अवलोकन करती। एक शंका उसमें उत्पन्न हो गई। इसका इब्राहीम होना असंभव नहीं।

वह लौटी और उसके घुटने के निकट आकर खड़ी हो गई। उसके चेहरे की ओर एक टक देखती रही। देखा कि व्यक्ति के नयनों से पानी रिस रहा है। साँस वेग से चल रही है, और सूखा चेहरा तमतमाया हुआ है।

वह नीचे झुकी, दोनों के नेत्र मिले।

वह दृष्टि जैनब को धोका न दे सकती थी। बादलों के पीछे होने पर भी जिस प्रकार सूर्य को पहिचानने में भूल नहीं होती उसी प्रकार जैनब ने इब्राहीम को पहिचान लिया। उसके नयनों में अश्रु भर आये। पैरों में जैसे शक्ति न रही। वह उसी के निकट बैठ गई।

इब्राहीम की कर्म और ज्ञानेन्द्रियों के बीच संपर्क जो टूट-सा रहा था एकाएक जुड़ गया। उसने अपने हाथ जैनब की ओर बढ़ाते हुए कहा—'जैनब !'

और इसके साथ ही जोर से काँप उठा। जैनब ने उसके दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़ लिये और उन्हें आँसुओं से भिगोने लगी।

इब्राहीम में जो जुड़ा था वह क्षणिक था। वह स्तब्ध पड़ा रहा। आँसू चुपके-चुपके नयनों से बहते रहे। जैनब ने उसके हाथों को गोद में लेकर बलपूर्वक शरीर से चिपटा लिया और उसके ललाट पर हाथ फेरने लगी। इसी बीच में इब्राहीम जोर से काँपा। जैनब घबरा गई।

'क्या जूड़ी आई है ?'

इब्राहीम कोई उत्तर न दे पाया। विस्फारित नेत्रों से जैनब की ओर देखता रहा। ज्यों-ज्यों दिन चढ़ा जैनब का कंप भी बढ़ गया।

जैनब अपने शरीर से जो वस्त्र उतार सकती थी वह उसने अपने पति पर डाल दिये। परंतु उस क्षीण गूदड़ में उस भीषण शीत को जीत लेने की शक्ति न थी। इब्राहीम का कंप और भी वस्त्र के लिए चिल्ला रहा था। जैनब की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। यदि अंधकार होता तो स्वयं वस्त्र का कार्य करने की चेष्टा कर देखती।

वह सोचती रही। वस्त्र कहाँ मिलेगा यह सुझाई न पड़ता था। तभी एकाएक जैसे किसी ने प्रकाश दिखा दिया हो। वह उठी और चल दी। इब्राहीम ने दया की भीख माँगती दृष्टि से जैनब की ओर देखा। मानो कि वह सोच रहा हो कि जैनब उसे छोड़कर बिलाने जा रही हो।

चेष्टा करने पर भी इब्राहीम की जिह्वा न हिली। शरीर ने जोर का झटका खाया। जैनब पति की असमर्थता पर रो दी। पीछे फिरकर कहा—'घबराओ नहीं अभी आती हूँ।'

और इब्राहीम को काँपता छोड़ एक पैर को दूसरे के पीछे घसीटती चलने लगी। पति की असमर्थता उसकी शक्ति बन गई थी। जैनब चलती गई। शक्ति का कण-कण बटोरकर वह इस कार्य में लगाने लगी।

वह जाकर उसी गूदड़ की गठरी के निकट खड़ी हो गई जिससे भयभीत होकर अभी लौट गई थी।

इब्राहीम का शीत मिटाने के लिए वस्त्र चाहिए। यही एक वस्त्र वह जानती है।

उसने अपने चारों ओर देखा और चुपके से उस गठरी के पास बैठ गई। हृदय एक बार काँपा, शरीर हिला। उसने दृढ़ता धारण की और उस गठरी का स्पर्श किया। अपनी ओर खींचा और परतों को खोल डाला। उसका अनुमान सत्य था। ढाई-तीन वर्ष की लड़की का शरीर उसमें लिपटा हुआ था।

परंतु उस प्रिय इब्राहीम के लिए वस्त्र की आवश्यकता है। इब्राहीम भविष्य में मरेगा या बचेगा इस ओर उसका ध्यान नहीं। वह तो वर्त्तमान में उसका कंप देख रही है और इसी कंप को मिटाना चाहती है। उसने कन्या के शरीर को झाड़ी के पीछे उलट दिया और गूदड़ उठाकर वहाँ से चल दी। वह ऐसे भाग रही थी जैसे कि उसने बड़ी भारी चोरी की हो। परंतु चोरी! चोरी क्या, इब्राहीम के लिए वह सब कुछ कर वकती है।

इब्राहीम के ऊपर गूदड़ी डाल वह उसी के निकट बैठ गई और दोनों हाथों से यथाशक्ति उसके काँपते शरीर को दबाये रही।

सूर्य की किरणों में गर्मी आ गई। उसे लगा कि इब्राहीम को पसीना आ रहा है। आशा हुई ज्वर उतर जायेगा। इब्राहीम के मुख की ओर उसने देखा, चाहा कि इब्राहीम कुछ बोले। पर इब्राहीम की जीभ को जैसे लकवा मार गया हो। बोलने की शक्ति जाती रही। वह अपने भीतर घुट रहा था।

जैनब में पति की यह विवशता काँटे की भाँति चुभ रही थी। जैनब को खोजते गफ़ूर ने उसे वहाँ पाया। एक मुट्ठी उबाला बाजरा उसने एक पत्ते पर उसके सामने रख दिया और फिर एक ही चलती दृष्टि से रोगी और परिचारिका दोनों को देखता वहाँ से चला गया।

जैनब ने बाजरे की ओर देखा, फिर अपने इब्राहीम की ओर। वह बाजरा उसे जीवित रहने की शक्ति प्रदान करेगा। इच्छा हुई कि इब्राहीम को कुछ खिलाये। पर जिस रोग ने उसका बोल बंद कर दिया, उसमें खिलाना अत्यंत हानिकर होगा।

विचार उठा कि गफ़ूर ने इब्राहीम को मारा है। कल्पना ने शीघ्र ही उसके रोग का संबंध गफ़ूर से जोड़ दिया। यदि गफ़ूर रात्रि को उसपर प्रहार न करता तो उसका इब्राहीम इस प्रकार बीमार न पड़ता। रात्रि का समय था, ठौर-कुठौर लग गया होगा। उसने इब्राहीम के रोग का समस्त उत्तरदायित्व गफ़ूर पर डाल दिया।

उसने बाजरे की ओर देखा। वह अन्न प्राणदाता न रहा। उसका आकर्षण तिरोहित हो गया। वह उसे गफ़ूर ने दिया है। गफ़ूर जो उसके पति की मृत्यु का कारण हो सकता है।

इब्राहीम की मृत्यु की कल्पना कर वह काँप उठी। उसे लगा कि वह बाजरा जैसे जहर में बुझा है। उसके स्पर्श करते ही उसका अंतर भस्म हो जायेगा।

नहीं, वह गफ़ूर की दी हुई वस्तु छुएगी नहीं। नहीं, कदापि नहीं छुएगी। उसके नेत्र बाजरे को देख जल उठे। उसने पत्ते को उठाया और बाजरे समेत अपने से दूर फेंक दिया।

इब्राहीम ने जैनब का कृत्य देखा; उसका कंकाल ज़ोर से हिल उठा। जैनब ने संपूर्ण बल लगाकर उसे दबा लिया।

— २४ —

कादिर और तजंमुल जब मन बहलाकर इब्राहीम की ओर लौटे तो उसे गूदड़ों से ढँका और जैनब द्वारा परिचारित पाया।

कादिर ने जैनब की ओर ध्यान से देखा। उसकी इच्छा कुछ हल्के शब्द प्रयोग करने की हुई। दोनों के नयन मिले और इसमें जैनब की दृष्टि कादिर की दृष्टि को पराजित कर गई। कादिर को अनुभव हुआ कि इस समय जैनब ऊँची है और वह नीचे। जैनब को नीचे खींचने की चेष्टा में उसने अपने को ही नीचे गिराया है। एक आतंक उसपर छा गया।

जैनब में नारी नहीं, शासिका उन्होंने देखी। अल्लाह का वह हिस्सा जो मा बनकर इंसान के ऊपर उतर आया है उसे वहाँ दिखाई पड़ा। उसकी अनपढ़ आत्मा भीतर तक पानी हो गई। उसने तजंमुल की ओर देखा और तजंमुल ने उसकी ओर, फिर दोनों ने जैनब की ओर, जैसे कि वे उससे आज्ञा-याचना कर रहे हों।

जैनब उन दृष्टियों से हिली नहीं। वह परिस्थिति की स्वामिनी वहाँ बैठी रही। उसके दुर्बल अंक में रोग असमर्थ पति को झकझोरता रहा।

तजंमुल और कादिर नीचे दृष्टि किये कुछ क्षण वहाँ बैठे रहे, जैसे कि अपने गुनाहों का पश्चात्ताप कर रहे हों और इब्राहीम की बीमारी में अपना भविष्य देख रहे हों।

दोनों पक्ष कुछ क्षण शांत बैठे रहे। होनी की अनिवार्यता एवं अंतिम विवशता के प्रति एक साथ नतमस्तक रहे।

फिर जैनब बोली—क्या करना चाहिए?

कादिर को लगा कि जहाँ से प्रश्न आया है उत्तर भी वहीं से आना चाहिए। उसने जैसे अपने पर अधिकार खो दिया था।

तजंमुल संभला रहा। उत्तर दिया, 'यहाँ इसे रखकर हम लोग कुछ नहीं कर सकते। अस्पताल ले चलना चाहिए।'

जैनब के नयनों के संमुख घूमा अस्पताल का वह द्वार जिससे वह बाहर निकाल दी गई थी। उस दिन से फिर वह उस ओर नहीं गई। अब इब्राहीम को लेकर वहाँ जाना पड़ेगा।

पर इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही न था। वह अपने को जो साध रही थी वह अब धीरे-धीरे फिसलने लगी। उसे लगा कि परिस्थिति में विशेष आशा नहीं है। बोली, 'जैसी तुम लोगों के जी में हो, करो।'

कादिर ने जागकर कहा—अस्पताल चलना चाहिए।

इसके पश्चात् उन्होंने इब्राहीम को बैठाना चाहा। चाहा कि सहारा देकर तीन फर्लांग स्थान चला ले जायें, पर इब्राहीम से बैठा नहीं गया, जैसे कि उसके शरीर की शक्ति चुस गई हो।

उसे ले जाने का कोई उपाय उनकी समझ में न आया। इतनी शक्ति किसी में न थी जो उसे पीठ पर लादकर ले जाता। किसी प्रकार निरंतर प्रयत्न के पश्चात् वे उसे खड़ा कर पाये, और फिर उसे खींचते-घसीटते-साधते अस्पताल ले चले।

अस्पताल के द्वार पर उन्होंने उसे डाल दिया। इतने परिश्रम से इब्राहीम के

भीतर जो सुधि थी वह एक दम जाती रही। वह बेहोश भूमि पर पड़ गया। साँस भयानक रीति से चलने लगी।

जैनब ने शरीर को वस्त्र से ढँक दिया। उसका मुख आशंका से पीला पड़ गया।

डाक्टर से कादिर और तजंमुल ने रोगी को अस्पताल में स्थान देने की प्रार्थना की।

डाक्टर ने सूचना दी कि अस्पताल में स्थान नहीं है।

'आप एक नज़र उसे बाहर ही देख लीजिए।'

'जब उसे अस्पताल में नहीं रख सकते तो देखने से लाभ ही क्या है? कल उसे सुबह अस्पताल के समय पर लाओ।'

'उसकी हालत बहुत नाज़ुक है।'

'हम लोग लाचार हैं।'

कादिर और तजंमुल ने अपनी असफलता जैनब को सुनाई। उसने लंबी साँस ली और काँपते हुए इब्राहीम की ओर देखा। उसकी आत्मा सो रही थी और शरीर रोगवश उछल-उछल पड़ता था।

जैनब को उसके पास छोड़ वे लोग भोजनार्थ चले गये।

जैनब के लिए वहाँ कोई काम न था। इब्राहीम में जीवितों के साथ जो साम्य था वह यहाँ आकर जाता रहा था। वह काठ की भाँति निश्चेष्ट पड़ा था। उसके नयनों में कोई स्वस्थ चेष्टा दृष्टिगोचर नहीं होती थी।

पर जैनब उठे तो कैसे उठे। इब्राहीम का शरीर उसे अपने साथ अत्यंत सूक्ष्म पर दृढ़ बंधन से बाँधे था और इस बंधन का सबसे दृढ़ तार था यदि इब्राहीम अच्छा हो गया तो!

इसी अच्छा हो जाने की बाट जोहती वह उस स्थान पर बैठी थी और अपने में घुमँड़ रही थी। कल्पनाओं और जीवन-विभीषिकाओं से जब वह भयभीत हो गई तो उसने दृष्टि बाहर की ओर डाली। पाया कि इब्राहीम ही एक नहीं है जो अस्पताल से बाहर पड़ा है, और भी पांच-सात हैं जो उस स्वर्ग का द्वार खटखटा रहे हैं।

उनमें से एक तो बुरी प्रकार चीख-चीख उठता है जैसे कि उसके अस्तित्व में फोड़ा हो गया हो और उसमें पीब चभके मार रही हो।

समय बीतता गया। इब्राहीम धीरे-धीरे शांत हो गया जैसे कि उसका रोग उसे छोड़ गया हो।

जैनब ने आशा से उसका मुख खोला और फिर ढँक दिया। उसे अनुभव हुआ कि जो शांति उसके मुख पर आ रही है वह अखंड शांति का ही एक भाग है। वह डर गई।

मानव-शरीर की शक्ति-सीमा होती है। जैनब बिना तोला भर भी खाये इतने परिश्रम में अपनी स्नायविक शक्ति द्वारा सधी थी। पर वह उत्तेजना जैसे अब थक गई थी। उसके साथ जैनब का शरीर भी थक गया था। शरीर की थकन से उसे अचानक अपने जोड़ों में तीव्र पीड़ा अनुभव होने लगी।

मन में विचार उठा कि जब वह स्वयं ही मर रही है तो इब्राहीम की देख-रेख कैसे करे। वह इतना बीमार है, दुःख भोग रहा है; अच्छा होता कि शीघ्र मर जाता। वह इस बंधन से मुक्त होती।

उसने यह सोचा तो, पर वहाँ से उठने की उसकी इच्छा न हुई। विचार आया कि कादिर वहाँ आयेगा, उसे न पायेगा तो क्या समझेगा! उसके ऊपर जो नैतिक विजय उसे प्राप्त हुई है वह इब्राहीम के कारण।

उसने निश्चय किया कि मर जायेगी पर इब्राहीम के पास से न उठेगी। महत्त्व जो उसने पा लिया है उसे छोड़ न देगी। इस संसार में वह कुछ ही व्यक्ति उसके परिचित हैं। इब्राहीम बेसुध पड़ा है। अनिल और यूसुफ़ का पता नहीं है। गफूर और कादिर ही हैं जिन तक उसका संसार है। और किसी के मतामत की उसे चिंता नहीं है। पर इन दोनों की अपने प्रति सुसंमति वह खोना नहीं चाहती और विशेषतया कादिर की।

मन में गूँजा इब्राहीम बेसुध पड़ा है। नयनों ने देखा इब्राहीम बेसुध पड़ा है। हाथों ने स्पर्श किया और उसे बेसुध पाया।

सोचा—यहाँ लाना ही इब्राहीम का काल हो गया, पर यदि वहाँ पड़ा रहता तभी

क्या बच जाता ? अल्लाह ने जैसा-जैसा लिख दिया है वैसा ही होगा। उसमें न जैनब कुछ परिवर्त्तन कर सकती है न कोई और।

जैनब ने इब्राहीम को दबाकर स्पर्श किया। हृदय उसके प्रति उमड़ पड़ा। पूछा—जी कैसा है ?

उसके शब्द इब्राहीम के कानों से टकराये और इधर-उधर बिखर गये। उसपर उनका कोई प्रभाव न पड़ा।

जैनब ने ज़ोर से पूछा—जी कैसा है ?

इब्राहीम निश्चेष्ट !

जैनब ने संपूर्ण बल लगाकर कानों के पास चिल्लाकर पूछा—जी कैसा है ? और चिंतित उसके ललाट पर हाथ रख दिया। शब्दों के आघात से इब्राहीम के कान झनझना उठे। नेत्र वायु में स्पंदित फूल की भाँति एक क्षण को खुले और मुँद गये।

उन नेत्रों में कुछ था कि जैनब भयभीत हो गई। वे साधारण जीवित नयन न थे।

जैनब ने इब्राहीम की ओर देखना बंद कर देना चाहा, पर दृष्टि हटती न थी, और उस स्थान पर दृष्टि भय को बढ़ाती ही थी।

वह विचित्र दुविधा में पड़ गई। वहाँ स्थिर रहना चाहती थी और उठ भी जाना चाहती थी।

तभी इब्राहीम की अवस्था में परिवर्तन हुआ। उसका कंठ जैसे खुल गया। घर्र-घर्र की ध्वनि उसमें से निकलने लगी। उसने पैर हिलाये।

जैनब डर गई। पीछे हट गई।

उसने देखा कि इब्राहीम का शरीर बुरी प्रकार ऐंठ रहा है। पुतलियाँ विचित्र रीति से चढ़-उतर रही हैं, और नाक मुँह को जैसे कोई बलशाली हाथ पुट्ठों की शक्तियों की अवज्ञा कर बाईं ओर को घुमाये दे रहा है।

उसके नयन एक क्षण को मुँद गये। उसकी इच्छा वहाँ से भाग जाने की हुई। पर कादिर की संमति ने उसे वहाँ बैठा रखा।

उसने देखा कि इब्राहीम का पंजर ऐंठा जा रहा है ठीक उसी भाँति जैसे कि

दावानल में वृक्षों की हरी पत्तियाँ ज्वाला के स्पर्श से ऐंठकर प्रायः गोल हो जाती हैं।

यह दृश्य रोगिणी क्षुधार्त जैनब की सहन-शक्ति से परे था।

वह उठी और वहाँ से चल दी। भय ने अन्य सब प्रतिबंधों को तोड़ डाला था।

जब कई घंटे पश्चात् कादिर और तजंमुल इब्राहीम को देखने आये तो उन्होंने इब्राहीम के स्थान पर उसका ऐंठा हुआ शरीर पाया।

वे सन्न हो गये। जैनब कहीं दिखाई नहीं पड़ी।

कादिर ने कहा—औरत जीवित की साथिन होती है।

तजंमुल बोला—नहीं। दो क्षण इब्राहीम के विस्फारित नयनों की ओर देखकर आकाश में ताकने लगा।

कादिर बड़बड़ाया—पता नहीं यूसुफ़ कहाँ होगा?

'कौन यूसुफ़?' तजंमुल ने आशंकित जागकर पूछा।

'मेरा साथी था।'

'कैसा रूप है उसका?'

कादिर ने यूसुफ़ की हुलिया बताई।

'अल्लाह उसपर रहम करे।' तजंमुल ने कहा।

'तुम उसे जानते हो?'

'हाँ।'

'कैसे?'

'फौज में कुलियों की भरती हो रही थी, उन्हीं में हो गया है। मेरी एक बहिन थी, उसका निकाह उससे कर दिया है, अल्लाह करे दोनों जीते रहें।'

कादिर ने तजंमुल के गंभीर चेहरे की ओर देखा और घूमकर चल दिया।

फिर पूछा—तुम भरती क्यों नहीं हुए?

'जी नहीं किया।' तजंमुल ने नीची दृष्टि कर उत्तर दिया।

— २५ —

परिवार में अनिल का स्थान जो ऊँचा उठा था वह अधिक समय तक न रहा। जीविका प्राप्त करने में जो सफलता उसे एक बार प्राप्त हो गई थी वह दुबारा न हुई।

अभाव तीव्रतर हो चला। जैसे-जैसे अभाव बढ़ा वैसे-वैसे नगर की जन-संख्या। निकटवर्त्ती देहातों से ग्रामीण अन्न की लालसा लगाये वहाँ एकत्रित होने लगे। उनके क्षुधार्त सूखे कंकालों से नगर का अंतर-बाहर सब भर गया। समस्या कठिन हो गई।

अनिल को आज प्रातः जितना भोजन मिला है, उसे भय है कि उतने पर वह जीवित न रह सकेगा। जीवन-संग्राम में वह कितना पीछे है यह उसे आज ज्ञात हुआ।

वह चिंतित हो गया। घर से बाहर निकला अवश्य, पर चिंता ने उसका पीछा न छोड़ा। वह अपने को विचित्र विवशता में बँधा पा रहा था।

वह स्वतंत्र पक्षी था। मेहर ने उसके पर काट दिये। स्वतंत्र होने का इच्छुक होने पर भी वही उसे बाँधकर रख रही है। उसे अनुभव हुआ कि यदि वह अकेला होता तो इस अवस्था में भी एक पेट के लिए भोजन प्राप्त करना उसके लिए असंभव न था। अकेला किसी बड़े नगर में जा सकता था। पर अब वह इस परिवार को दलदल में फँस गया है। मेहर उसके गले में पत्थर-सी बँधी है और उस दलदल में समा गई है। बिना मेहर से मुक्ति पाये वह उससे पृथक् नहीं हो सकता।

बंधन है, पर उस बंधन में सुख है। अनिल चाहता है कि पिंजड़े को तोड़ दे, पक्षी की भाँति फुर्र से उड़ जाये। पर इस पिंजड़े के प्रति उसकी ममता ही उसकी विवशता है।

वह बाजार में इधर-उधर घूमता रहा। पहिले दो चार दिन जो मजदूरी मिली थी उसका आकार अब इतना छोटा हो गया था कि उसको ओर हाथ बढ़ाने को जी नहीं चाहता था। भूखी भीड़ भूखे भेड़ियों की भाँति नगर की सड़कों और गलियों में घूम रही थी। अनिल भी उसमें एक था। कुछ क्षणों के लिए वह उन्हीं में खो जाता और फिर जागकर जैसे अपना वैयक्तिक मार्ग खोजने लगता। परंतु उस मार्ग का द्वार निराशा और परिश्रम की व्यर्थता ने बंद कर दिया था।

द्वार न मिलने पर वह लौट पड़ता और पुनः भीड़ में संमिलित हो जाता। भीड़ व्यर्थता का महानतम प्रतीक थी। लोग चल रहे थे, चिल्ला रहे थे, परंतु वह

सब शून्य में घुला जा रहा था। इसके परिवर्त्तन में न कुछ प्राप्त होता था और न प्राप्त होने की आशा थी।

सरकारी रसोई खुली, सार्वजनिक लंगर संगठित हुए और सहस्रों की संख्या में नर-नारी उनके सामने भोजनाशा में एकत्रित होने लगे। अनिल के परिवार ने मान का ध्यान रखा। इस प्रकार प्रकट वितरित अन्न से वह अब तक बचता रहा।

अनिल ने अपने को लंगर के संमुख पाया। दो-दो रोटियाँ बाँटी जा रही थीं। अनिल ने कैसे वे स्वीकार कर लीं यह उसकी समझ में न आया। एक बार इच्छा हुई कि उन्हें फेंक दे अथवा किसी अन्य व्यक्ति को दे दे। ख़ैरात वह ग्रहण नहीं करेगा।

हाथों ने उसकी प्रतिष्ठा की आज्ञा न मानी। मंत्रियों को लाँघकर जैसे राजा की आज्ञा राज के अधिकारियों पर शासन करती है, उसी प्रकार हाथों ने रोटियों को वस्त्र में बाँध लिया।

पर हाथों के इस कृत्य से अनिल अनमना हो उठा, जैसे कि बरबस उससे यह कर्म कराया गया हो। वह अपने पर वश न रख सका। व्यर्थ इधर-उधर घूमने लगा।

एक स्थान पर तीन पुरुष किसी गंभीर वार्तालाप में मग्न थे। उनके निकट वह खड़ा हो गया।

कल्याण ने कहा—ऐसे काम न चलेगा।

खुरशेद बोला—बाल-बच्चों को भूखा मरते अब नहीं देखा जाता।

हमीद ने कहा—कुछ करना चाहिए।

अनिल उत्सुकता से उनकी ओर देखने लगा। वह भी कुछ कर डालने के लिए आतुर हो रहा है। पर क्या किया जाये यह उसकी समझ में नहीं आता।

तीनों ने प्रश्नवाचक दृष्टि से अनिल की ओर देखा।

उनकी दृष्टि कह रही थी, तुम कौन हो? चाहे जो हो हमें तुम्हारी चिंता नहीं है। क्या तुम इस मंत्रणा में संमिलित होना चाहते हो?

अनिल ने पूछा—क्यों भाई क्या करना होगा?

हमीद बोला—रहमान की बुढ़िया ने पोते को कुएँ में डाल दिया।

कल्याण के मुख पर जैसे इस सूचना ने उत्साह ला दिया।

'हम कीड़ों से बदतर हैं।'

अनिल ने जैसे बीच का भाग न सुनकर पुनः पूछा—क्यों, क्या करना होगा?

हमीद ने कल्याण की ओर देखा। कल्याण की दृष्टि ने कहा—इस समय किसी से डरने की आवश्यकता नहीं रही।

'मैंने मौका देख लिया है।' हमीद ने सूचना दी—बोरियाँ बिलकुल सड़क के सहारे रखी हुई हैं। बस दीवार काटकर उनमें से एक निकाल लेनी है।

'कुछ न कुछ तो उनमें होगा ही।' खुरशेद ने कहा।

कल्याण के नेत्र चमक उठे। अनिल का हृदय काँपा।

'चोरी? पकड़ जाने पर कारावास मिलेगा।' अनिल ने शंका की।

'पकड़े गये तो,' हमीद बोला—'जेल में भूखे न मरेंगे'।

अनिल का मन न माना। यह सच है कि जेल में उसे भोजन मिल जायेगा, पर मेहर तो न मिलेगी। मेहर की विरह-कल्पना उसके हृदय में तीर-सी छिद गई। भोजन बिना वह जीवित रह सकता है पर मेहर के अभाव में?

उसने अनुभव किया, मेहर का हाथ पकड़े अन्नाभाव में डूब जाना ही एक मात्र सुखद है।

परंतु अन्नाभाव, पुलिस और मेहर!

वह लौट चला।

कल्याण ने पूछा—क्यों भाई, चार जने होते तो अच्छा होता।

हमीद ने कहा—हिंदू है, डरपोक है।

खुरशेद ने कहा—जाने भी दो, ऐसे ही हैं, तभी तो भूखे मर रहे हैं। और कोई अल्लाह का बंदा मिल जायेगा।

मेहर अनिल को खींच ले गई। अनिल इधर-उधर घूमा, उसके मस्ति... और से आँधी चलती रही, पर अंत में मेहर की विजय हुई।

संध्या समय जब अनिल घर पहुँचा तो मेहर को रोते हुए पाया। तैयब, मुनीर और सलीमा चिंतित बैठे थे।

'क्या है ?' अनिल ने पूछा।

मेहर ने कहा—दादा दोपहर से गये हैं, लौटे नहीं।

मुनीर ने सूचना दी, 'कल कह रहे थे कि घर से चला जाऊँगा।'

तैयब मौन बैठा रहा। सलीमा का हृदय भय से काँपा और उसने शफ़ीक़ को अपनी छाती से चिपका लिया।

परिवार के ऊपर अभाव की काली छाया आने लगी थी। अनिल को लगा कि जठराग्नि में पहली आहुति है।

अनिल ने दोनों रोटियाँ परिवार के सामने रख दीं। उसने उन्हें फेंका नहीं, यह अच्छा ही किया। उन व्यक्तियों के क्षुधानिवारणार्थ और कुछ न था।

सलीमा रोटी लेकर मुनीर और शफ़ीक़ को खिलाने लगी। तैयब जो अब तक शांत बैठा था, रो पड़ा।

उसने अनिल को परिवार में रखा अवश्य था, पर उसके प्रति आत्मीयता वह नहीं ला पाया था। पर इस समय वह निरीह शिशु बन गया। उसे लगा कि अनिल ही संसार में उसका सहायक है।

उसने अनिल का हाथ पकड़ लिया और एक ओर को ले गया। रोता हुआ बोला—मैं क्या करूँ, दादा लौटकर नहीं आयेंगे। वे कई दिनों से रोज़ा रख रहे थे।

आगे वह बोल न सका। जैसे उसके संमुख सब अँधेरा ही अँधेरा हो और अनिल से मार्गप्रदर्शन की आशा कर रहा हो।

मेहर आकर उनके निकट खड़ी हो गई।

अनिल को लगा कि परिवार का नेतृत्व उसे ही करना पड़ेगा। पूछा—घर से कब गये हैं ?

मेहर ने सूचना दी, 'कोई दो-तीन घंटे हुए होंगे।'

'किधर गये हैं ? कुछ अनुमान है ?'

'यहाँ से बाज़ार की ओर……।'

'जंगल में होकर ?'

'हाँ।'

अनिल का मन काँप उठा। महेश का वृक्ष से झूलता शरीर उसके नयनों के संमुख आ गया। उसकी मा और पत्नी का क्रंदन काँटा-सा चुभा। उसने अपने को सँभाला। बोला—अभी दिन है, बहुत दूर न गये होंगे। खोजा जा सकता है, अल्लाह रहम करेगा।

तैयब को एक मार्ग मिल गया। दोनों ने लाठियाँ उठाईं और जंगल में बूढ़े की खोज में चल दिये।

सलीमा और मेहर चिंतित तो पहले ही थीं, और भी चिंतित हो गईं। जहाँ नसीर गया है, वहीं उनके पुरुष भी जा रहे हैं। क्या वे लौटकर आयेंगे!

इन दिनों नारियों को अकेली भूख के पंजे में छोड़ पुरुषों में तिरोहित हो जाने की एक नवीन हवा चल निकली थी।

— २६ —

जैनब इब्राहीम के पास से भागी तो नगर के बाहर की ओर निकल गई। चारों ओर उसने हरियाली देखी। शीतल वायु का स्पर्श शरीर से हुआ, तब वह जैसे उस भयानक मोहिनी से जागी, जिसकी शक्ति से वह इब्राहीम के मृत शरीर से भागी जा रही थी।

उसने देखा कि सूर्य पश्चिम की ओर जा रहा है। संध्या अंधकार का नेतृत्व करती आ रही है। वह कुछ चकित हुई। स्वतंत्रता का आवरण उसके प्राणों पर छाया, ऐसा कि वह अपने आपको भूल गई। शरीर की पीड़ा, पति की मृत्यु कादिर की संमति और गफ़ूर की उत्सुकता, किसी की ओर उसका ध्यान न गया। वह अनुभव-हीन जड़ रह गई। इसी जड़ाव के भार में उसे अनुभव होने लगा कि अब वह संसार में अकेली रह गई है। ऐसी अकेली और हल्की जैसी कि एक फूँक मारते ही उड़ जायगी। उसके जीवन का भारीपन उड़ गया।

इब्राहीम का इन दिनों उसके वास्तविक जीवन में कोई हाथ न था। वह जैसी रह रही थी, केवल अपने और परिस्थिति के बल पर। पर उसके अस्तित्व के किसी तार से बँधा कहीं कोई है, यह भावना उसे सर्वदा साधती आई थी। यह जो बँधा

हुआ था वही आज खुल गया। जैनब को लगा वैसा जैसा कि लंगर टूट जाने पर नौका को लगता है। वह डगमगाती है और अपने पर विश्वास खो बैठती है। जैनब की तरी डगमगाई। उसे लगा कि तूफ़ानी लहरों के बीच किसी अनगढ़ चट्टान से टकराना ही उसका अंतिम लक्ष्य है। और चट्टान से टकराने पर जो होगा, उसी की कल्पना-झाँकी पा वह काँप उठी।

वह बैठ गई। अचानक भूख जागी। गफ़ूर ने जो एक मुट्ठी बाजरे के दाने दिये थे उनका मूल्य अब उसके लिए महान् था। भावुकता के आवेश में वह जो कुछ कर बैठी उसपर अब पछताना ही शेष था।

उसने इधर-उधर दृष्टि डाली और फिर जो दो-चार पत्ते पहचाने हुए मिले, तोड़ लिये। किसी समय उन पत्तों का कोई मूल्य न था, परंतु आज वे अमृत के समान स्वादिष्ट थे। एक मुट्ठी पत्ते खाकर जैसे उसके नेत्र खुले। उसने पाया कि वे पत्ते जैसे उसी के लिए रह गये थे। जब वह उनकी खोज में चली तो ज्ञात हुआ कि कितने ही मनुष्यों ने उसकी भाँति उनसे अपना पेट भरा है।

जिस समय नगर में खाने को नहीं था। वन में जैनब ने एक-एक पत्ता खाकर पेट भर लिया। उसे अनुभव हुआ कि जैसे उसके शरीर में नवीन शक्ति आ गई। उसकी कमर और माथे में जो तीखा और मीठा दर्द होने लगा था, चूहे के मुख की भाँति आशंका से बिल में लौट गया। संतोष और प्रसन्नता की एक भावना उसके मन में आई। अब वह इस वन में पेट भर सकेगी।

पर इब्राहीम मर गया और वह उसके शरीर को वैसा ही पड़ा छोड़ आई है! वह क्या कर सकती है? वह अपने पति के अंतिम संस्कार में संमिलित नहीं हो सकती। उसने संभावना देखी, कल्पना की और अपनी शारीरिक शक्ति का अनुमान लगाया। अपने से लज्जित थी, पर निश्चय किया कि पति की अंत्येष्टि में उसका संमिलित न होना ही सबके लिए सुविधाजनक है।

वह लेट गई। विचित्र आलस्य का आवरण उसपर छा गया। उसने कुछ क्षणों के लिए जिसे सुख कहते हैं, वह अनुभव किया। लगा कि नींद आना ही चाहती

है। पलकें झंपने लगीं। अंगों पर उसका अधिकार शिथिल हो चला। वह अपने को बिल्कुल भूल गई।

इस अवस्था में पाँच-छः मिनट रही होगी कि भयभीत होकर उठ बैठी। सियार की बोली उसने अपने अत्यंत निकट सुनी।

सियार से वह डरती न थी। पर सोया मरे बराबर होता है। तब बात दूसरी थी। जागकर उसे भय लगा। वन में भोजन की सुविधा होने पर भी नगर में सुरक्षा अधिक है। उसने उठना चाहा—जान पड़ा कि शक्ति की सीमा आ गई है। घबराई! अपनी शक्ति पर उसका विश्वास जैसे एक दम जाता रहा।

उसे लगा कि इब्राहीम मरा है। उसने उसका स्पर्श किया है। उसका वह मृत्यु-रोग कहीं उसे तो नहीं हो गया! वह पसीने से नहा गई। अपने को मौत के पंजे में तज निराशा से भारी हो चली।

तभी निकट सियार का रोना पुनः सुनाई दिया। जैसे कि वह जैनब पर आक्रमण करने से पहिले उसके जीवित-मृत होने के विषय में निश्चित हो जाना चाहता हो।

सियार की वह धमकी, मृत्यु की चुनौती, जैनब की शक्ति को चेतन कर गई। वह हड़बड़ाकर उठी और खड़ी हो गई।

अब उठ गई तो भय और भी अधिक हो गया। जीवन जब थोड़ा था तो उसे बचाने की विशेष चिंता न थी, पर जब वह खड़ी हो सकती थी तो उसके प्रति उसका ममत्व वेगवान हो गया और वह नगर की ओर चल निकली। उसे अनुभव हुआ कि उसकी पीड़ा बढ़ गई है।

जब चल रही थी, तो इच्छा हुई कि अस्पताल की ओर से चले, देखती चले कि इब्राहीम का शरीर समितिवालों ने उठा दिया अथवा···। परंतु इस विषय-ज्ञान अज्ञान से लाभ? वह वहाँ पड़ा नहीं रहने दिया जायेगा। आज नहीं तो कल अवश्य ही उठा दिया जायेगा।

वह ज्यों-ज्यों चली, दर्द कम हुआ। बैठकर विश्राम कर लेने की इच्छा भी बलवती होने लगी। तलवे और उसके निकटवर्ती भाग जैसे रक्त के दबाव से फटने लगे।

वह दूसरी ओर चल दी। भूमि पर विधाता के फूटे खिलौनों की भाँति इधर-उधर संध्या की अंधेरी में नर-नारी पड़े दिखाई देने लगे। जो आज हैं, कल कदाचित् न होंगे। कुम्हार के उन बर्तनों की भाँति जो चटख रहे हों और एक दिन की आग में खिल जानेवाले हों। जैनब इस समुदाय में घुसती चली गई उसे कोई शंका न थी। जो साधारण मनुष्य के लिए भयानक था, उस भयानकता की पुतली के लिए साधारण था।

— २७ —

ग़फ़ूर को जैनब के प्रति एक आकर्षण हो गया था। यह नारी के प्रति पुरुष की आसक्ति न थी। यह मनुष्य की कुत्ते के प्रति दुलार-भावना थी। ग़फ़ूर जैनब को जीवित देख सुख अनुभव करता और उसी सुख की निरंतरता बनाये रखने के लिए समय-समय पर उसे भोजन की सहायता देता रहता था।

अभी संध्या समय उसने जैनब को खोजा, पर जहाँ उसे छोड़ा था, वह न मिली। वह विशेष रूप से चिंतित हो गया।

अब तक वह केवल अपने ही लिए नहीं जी रहा था। इस दुखी जीवन में उसका एक लक्ष्य बन गया था, वह प्राण के दुर्बलतम कणों को संसार में रोके रखने के लिए यथाशक्ति भोजन पहुँचाता रहता था। वह जानता था कि इन लोगों के बीच में उसे स्वयं दुर्भिक्ष का शिकार बनना पड़ रहा है, पर उसे यह भी विदित था कि मरने के अतिरिक्त अब अपने से बाहर निकलने का दूसरा मार्ग नहीं बचा है। इसलिए मरने से पहिले जो कुछ संभव है, वह सब कर जाना चाहता है।

जब जैनब नहीं मिली तो गफ़ूर को अनुभव हुआ कि उसने उसके अस्तित्व का कोई भाग पकड़ लिया है। इसी ममता को वह कुचल देना चाहता है, पर उसका अनुभव यह है कि ज्यों-ज्यों कुचली जाती है त्यों-त्यों नवीन और विचित्र-विचित्र पदार्थों के प्रति कटे केले की भाँति बढ़ती जाती है। वह एक बंधन तोड़कर इतना प्रसन्न नहीं होता जितना कि दूसरे में अपने को बंधा पाकर झुँझलाता है।

आज कुछ सूचना मिली है जिससे वह घबरा उठा है। चाहता है कि चिनगारी की ज्वाला बनने से पहिले जैनब को वहाँ से निकाल ले जाये।

अंधकार हो आया। गफ़ूर जानता था कि इस अंधकार में जैनब क्या, किसी को भी खोजने का कोई अर्थ नहीं। परंतु फिर भी वह उसे खोजता रहा।

मन बैठने को कहता पर पैरों को जैसे जैनब की आवश्यकता अधिक थी। काफी रात्रि हो जाने पर गफूर थका और एक ओर पड़ गया। पर जैनब उसके सामने से हटी नहीं।

प्रातःकाल जब जैनब को उसने देखा तो उसके नेत्र खिल उठे। जैनब को लगा कि वह गफ़ूर की अपराधिनी है। उसके अन्न का तिरस्कार कर वह अपने को क्षमा नहीं कर सकती। अन्न का मूल्य प्राण के टुकड़ों से कम नहीं। एक मुट्ठी अन्न उसने फेंक दिया।

पर शब्द का प्रयोग क्षमायाचना के लिए उसने सीखा नहीं। वह उसकी ओर देखती बैठी रही।

गफ़ूर ने पूछा—कल कहाँ रही?

'जंगल की ओर चली गई थी।'

'उसका क्या हुआ?'

'अल्लाह ने समेट लिया।' जैनब के स्वर में पति की मृत्यु-चर्चा करते समय तनिक भी भावुकता का मिश्रण न हुआ। उसने उसके ऊपर दया की।

'खाने को मिला?'

जैनब जैसे गर्व से बोली—कल तो मैंने पेट भर खाया। पत्ते थे खट्टे-खट्टे।

गफ़ूर का मुखमंडल चिंतित हो गया। शीघ्रता से पूछा—अधिक तो नहीं खाये?

जैनब ने कुछ मुस्काकर कहा—क्यों? खूब पेट भर खाये हैं। अच्छे भी तो कैसे लगे!

'यह तो बुरा किया! ख़ैर!'

'क्यों! क्या हुआ?' जैनब ने चिंता के कुछ कण गफ़ूर से ग्रहण कर लिये।

'बहुत दस्तावर होते हैं, अतिसार का भय है। खाली पेट...।'

जैनब हँस पड़ी। बोली—तो क्या हो जायेगा ?

'हँसने की बात नहीं है। कमजोर व्यक्ति मर भी जा सकता है।'

जैनब इसपर खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—'सचमुच यह तो बड़ा भय है। पर जब अल्लामियाँ झोली फैलाकर समेट रहे हों तो उसमें अपने को डाल देना सौभाग्य ही है।

जैनब के प्रति गफूर के हृदय में कुछ प्रतिष्ठा आ गई। वास्तव में प्रतिष्ठित वही है जो अपने को बाँटता है और उसकी पहिचान यह है कि वह मौत से नहीं डरता।

जैनब के व्यक्तित्व के प्रति गफूर में एक उत्सुकता उत्पन्न हुई। बोला—तो तुम मरना चाहती हो ?

'हाँ, इसमें ऐसा असाधारण क्या है ?'

'क्यों ?'

'इसका जवाब तो मैं खुद नहीं जानती।'

गफूर जैनब की ओर देखता रहा। उसे लगा कि रोगिणी मैली-कुचैली जैनब के भीतर जो चिनगारी है, उसमें जान है। अपने जीवन तल के लिए वह कुछ असाधारण है। जैनब की ओर वह विशेष आकर्षित हो गया।

कुछ क्षण चुप रहा। सूर्य की प्रातःकालीन किरणों में उसने जैनब को देखना चाहा, पर जेनब का मुख उसे एक आलोक से घिरा दिखाई दिया। वह जान गया कि संसार में सुख नामक पदार्थ के लिए जिस मनोवृत्ति की आवश्यकता है वह जैनब में उससे अधिक जान पड़ती है।

बोला मरने की बात करना आसान है। पर...।

झूठ नहीं कहते। पर कौन कैसे मरता है, यह तो मरनेवाले के सिवाय और किसी को ज्ञान नहीं हो सकता।'

गफ़ूर ने फिर उसकी ओर देखा। बोला—यह तो सही है। पर अब हमें खड्गपुर छोड़ देना होगा।

'क्यों ?'

'मैं भी तुम्हारी तरह पत्ते खाना चाहता हूँ।'

'क्यों ?' उत्सुकता से जैनब ने पूछा।

'चाहता हूँ कि मरने के लिए तुम्हारी तरह तैयार हो सकूँ।' जैनब ने ध्यान से गफ़ूर की ओर देखा। बोली कुछ नहीं।

गफ़ूर ने कहा—बात यह है कि सरकारी रसोई कल बंद हो जायेगी। अन्न नहीं हैं। उसके बंद हो जाने से क्या निर्वाह हो सकेगा ?

जैनब ने पूछा—तो क्या करोगे ?

'गाजीपुर चलें। सुना है वहाँ प्रबंध अच्छा है।'

जैनब बोली नहीं। चुपचाप उठकर उसके साथ होली। दोनों खड़गपुर से बाहर निकल गये।

दोनों अब लगभग एक ही तल पर थे। जैनब को अपने महत्त्व का ज्ञान हो गया था और गफ़ूर ने उसे मान लिया था।

—२८—

अनिल और तैयब वृद्ध नसीर को खोजने घर से निकल पड़े।

अनिल के संमुख अब उत्तरदायित्व महान् था। उसे अनुभव हो रहा था कि तैयब ने अपना समस्त भार उसके कंधे पर डाल दिया है। उसे समर्थ समझकर अथवा अपनी दुर्बलता के कारण। पर तथ्य के विषय में कोई संदेह न था।

वह स्पष्ट देख रहा था कि खोज में भी नेतृत्व उसे ही करना पड़ रहा है। वह इससे प्रसन्न तो था ही, पर भीतर एक अस्वीकृति की भावना भी थी।

वह धीरे-धीरे फँसता जा रहा है। उत्तरदायित्व उसके पर जकड़ देगा। वह जब स्वतंत्रता की ओर उन्मुख होना चाहता है तो उसके मार्ग में यह बाधा उपस्थित हो रही है। यदि नसीर न मिला और उसे परिवार का नेतृत्व अपने ऊपर लेना पड़ा तो क्या उसमें इतनी सामर्थ्य है ?

जिस वृक्ष पर महेश लटका था उसके निकट अनिल रुका। उस शाखा की ओर देखा। जहाँ महेश की लाश उतारकर रक्खी गई थी उस ओर दृष्टिपात किया। समस्त दृश्य उसके संमुख पुनर्जीवित हो गया।

उसके हृदय में एक सिहरन आकर निकल गई। मुखमंडल गंभीर हो गया।

नसीर का ध्यान उसे हो आया। मेहर के पश्चात् परिवार में उसका आदर-यत्न यदि कोई करता था तो नसीर।

मन में एक पीड़ा उठी। नसीर को खोजना है। समय रहा नहीं। संध्या चली आ रही है। उसने तैयब की ओर देखना चाहा, पर दृष्टि लौट आई। खेतों की ओर जो पगडंडी जाती थी उसपर घूम गया।

बीच में कुछ अमराई थी, इधर-उधर केले के कुंज थे जिनके विशालकाय पत्ते वायु को रोकने का प्रण कर असफल खड़े थे। अनिल ने विचारा कि वृद्ध हो न हो, आत्महत्या करने गया है। अपने नयनों उसने कभी उसे भोजन करते नहीं देखा।

अब उसे संदेह हो गया कि नसीर ने कभी भोजन किया भी है; स्वयं भूखा रह-रहकर अपने बच्चों के लिए सब कुछ छोड़ता रहा। अनिल एक विवश करुणा में जकड़ गया। वह समस्त संसार से असंतुष्ट हो गया।

मनुष्य को संसार पर राज्य करते इतना समय हो गया, परंतु आज तक वह अपने लिए भोजन जैसी समस्या नहीं सुलझा पाया। उसे लगा कि मनुष्य की सब नैतिकता, सब दर्शन ढोंग है। मौलिक प्रश्न को छोड़कर इनकी बातें करना कुछ अर्थ नहीं रखता।

नसीर को खोजना है और अंधकार चला आ रहा है। उसने अमराई के बाहर दूर तक फैले शस्यश्यामल खेतों को देखा। उनके बीच में इक्के-दुक्के पेड़ खड़े थे।

नसीर यदि नगर में गया है तो मिल ही जायेगा, परंतु यदि वह इस जंगल में निकल गया तो कठिनाई पड़ेगी।

अनिल और तैयब ने एक उच्च स्थान पर खड़े होकर खेतों पर दृष्टि डाली। घिरते अंधकार से टकराकर वह निष्फल लौट आई। अनिल को लगा—यदि खोजना है तो शीघ्रता करनी चाहिए।

वे दोनों खेतों के बीच, मेड़ों पर और पेड़ों के नीचे नसीर को खोजने चले।

वे इधर-उधर घूमते रहे, उत्सुकता से भरे। मनुष्य की दुर्बलता सियारों पर जैसे प्रकट हो गई थी। वे जान गये थे कि मनुष्य अब इतना दुर्बल हो गया है कि उनसे

अपनी रक्षा नहीं कर सकता। यही समझकर एक सियार ने अनिल पर आक्रमण करना चाहा। पर उसकी लाठी का आघात पा चिल्लाता खेत में घुस गया।

अनिल को भय हुआ कि सियार नसीर पर आक्रमण अवश्य करेंगे। नसीर अत्यंत दुर्बल है। फलतः नसीर को यदि खोजना है तो आज ही संभव है। कल तक इस सुनसान में जीवित रह जाने की उसकी आशा नहीं है।

वह जल्दी-जल्दी डग उठाने लगा। कई वृक्षों के नीचे देखा। पता न चला। तैयब भी थोड़ी देर में उससे आ मिला। वे लोग अपनी खोज में निराश हो रहे थे। तैयब का हृदय पिता को न पाकर भर-भर आता था, इच्छा होती थी कि समस्त अंधकार को पी जाये, जो उसके दादा को अपने में छिपाये हुए है।

अंधकार घना हो गया। अनिल और तैयब के शरीर एक दूसरे को स्पर्श करते मौन खड़े थे जैसे कि एक दूसरे से भविष्य के विषय में प्रश्न कर रहे हों।

अनिल मौन सहमति से इस खोज का नेता बन गया था। परिवार में प्रमुख होने के पश्चात् यही सबसे पहिला कार्य उसके ऊपर पड़ा था। और वह इसी में असफल हो रहा है। जी में आया कि पृथ्वी के विस्तार को मसल दे और उसके खंडों में से नसीर को छान ले।

दोनों स्तब्ध चिंतित खड़े थे कि एक ओर से किसी के चीखने का स्वर उन्हें सुनाई दिया। तैयब ने समझा नहीं, पर अनिल जिस ओर से शब्द आया था उस ओर दौड़ निकला।

खेतों के बीच एक छतनार पीपल का वृक्ष था। उसी की जड़ में से वह चीख निकली थी।

अनिल ने अनुभव किया कि कुछ सियार उस वृक्ष को घेरे हैं, उसने लाठी से प्रहार प्रारंभ किया और तैयब को पुकारा।

मनुष्यों की संख्या का सियारों न आदर किया और वे दूर हट गये। पर अपने तमाच्छन्न राज्य में मानवों द्वारा इस हस्तक्षेप के विरुद्ध वे निरंतर प्रतिवाद उठाते रहे।

अनिल ने हाथों की सहायता से जो पीपल की जड़ में देखा तो एक वृद्ध पुरुष को

वृक्ष का सहारा लिये बैठा पाया। उसके पैरों पर सियारों द्वारा किये गये घाव थे। एक पैर लगभग आधा खाया जा चुका था। रक्त से सनी हड्डी वे स्पर्श कर पाये।

तैयब ने पुकारा—दादा!

रात्रि का अंधकार पीपल के नीचे और भी घना हो गया था। वे एक-दूसरे को देख न पाते थे।

नसीर बोला नहीं।

अनिल ने नाड़ी स्पर्श की। नहीं के समान थी, पर साँस अभी चल रही थी। सियारों ने नसीर को कदाचित मृत समझकर खाना प्रारंभ किया होगा। और नसीर प्रायः मृत तो था ही जो आधी टाँग खाये जाने के पश्चात् एक बार चीखने भर के लिए जागा और फिर उसी मृत्यु की तंद्रा में लौट गया।

नसीर को इस अवस्था में वहाँ से उठा ले चलना असंभव था। वे मृत्यु से पहिले उसकी सियारों से रक्षा कर सकते थे, पर मरने के पश्चात् मनुष्य की भाँति मट्टी दे सकते थे।

जब तक नसीर नहीं मिला था तो मेहर और सलीमा भूली हुई थीं, पर अब जब नसीर को उन्होंने पा लिया तो घर की चिंता हुई। कौन नसीर के पास ठहरे और कौन जाये! उस निर्जन स्थान में एक मनुष्य का लाश के साथ रहना भय से खाली नहीं। यदि वे दोनों भी वहाँ रहें तो अपनी और नसीर की रक्षा रात्रि में असंख्य वन-जीवों से कर सकेंगे यह संदेह का विषय था।

मृत्यु का वातावरण अनुभव-शक्ति में जो क्षीणता ला देता वह भय ने दूर कर दी। भविष्य का प्रश्न दोनों के संमुख बलपूर्वक उपस्थित हुआ। निश्चय था कि अपने दादा को जीवित सियारों द्वारा खाये जाने के लिए वे वहाँ न छोड़ेंगे। परंतु...!

नसीर के प्रश्न को लेकर दोनों में एक विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी। ऊपर मत हुआ कि नसीर को वहाँ से ले चलना चाहिए। पर पृथक दोनों सोच रहे थे कि अच्छा तो यही होता कि नसीर उन्हें न मिला होता। पर दोनों में इस विचार को वाणी देने का साहस न था। दोनों एक-दूसरे के मत से सकुचा-लजा रहे थे।

पर नसीर को उठाकर ले चलना साधारण कार्य न था। रात्रि बढ़ती चली आ

रही थी। दोनों उपाय सोचते सन्न खड़े थे। तभी अपने दो ओर कुछ आहट सुनाई दी। अनुमाना कि सियार उन पर आक्रमण की तैयारी कर रहे हैं। वे घबरा गये। स्पष्ट हो गया कि नसीर को वहाँ से ले जाना असंभव है। लाश वैसे ही भारी होती है। वे उसे ढोयेंगे या इन जंतुओं से अपनी रक्षा करेंगे?

'ले चलना असंभव है।' तैयब ने कहा।

अनिल चुप रहा।

'यदि किसी प्रकार उन्हें वृक्ष पर रख सकें।' अनिल ने सुझाया। तैयब के नेत्र चमक उठे। उसके दादा के शरीर को सियारों से बचाने का यही एक उपाय हो सकता है। पर वह कार्यरूप में परिणत कैसे किया जाये?

कहा किसी ने कुछ नहीं। पर दोनों सोच रहे थे कि वे स्वयं भोजनाभाव से दुर्बल हैं। रस्सी पास नहीं, और जो वस्त्र हैं उनसे इतना बोझ सँभालने की आशा नहीं की जा सकती। अंधकार बाहर और विवशता भीतर उसकी सीमा को कस रहे थे। उनकी शक्ति का अंत आ गया था। दोनों पर प्रत्यक्ष हो गया था कि वे नसीर के लिए कुछ भी करने में समर्थ नहीं।

उनके चारों ओर सियारों की संख्या बढ़ रही थी।

अनिल ने कहा—क्या करें?

नसीर की साँस ज़ोर से एक बार चली।

वे लोग अंधकार में सियारों से सतर्क खड़े रहे। रात्रि चढ़ती गई।

वे खड़े-खड़े ऊब गये। थक गये। तैयब ने इस बार जो नसीर की नासिका का स्पर्श किया तो जैसे एक संतोष उसे हुआ। अनिल से कहा—देखो तो, मैं समझता हूँ कि सब समाप्त हो गया है।

अनिल ने वृद्ध की दाढ़ी में अंगुली धँसाकर साँस-परीक्षा की और उसी परिणाम पर पहुँचा।

नसीर के शरीर के साथ क्या किया जाय, इसपर अनिल अपनी ओर से प्रस्ताव करना चाहता था। पर तैयब उसके शब्दों को ग़लत अर्थ दे सकता है। वह चुप

रहा। तैयब ने उत्तरदायित्व अपने ऊपर से हटाने के प्रयत्न में कहा—क्या करें अब ?

अनिल ने कोई उत्तर न दिया।

तैयब बेचैन हो उठा। अपने दादा को वह क़ब्र में भी न रख पाया। 'हो तो गये ही हैं। मिट्टी की दुर्गत होनी है।'

अनिल ने विवशता जताते हुए कहा—हाँ, इससे बचने का कोई उपाय मुझे नहीं सूझता।

'बस्ती से आठ-दस आदमी आयें तभी इन्हें ले चल सकते हैं।'

यही निश्चित कर दोनों जने लौट गये। घंटे भर पश्चात् एक खाट लेकर जब वहाँ पहुँचे तो नसीर का आधे से अधिक शरीर खाया जा चुका था। सियार उसे वृक्ष से दूर घसीट ले गये थे।

अब अपना भोजन छीनते देख वे अत्यंत असंतुष्ट होकर रोब और विवशता प्रदर्शन करने लगे थे, पर संसार में संतोष-असंतोष का मूल्य नहीं, मूल्य है परिस्थिति में आपेक्षिक उपयुक्त शक्ति का।

– २६ –

कल्याण और हमीद की योजना सफलता की ओर बढ़ रही थी। रमेश को उन्होंने अपने में संमिलित कर लिया था। रात्रि के अंधकार में जब वे सेठ श्यामलाल के गोदाम के निकट पहुँचे तो उनके हृदय एक बार धड़ककर स्थिर हो गये।

मौन चूना झाड़ने के पश्चात् सेंध लगाने का कार्य आरंभ किया। सेठ श्यामलाल का गोदाम था तो नगर के बीचो-बीच, पर गली थी सँकरी और अँधेरी। कल्याण और हमीद दीवार के निकट रहे। खुरशीद और रमेश गली के दोनों किनारों पर पहरा देते रहे।

कल्याण कार्य में अभ्यस्त जान पड़ता था। उसने शीघ्र ही एक बड़ा छेद दीवार में बना दिया। हमीद ने भीतर से एक बोरी चावल बाहर की ओर सरका दिया।

उन्होंने अपनी सामर्थ्य का अनुमान अधिक लगाया था। जब वे भोजन पाते थे और स्वस्थ थे तो डेढ़-दो मन उठा लेना उनके लिए साधारण बात थी, पर अब यह

उनकी सामर्थ्य से बाहर था। फलतः बोरी खोलकर प्रत्येक ने चावल थोड़े-थोड़े बाँटे और वहाँ से चल दिये। परमात्मा ने उन्हें साहस का फल दिया। उन लोगों के परिवार दो सप्ताह जीवित रह जायेंगे।

निश्चयानुसार वे लोग पृथक्-पृथक् अपने घरों को चले। उनके घर नगर से बाहर थे। दिशाएँ उनकी दीवार थीं और आसमान उनकी छत।

कल्याण जा रहा था कि संतरी ने टोका। कल्याण काँप उठा। इतना कर लाने के पश्चात् क्या व्यवस्था का फंदा उसकी गर्दन पर कस ही जायेगा ? पहिली इच्छा हुई कि भागे, पर फिर वह ठहर गया। अपने पाँच वर्ष के बेटे लछमन और उसकी मा के पीले सूखे मुख का ध्यान किया। आँसू जाकर हृदय में भर गये, वह फिर जैसे सब कुछ भूल गया। एक विचित्र विद्रोह उसके हृदय में उठ खड़ा हुआ। उसे लगा कि यह उसका अंतिम समय है।

'क्या है ?' काँपते हृदय से उसने संतरी से प्रश्न किया। संतरी ने मिट्टी के तेल के दीपक के अपर्याप्त प्रकाश में उसे देखा और फिर डाँटकर पूछा - क्या चुराकर लाया है ?

'कुछ तो नहीं।' उसने साँस रोककर कहा। उसके स्वर ने संतरी के संदेह को प्रोत्साहित किया। वह आगे बढ़ा और हाथ से कल्याण की बगल टटोली। कल्याण ने चावल छिपाने चाहे पर छिपाने की सीमा होती है।

'यह क्या है ?' संतरी ने डाँटकर पूछा।

'चावल !'

'रख दे यहाँ।'

कल्याण स्थिर खड़ा रहा।

'रखता है कि नहीं।'

'संतरीजी !'

'तुझसे कह दिया, रख दे यहाँ, नहीं तो थाने···।'

कल्याण काँप गया। पुत्र और पत्नी का क्षुधार्त मुख उसके संमुख आ गये। वह क्या करे ? जी में आया कि संतरी से भिड़ जाये, पर साहस न हुआ।

संतरी ने फिर कहा—रखता है या नहीं ?

कल्याण बैठ गया। संतरी के पैर पकड़ लिये।

परंतु संतरी ने ठोकर मारी। वह उसके हृदय में लगी। प्रहार सहनकर गिड़-गिड़ाता बोला—संतरीजी, बच्चे भूखे हैं। मेरे ऊपर नहीं, उनके ऊपर दया करो। जाने दो।

'साले चोरी करते हो, भूखे नहीं मरोगे तो क्या होगा !' और उसने चावलों की गठरी कल्याण से ले ली। कल्याण कटे नयनों संतरी की ओर देखता रहा। पर संतरी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया।

गठरी ले संतरी शीघ्रता से एक ओर चल दिया। कल्याण यह धक्का पाकर एक क्षण तो बेसुध बैठा रहा। उसे कुछ ज्ञान न रहा। परंतु तनिक देर में उसके हृदय की पीड़ा हरी हो गई। उसे लगा कि संसार में उसे जीने को कुछ नहीं है। पत्नी और बालक को वह क्या देगा ? कल जब मित्रों से भेंट होगी तो यह लज्जाजनक घटना कैसे उनसे कहेगा ?

उसने लगभग उनका नेतृत्व किया है और उसी की पराजय सबसे करारी हुई है।

जब मनुष्य के संमुख मृत्यु के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं रहता तो जीवन का अधिकार जाग उठता है, जीवन-संघर्ष में पशु-बल सामने आ जाता है। विनाश की ओर प्रवृत्ति होती है।

कल्याण में वही भीषण भावना इस समय उठ खड़ी हुई। भीतर से किसी ने कहा—वह मरना स्वीकार करेगा, पर भूखा नहीं मरेगा। फाँसी पर झूलेगा। और व्यवस्था का प्रतिनिधि संतरी उसका वैयक्तिक शत्रु होगया।

उसने उसके परिवार से जीवन का अधिकार छीना है। प्रतिहिंसा ने धमनियों में रक्त की धारा तेज कर दी और नयनों में लालिमा चमक आई। वह उछलकर खड़ा हो गया। संतरी के पीछे चला।

परंतु उसके पास कोई हथियार नहीं है। अपने परिवार के प्राणों को वह प्राण से कम मूल्य पर नहीं बेचेगा। संतरी के वध की कल्पना उसके संमुख यथार्थ रूप

पकड़ने लगी। स्वयं दुर्बल है इस ओर उसने ध्यान नहीं दिया। समझा कि बल की कमी को वह प्रतिशोध के उत्साह से पूर्ण करेगा।

संतरी अपने घर गया। चावल रख दिये और बच्चों की मा को जगाकर उनके आगमन की सूचना दी। फिर अपने डेढ़ वर्षीय पुत्र का मुख चूमा। स्वप्न में उसके मुस्काते कपोलों को थपथपाया, और प्रसन्न वदन अपनी ड्यूटी पर लौटा।

कल्याण ने देखा और उसका पीछा किया। वह सब कुछ कर गुज़रने पर तुला हुआ था। दबे पाँव पीछे चलता रहा। जब वह एक अत्यंत अँधेरे और प्रायः निर्जन स्थान पर पहुँचा तो जल्दी बढ़ पैर पकड़ संतरी को पीछे खींच लिया।

संतरी सँभल न पाया। औंधे मुँह पथरीली सड़क पर गिर पड़ा। उठने की चेष्टा कर ही रहा था कि कल्याण उसकी गर्दन पर चढ़ बैठा। एक नोकीला पत्थर, जो उसने इसी काम के लिए उठा लिया था, धड़ाधड़ उसकी गर्दन पर मारना प्रारंभ कर दिया। चिल्लाने का प्रयत्न उसी के साफे से रोक दिया।

निरंतर प्रहारों से संतरी शीघ्र ही बेसुध हो गया। पर कल्याण ने मारना बंद न किया। उसपर नशा चढ़ रहा था। संतरी की गर्दन आधे के लगभग कट गई और वहाँ से निकली रक्तधार जब कल्याण के मुख पर पड़ी तो उसे चेत हुआ। वह उसके ऊपर से उठा। उसका साफा एकत्रित किया। सिर पर बाँधा और पागलों की भाँति वहाँ से चल दिया।

खून का नशा उसके भीतर तक प्रवेश कर गया। तन-बदन की सुधि उसे न रही। पर मार्ग में एक अचानक परिवर्तन आया, जो वह क्रोध से जल रहा था, करुणा से भर उठा।

वह लछमन और उसकी मा को क्या देगा ? पुरुष कहलाने की क्षमता उसमें नहीं। वह दो प्राणियों की उदरपूर्ति के लिए भी नहीं कमा सकता। उसका जीवन व्यर्थ है। उसे लगा कि आत्महत्या ही उसकी सब पीड़ाओं का अंत कर सकती है। पर उसके मर जाने के पश्चात् लछमन और उसकी मा का क्या होगा ?

वह भूखी मरेगी। एक-एक कण अन्न के लिए अन्य नारियों की भाँति अपना शरीर परिवर्तन में देगी।

यह कल्पना उसे असह्य हो गई। नहीं, वह लछमन की मा को वेश्या नहीं बनने देगा। यदि वह उन्हें भोजन नहीं दे सकता तो उनकी हत्या अवश्य कर सकता है।

तभी उसके मन ने निश्चय कर डाला कि हाँ, वह हत्या करेगा। हत्या करना कितना सरल है। अब जब संतरी मर गया है तो उसके पीछे उसके बच्चे चाहे भूखों मरें चाहे सोने में लोटें। वह न दुःखी होगा न सुखी। संसार के दुःख से छुटकारा पाने का कितना उत्तम उपाय है! उसे लगा कि संसार इतने दिनों से है। मनुष्य उत्पन्न हो रहे हैं, दुःख भोग रहे हैं, और मर रहे हैं, किसी को इससे मुक्ति पाने का यह मार्ग क्यों नहीं सूझा?

वह घर पहुँचा। यह मिट्टी की एक रेखा थी, जिसे लछमन ने खेल-खेल में कुछ ऊँचा कर लिया था। इस सीमा में कुछ गूदड़ पड़े थे यही उसका घर था।

कल्याण ने देखा कि मा-बेटे एक दूसरे से चिपककर सोये हुए हैं। दोनों की साँसें ज़ोर से चल रही हैं। उन्हें इस प्रकार पड़ा देख उसका हृदय भर आया।

वह हिल गया। इनकी हत्या कैसे करे? वह खाली हाथ है। भोजन प्राप्य नहीं है। यदि उचित भोजन नहीं मिला तो अंत में अन्य अधिक अभागों की भाँति उन्हें भी मरना ही पड़ेगा। उसने निश्चय कर लिया।

एक रस्सी उसने ली और पहिले अपनी पत्नी के गले में फंदा लगाया और इससे पहिले कि जागकर वह चीखे उसने उसे भलीभाँति कस दिया। साँस का स्वर बंद हो गया। नारी का सूखा शरीर दम घुटने पर तड़फ उठा।

विचार उठा कि लछमन को जीवित छोड़ दिया जाये। पर क्या अनाथ भूखा मरने के लिए?

और फिर रस्सी के दूसरे खंड ने उसे भी कसकर समाप्त कर दिया।

जिस समय कल्याण इस भीषण कृत्य में लगा हुआ था, निकट सोते एक व्यक्ति ने अर्द्ध चेतन होकर पूछा—कौन?

कल्याण साँस रोककर स्तब्ध हो गया। फिर उसने शीघ्रता से कार्य पूर्ण किया और वहाँ से चल निकला।

महेश और उसके पश्चात् लतीफ़ जिस शाखा से लटक चुके थे उसी की ओर

वह आर्षित हुआ। उसे लगा कि वह डाल हो इस कार्य के लिए जैसे परमात्मा ने सुविधामय बनाई है।

वृक्ष पर चढ़ गया। शाखा में संतरी के साफे का एक छोर बाँधा और दूसरा अपने कंठ में। उसने सोचा था कि इसी अवस्था में वह शाखा से भूमि पर कूद पड़ेगा। झटके से उसकी गर्दन टूट जायगी। मरने का कष्ट थोड़ी देर में समाप्त हो जायेगा।

जिस समय वह इस तैयारी में लगा था, निकट होकर अनिल और उसके साथी नसीर का शरीर ले आ रहे थे। उनकी आवाज़ें सुनकर कल्याण घबरा-सा गया। उसे अनुभव हुआ कि वे लोग अंधकार में भी उसे वहाँ देख लेंगे और मारने न देंगे।

इससे पहिले कि उसके कल्पनानुसार वे उसे रोकने का अवसर पायें वह शाखा पर से कूद पड़ा। नयन मूँदे साँस रोकी। कल्पना की थी कि गर्दन में झटका लगेगा और फिर···। उसने दाँत ज़ोरों से भींच लिये।

वह धम से पृथ्वी पर गिरा। पैरों में धमक पहुँची। साफ़ा लंबा अधिक था।

इस प्रकार अपने अत्यंत निकट इस बलि के, भूखे, पेड़ पर से किसी को कूदते सुनकर लाशवाहकों के हाथ-पैर फूल गये। घिग्घी बँध गई। खाट टेढ़ी हुई नसीर का शरीर नीचे लुढ़क पढ़ा और वाहक चारों दिशाओं में भाग निकले। किसी आत्म-घाती का भूत ही इस समय इस वृक्ष से कूदने का खिलवाड़ कर सकता है।

जो औरों ने समझा वही भय कल्याण को भी हुआ। इस अंधकारमय निर्जन में भूतों के अतिरिक्त और किसकी टोली इस निर्द्वंद्वता से विचर सकती है।

गिरते ही वह तत्क्षण उठ खड़ा हुआ। फंदा अपने कंठ से निकाल दिया और एक ओर भाग चला। वह भागता चला गया। अमराई पार कर खेतों में पहुँचा, पर उसकी गति में कमी न हुई। सियारों के झुंड उसकी गति के भय से इधर-उधर हो गये।

कल्याण के पैर थक गये थे, साँस फूल रही थी। पर भीतर से कोई कह रहा था भागे चलो, भागे चलो, तुम अब भी निरापद नहीं हो और कल्याण लड़खड़ाता जा रहा था, भागा जा रहा था।

चाँद आकाश में निकल आया।

भागता-भागता वह एक गाँव के निकट पहुँचा। झोंपड़ियों की छायाओं को देख प्रथम भयभीत हुआ, पर फिर गाँव में घुस गया। देखा, एक घर का द्वार खुला है। भीतर झाँका। शरीर सड़ने की भीषण गंध ने उसके मस्तिष्क को सुन्न कर उसे बाहर ढकेल दिया। इच्छा हुई कि वहाँ से भागे, पर शक्ति समाप्त हो चुकी थी।

वह गाँव से बाहर निकला। चंद्रमा के प्रकाश में कटोरा-सा चमकता ताल दिखाई पड़ा। उसके किनारे पहुँचा। पाँच-सात चुल्लू पानी पिया और वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा।

इसके पश्चात् वह केवल एक बार जागा, पर पता नहीं कि अपने शरीर को कुत्तों द्वारा खाया जाते देख पाया या नहीं।

जब उसकी अस्थियाँ एक-एक बार जंगल में सियारों और कुत्तों द्वारा घसीटी जाने लगीं तब उसकी आत्मा वायु में अपने पंख फड़फड़ाती अपने सुखद पलायन पर संतोष प्रकट कर रही थी।

— ३० —

कल्याण लछमन की हत्या में तो सफल हो गया, पर अपनी पत्नी की हत्या पूर्णतया न कर पाया। प्रातःकाल हलीम ने उसे सिसकते देखा। कंठ का बंधन खोल डाला। सब पीड़ितों में इस नृशंस हत्या के प्रयत्न के कारण आतंक की लहर दौड़ गई। सोते में किसी का भी कंठ इस प्रकार घोंटा जा सकता है।

पाँच-सात मनुष्य उस सौभाग्यवती नारी को अस्पताल ले गये। चार घंटे पश्चात् उस विशालकाय इमारत से स्वास्थ्य के प्रतिनिधि ने लंबा श्वेत वस्त्र पहिने सूचना दी कि लछमन की मा मर गई है, उसके आदमी लाश ले जा सकते हैं।

जिन्होंने सुना उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा। वे जैसे परस्पर पूछ रहे हों, कौन लछमन की माँ?

वायु ने इस घोषणा को अपने में मिलाकर अपने जैसा सूक्ष्म कर दिया और लछमन की मा जहाँ मरी थी वहीं अस्पतालवालों के मत्थे पड़ी रही।

लछमन की मा तो ऐसे मरती ही रहती हैं। भिखारी ने गंभीर दृष्टि से आकाश

की ओर देखा। इक्केवाला मुख बिचकाकर हृदय की पीड़ा छिपाने लगा और डाक्टर मृत्यु से युद्ध में अपनी पराजय निश्चित जान गंभीर हो गये।

स्वास्थ्य-प्रतिनिधि ने फिर घोषणा की—'लछमन की मा मर गई है, वारिस लाश ले जा सकते हैं।'

उसे शीघ्र अनुभव हो गया कि जो नाली के कीड़ों का वारिस है, पानी में मछलियों का वारिस है, जंगल में खरगोशों और हिरनों का वारिस है, वही लछमन की मा का भी वारिस है।

वह लौट गया, और डाक्टर से कह दिया कि इस औरत का कोई वारिस नहीं।

— ३१ —

मार्ग में पत्ते खाने से जैनब और गफ़ूर को जो असुविधा हुई, उससे जैनब के रोग को लाभ ही पहुँचा। शरीर की शक्तियाँ क्षीण होने पर जो विष शरीर में एकत्रित हो रहा था, उसका विशेष भाग इन पत्तों द्वारा बाहर निकाल दिया गया। जैनब की शक्ति जितनी क्षीण हुई उससे अधिक आरोग्यता अनुभव हुई।

दुर्बलता की इस अवस्था में एक दिन का मार्ग चार दिन लंबा हो गया।

मार्ग में रेल की लाइन उन्हें पार करनी पड़ी। जैनब ने दृष्टि के छोर तक फैली दो चमकती झुकती रेखाओं को देखा और मुग्ध हो गई। ऐसा लगा कि यहीं खड़ी रहे, इनके बीच में, उसे इनमें दुःख-निवारण की विचित्र शक्ति जान पड़ी।

पर मार्ग का गुण है मनुष्य को चलते रखना और जैनब आगे बढ़ गई। कुछ ही क्षण में पीछे गाड़ी की घड़घड़ाहट सुन पड़ी और जैनब ने लौटकर वायु की गति से दौड़ते इस विशालकाय अजगर को देखा।

मत्यु का मोह उसके प्राणों पर छा गया, मन में उठा कि इस प्रकार तिल-तिल जीने से तो गाड़ी के नीचे आकर एक दम मर जाना श्रेष्ठ है। एक साथ उसके सब दुःखों और चिंताओं का अंत हो जायेगा। उसके पैरों ने जैसे आग्रह किया कि वह रेल की ओर लौट चले।

यदि वह लाइन के निकट होती तो संभव था कि अपने को रेल के संमुख फेंक देती। पर इतने स्थान ने उसकी रक्षा की। रेल जब निकल गई तब भी वह बहुत

देर तक भूमि पर खिंची उन काली धारियों की ओर देखती रही, जैसे कि वर्त्तमान जटिलता से निकाल ले जाने के वही मार्ग हैं। जैनब अपने को बिलकुल भूल गई। गफ़ूर ने जब उसका स्पर्श किया तब वह जागी और आगे चली।

- ३२ -

नसीर की मृत्यु से परिवार का जैसे ढक्कन उठ गया हो। जो बचे उन्हें लगा कि उनके बीच का संबंध शिथिल हो गया है। आकर्षण हल्का पड़ गया है।

सलीमा और नसीर को एक दूसरे से बाँधे रखने में नसीर सबसे बड़ी शक्ति थी। अब दोनों को अनुभव होने लगा था कि दूसरा उसके परिवार पर भारस्वरूप है। जब भूख के बादल मनुष्य पर उतरे आ रहे थे, सलीमा को लग रहा था कि अनिल और मेहर उसके परिवार पर भार हैं। वह जैसे उसके व्यक्तित्व के विकास की सीमा बाँधते हैं, वह उनसे स्वतंत्र होना चाहती थी।

मेहर के हृदय में यह भावना इतनी तीव्र तो नहीं पर कुछ अवश्य थी। वह सोच रही थी कि अनिल यदि इस भूखी दलदल से निकलकर पश्चिम की ओर चला चलता तो अच्छा होता। पर भाई-भतीजे की ममता इस इच्छा को स्पष्ट प्रकट होने से रोक रही थी।

तैयब अनिल को अब विशेष महत्त्व देने लगा था। कभी-कभी अनिल को बड़ी सफलता मिली है और वह आड़े समय में तैयब के परिवार के काम आया है। अनिल यदि कुछ न भी करता होता तो भी इस दुःख के समय तैयब उसका साथ नहीं छोड़ना चाहता।

अनिल कैसा भी हो, वे एक से दो तो हैं। यही भावना इस कठोर परीक्षा के समय उसे साधती रही।

अनिल भोजन की खोज में नगर गया। मज़दूरी मिलना प्रायः बंद हो गया था। सार्वजनिक लंगरों पर जो भोजन बँटता था उसी पर लोगों की जीवनाशा थी। अनिल फिर भी यथाशक्ति कमाने की चेष्टा करता, पर उस दिशा में अब सफलता भूलकर जाते हुए भी घबराती थी। अभाव की सबसे ऊँची लहर का आगमन प्रारंभ हो गया था। नगर में लोग घर का द्वार खोलते भी भयभीत होते थे।

सागर-सरिता और अकाल

अनिल चला जा रहा था। सोच रहा था, इस जीवन से बाढ़ में मर जाना ही अच्छा था। स्वयं भूखा मरता है, यह सहनीय है, पर दूसरों को भूखा मरता देख उसकी छाती फटती है। उसके मन में विचार उठा। वह लज्जित भी हुआ, पर विचार रुका नहीं। यदि मेहर किसी प्रकार मर जाये तो वह स्वतंत्र हो जायगा। जो कुछ करना चाहता है, कर सकेगा।

उसे मेहर अचानक अत्यंत बुरी लगने लगी। बाहर-भीतर के इन विरोधों ने जैसे अनिल को ऐंठकर जगा दिया। वह तनकर खड़ा हो गया। वह भागेगा नहीं। जो उसका उत्तरदायित्व है उसे जीवन के उस छोर तक पहुँचा देगा।

चारों ओर उसने देखा, दो ओर छोटे-छोटे मकान थे और आगे-पीछे अध-पक्की सड़क। उसी के समान सूखे-भूखे लोग इधर-उधर आ जा रहे थे। उसने इन चेहरों पर पहिले जो करुणा पाई थी वह अब जैसे जमकर भयानकता में परिवर्त्तित हो गई थी।

वह इस शून्यता में जा रहा था कि एक बालक की चीख उसने सुनी। वह मुड़ पड़ा। देखा कि एक मनुष्य एक बालक के हाथ से सूखी रोटी का एक टुकड़ा छीन रहा है। बालक अपने स्वत्व के लिए लड़ रहा है। मनुष्य के हाथ में अपने दाँत गड़ाने की चेष्टा कर रहा है।

अनिल ने बीच में पड़ते हुए पूछा—'क्या है?'

'है क्या!' पुरुष मधुसूदन ने कहा—तू जा, अपना काम कर।

बालक चिल्लाया, 'रोटी मेरी है, मैं नहीं दूँगा।'

मधुसूदन के साथी कबीर ने बालक के मुख पर थप्पड़ मारते हुए कहा—तेरी कहाँ से आई?

'मैंने उसे कूड़े में पाया है।' बालक ने रोते हुए और रोटी को दृढ़ता से मधुसूदन के हाथ से छीनने का पूर्ण प्रयत्न करते हुए कहा।

निर्दोष बालक पर प्रहार होते देख अनिल को क्रोध आ गया। उसके नेत्र जल उठे, ओठ काँपे और मुट्ठियाँ बँध गईं।

कबीर को धक्का देते हुए बोला—'छोड़ते हो या नहीं।'

मधुसूदन ने इस नवीन आक्रमणकारी का सामना करने के लिए रोटी छोड़ दी और उसकी ओर घूमा। कबीर ने अनिल को पकड़ लिया। मधुसूदन ने उसपर प्रहार किया। अनिल ने प्रहारों को रोकते हुए कहा—जा, भाग जा।

बालक भाग गया, पर थोड़ी देर में रोटी कहीं छिपाकर लौट आया। अपने रक्षक को इस प्रकार उन लोगों के हाथ सौंपना उसे भाया नहीं। उसने देखा कि अनिल अकेला है और विपक्षी दो से तीन हो गये हैं।

उसने नयन बन्द कर लिये और एक ईंट का टुकड़ा उठाकर मधुसूदन को मारने झुट पड़ा।

झगड़ा देखकर बहुत-से मनुष्य एकत्रित हो गये। बीच-बचाव करानेवालों ने अनिल को पृथक् किया और एक मनुष्य उसका हाथ पकड़ घटना-स्थल से दूर ले चला।

अनिल कुछ क्षण अपने रक्त के उबाल में बिल्कुल अंत तक लड़ लेने की सोचता रहा। उसे लग रहा था कि ऐसे नीच जो बालकों से उनका अंतिम टुकड़ा छीनने की मनोवृत्ति रखते हैं, वध्य है।

पर ज्यों-ज्यों वह घटना-स्थल से दूर चला जा रहा था, उसका जोश ठंडा पड़ता जा रहा था। अब तक जिस पकड़ को वह अपने हाथ पर नहीं अनुभव करता था वह उसे पीड़ा देने लगी।

उसने शीश उठाकर अपने साथी की ओर देखा, पाया कि वह गफ़ूर है। गफ़ूर के करुण हृदय और उसकी सूरत को वह भूल न सका था। दोनों परिचित न थे, फिर भी दोनों को लगा कि वह दोनों जैसे बहुत दिनों से मिलने को अकुलाये हों।

अनिल ने कहा—गफ़ूर!

गफ़ूर चकित हुआ। ध्यान से अनिल को देखा। चहरा कुछ पहिचाना-सा लगा। पूछा—तुम कौन हो?

'मेरा नाम तुम नहीं जानते, खड़गपुर में मैंने तुम्हें देखा था। तुमने उस लड़की को अपने भोजन में से हिस्सा दिया था। तभी से तुम्हारी मूर्ति स्पष्ट रूप से मेरे मन में अंकित हो गई।'

गफ़ूर ने बात हँसकर टाल दी। बोला—यह तो आँधी है, कच्चे-पक्के सभी झड़ रहे हैं। अल्लाह की मर्ज़ी है कि कच्चे अधिक झड़ते हैं।

अनिल को शफ़ीक का ध्यान आया। मुनीर उसके नयनों के सामने फिर गया। उसके परिवार में अब बारी है शफीक़ और मुनीर की। वह चिंतामग्न होगया।

गफ़ूर ने पूछा नहीं, वह वैसे ही बड़बड़ाया, 'क्या हम लोग अपने लिए स्वयं कुछ नहीं कर सकते ? खडगपुर में सरकार भी अन्न नहीं दे पा रही है।'

अनिल ने सोचा। जितना ज्ञान उसे है उसी के आश्रय बोला—जब अन्न है ही नहीं तो क्या किया जा सकता है ?

गफ़ूर चुप हो गया। एक दृष्टि से, जो अस्तित्व की सब गहराइयों को नाप लेना चाहती थी, अनिल की ओर देखा और फिर उसका साथ छोड़कर चला गया। उसने भूखे मरते कितने ही मनुष्यों से प्रयत्न की चर्चा की है, पर वे हैं कि मरना चाहते हैं, पर कुछ करना नहीं चाहते। गिद्ध की भाँति आकाश में उड़कर माँस कहाँ है, खोजकर उसे प्राप्तकर लेने का साहस उनका नहीं है। किसी के पंख उसकी बहिन ने बांध रक्खे हैं, किसी के उसके पुत्र-पुत्रियों और अधिकतर के उनकी पत्नियों ने। यह संबंधी जैसे पुरुष को घोंटकर अपना और उसका दोनों का दम निकाल देंगे। अपने पैरों पर खड़े होने की भावना इन मैदान के रहनेवाले, क्षीणकाय, क्षीण-आत्मा व्यक्तियों में कहाँ से आये ? जो आलस्य और आराम के बीच पला है, जोखिम की खोज उसे कैसे हो ?

— ३३ —

अचानक वही बात होने की संभावना हो गई जिसको लेकर अनिल का हृदय काँप रहा था। उसके हृदय में चोर है, वह जानता है। भूखी, दुर्बल मेहर के संसार से उठ जाने की कामना उसने की है, और परमात्मा ने वह जैसे स्वीकार कर ली।

चारों ओर की अमंद जठराग्नि की आहुति के लिए ज्वार, बाजरा, गेहूँ जब आया तो अपने साथ हैज़ा पेचिश भी लाया। जहाँ भूख का कोप था, रोग का कोप भी प्रारंभ हुआ। अनिल ने पाया कि पड़ोस में तीन मृत्यु हैज़े से हो जाने के पश्चात्

चौथा नंबर मेहर का है। दस्त-कय आना प्रारंभ होते ही परिवार की आशा सिमट-सिकुड़कर एक बिंदु पर रह गई।

अनिल घबरा उठा। पर इस घबराहट के नीचे एक विचित्र संतोष था, जो लगभग उसका दम घोंटे दे रहा था, विवशता इस संतोष को बल दे रही थी।

औषधि-उपचार की सुविधा स्वर्ग से भी कुछ अधिक ही दूर थी। बड़े जंगलों में आग लगने पर जिस प्रकार खरगोश मरते हैं, इसी प्रकार कीड़े की भाँति मेहर अपने क्षण पूरे कर रही थी। अनिल की स्थिति विचित्र थी।

वह मेहर की इस भावी मृत्यु को दार्शनिक दृष्टि से देख रहा था और मेहर का सौभाग्य समझकर उसे बधाई देने की कल्पना कर रहा था कि ऐसे शीघ्र घातक रोग ने उसपर आक्रमण किया। कुछ घंटों का रोग है। उसके पश्चात् जो सुख उसे संसार में नहीं मिला, उसकी खोज में वह उससे बाहर प्रयाण कर सकती है। उसे विश्वास है, अल्लामियाँ के यहाँ चाहे और किसी वस्तु की कमी हो, पर भोजन की कमी न होगी। जीवित रहने की पूरी सुविधा वहाँ मिल सकेगी। ऐसी अवस्था में, एक होटल से उठकर दूसरे होटल में चले जाने में, दृष्टि भ्रम भले ही हो, पर और विशेष हानि किसी की नहीं होती।

अनिल को ज्ञात था कि हैज़ा छूत का रोग है। साधारण अवस्था में वह इससे भागा होता, पर जब घरवालों ने मेहर को झोंपड़ी से बाहर एक आम के वृक्ष के नीचे रख दिया तो वह उसके निकट रहा।

जीवन के प्रति उसका मोह, मृत्यु के प्रति उसका भय जैसे समाप्त हो गया था। मेहर मर रही है, वह भी मर सकता है। छूत उसे लग जायगी यह चिंता उसे न हुई।

डेढ़ दिन की बीमारी के पश्चात् जब मेहर रात्रि को चल बसी तो अकेला सियारों से उसकी रक्षा करता वह बैठा रहा।

– ३४ –

मेहर की मृत्यु ने अनिल को बुरी प्रकार हिला दिया। वह वास्तव में जीवन के प्रारंभ से ही कहीं जमकर न बैठ पाया था। जहाँ जमने की उसने चेष्टा की वहीं जैसे भूचाल आ गया है और वह स्थान उसके नीचे से सरक गया है।

आशा थी कि मेहर शीघ्र हिलेगी नहीं, पर डेढ़ दो मास में वह भी न रही। अनिल फिर अकेला था। संसार उसके लिए फिर सीमाहीन था।

अनिल को इस अवस्था में परिवार में संकोच अनुभव होने लगा। यदि वह भोजन पाता है तो परिवार में जाकर वह बाँटना होगा और स्वयं भूखा रहना होगा। यदि स्वयं उनके भोजन में भाग लेता है तो इससे बढ़कर अमानुषिकता कोई नहीं।

इन भावनाओं के निरंतर आघात ने अनिल का संबंध परिवार से ढीला कर दिया। कभी तैयब मिलता तो कहता—'भई, तुम्हारी सलहज बहुत याद करती है, शफ़ीक़ तो दिन भर तुम्हें खोजता रहता है।'

अनिल के पास यदि कुछ होता तो शफ़ीक़ और मुनीर के लिए दे देता। पर उस झोंपड़ी में, जहाँ अब मेहर नहीं है, जाने को उसका हृदय न करता। एक विचित्र धड़कन उसमें उत्पन्न हो जाती, आँखें डबडबा आतीं। तैयब के आगे से चला जाता। सोचता—उसे भी हैज़ा क्यों न हो गया!

— २५ —

जैनब के मन में अनिल गुसाईं की स्मृति कभी-कभी जैसे दिन भर की भोजन-चिंता और पीड़ा से लुक-छिपकर हरी हो जाती थी। उन दिनों और आज के बीच कितनी विनाशक घटनायें हो गई हैं। मनुष्य कीट-पतंगों की भाँति नष्ट हुआ है। अनिल क्या बचा होगा?

अनिल यदि बचा भी होगा तो उसका प्रयोजन? कभी जी में आता कि मर गया होगा, पर तभी इच्छा होती कि बच रहा होता तो अच्छा होता। कल्पना में भी वह अनिल का मरण सहन न कर पाती थी।

वह जान रही थी कि अनिल का उसके जीवन से पुनः स्पर्श नहीं होगा; पर वह जहाँ कहीं भी हो सुखी रहे, जीवित रहे। कितना अच्छा लड़का था! अल्लाह उसपर रहम करे।

कभी-कभी जैनब को लगता कि अनिल से उसकी भेंट हो गई है। वह चौंक उठती। जिस उँगली पर अनिल ने अपने हाथ से रक्त पोंछकर पट्टी बाँध दी थी, उसे देखती और फिर चिंतामग्न हो जाती।

अनिल एक नक्षत्र की भाँति उसके जीवन-क्षेत्र में आया और अपनी गति के प्रवाह में उससे बाहर निकल गया-अब वह कितनी दूर पहुँचा होगा, यह अनुमान जैनब की बुद्धि-सामर्थ्य से परे था।

वह पुनः जैसे दूसरे चक्र में उसके जीवन के निकट आ रहा है, यह उसे विदित नहीं था।

इसी से जब गफ़ूर एक नवयुको लिये उस पीपल के नीचे जहाँ जैनब का डेरा था, पहुँचा तो उस युवा को देखैनब स्तंभित रह गई।

उसकी इच्छा हुई कि नयन मूँद और वहाँ से भाग जाये। पर सन्न-सी बैठी रही। उसके मस्तिष्क में विचारचक्र ी तेज़ी से घूमने लगा कि उसे पता न रहा कि वह कुछ विचार रही है अथवा न हो गई है। वह एक टक उसकी ओर देखती रह गई।

अनिल ने इस रमणी को देख समस्त शरीर में केवल नयनों को ही वह पहिचान सका। उन्होंने अपना परिचय दे दिया।

अनिल ने ध्यान से उसकी ओर हुए कहा—जैनब है क्या ?

'हाँ !' जैनब का हृदय धड़का।

'अच्छी तो हो !'

'अल्लाह का शुक्र है। और तुम ?'

'परमात्मा की दया है।' उसके मन ाठा—परमात्मा की दया तो है ही। तभी तो वह सर्पों के बीच रहा, किसी ने नहीं। पानी में कूदा, मरा और फिर जी गया। मेहर के साथ रहा, पर हैज़े ने पर्श नहीं किया। यह परमात्मा की दया नहीं तो क्या है !

साथ ही विचार उठा कि इतनी जोखिम जो उसका जीवन बचकर आया है तो अवश्य जीवन से उसका बंधन कठिन होए। वह विशेष रूप से इस विषय में रक्षित है। मन में भाव उठा कि इस दु अन्य लोग भले ही मर जायें, पर जिसने उसे पहिले बचाया है वह अब भोरने न देगा। और भी जोखिम अपने पर लेने का नशा उसपर छा गया।

जैनब ने कहा—बैठो न ?

'हाँ, आया हूँ तो बैठूँगा ही। गफ़ूर दादा, बैठो न ?'

'बैठो जी हमीद।'

तीनों जने बैठे, जैसे गफ़ूर के यहाँ अतिथि आये हों।

जैनब ने विवश दृष्टि से उनकी ओर देखा। उसकी नारी आत्मा में उठा—यदि उसका घर होता तो आज इन लोगों का कैसा सत्कार करती।

मृत इब्राहीम, नदी-तट पर उसकी झोंपड़ी और जीवन के सुखद दृश्य उसके नयनों के संमुख घूम गये। आनंद की एक हिलोर आकर आँसू में परिवर्त्तित हो गई।

अनिल ने कहा—जितना भोजन बँटता है उससे पीड़ितों को छटाँक-छटाँक भर भी नहीं मिलता। भूखों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है।

गफ़ूर ने कहा—यह सहायता क्या जारी रह सकेगी ? खड़गपुर में बंद हो गई है। द्वार पर लिख दिया है कि अन्न नहीं है, पर इस लिख देने से तो भूखों का पेट नहीं भर जायगा।

'हमें स्वयं कुछ करना चाहिए।' हमीद ने सुझाया।

'जो भूखे हैं, वे प्रायः गँवार हैं, अपढ़ हैं। उन्हें पता नहीं कि वे क्या करें ? किससे कहें ? वे सिर्फ अल्लाह को जानते हैं। उसी के सामने रोते-चिल्लाते हैं।' गफ़ूर ने कहा।

अनिल चिंतित हो गया। वह शिक्षित है, इस श्रेष्ठता ने एक उत्तरदायित्व उसके ऊपर डाल दिया है। वह उसे संभालना होगा। क्या करना चाहिए यह बताना होगा।

उसने सोचा—गाज़ीपुर तहसील है। तहसीलदार स्वयं यहाँ निवास करते हैं। वे सरकार के प्रतिनिधि हैं। उन्हीं के पास प्रार्थना लेकर पहुँचना चाहिए।

वे विशेष कुछ कर सकेंगे इसकी आशा न थी। पर यह प्रथम डग था जो उन्हें उठाना चाहिए था।

उसने सुझाया, 'जलूस-सा बनाकर तहसीलदार साहब के निकट प्रार्थनार्थ चलना चाहिए।'

'वे कह देंगे, सरकारी अन्न बँट तो रहा है।' हमीद ने कहा।

'पर क्या सबको उसमें भाग मिल जाता है ? क्या वह जीवन के लिए काफ़ी है ?' अनिल ने प्रश्न किया।

'हाँ, ठीक तो है। इसी की ओर ध्यान दिलाने के लिए हम लोग चलते हैं। जब तक हम लोग शिकायत नहीं करेंगे उन्हें प्रबंध की कमी का क्या पता होगा ?' गफ़ूर ने आशा बाँधी।

बात निश्चित-सी हो गई। जैनब ने सुना। कुछ समझा, कुछ नहीं। उसे लगा कि तहसील पर जाने से भोजन मिल जायगा। वह उत्साह से उठ खड़ी हुई। निकट जितने पहिचाने क्षुधार्त थे, सबको यह समाचार सुना आई।

लोगों को विश्वास हो गया। तहसीलदार माँ-बाप हैं। सरकारी अफ़सर हैं। वे चाहें तो क्या नहीं हो सकता। अवश्य उन्हीं के पास चलना चाहिए।

जब कि विचार के जन्मदाता वृक्ष के नीचे बैठे क्या कहना है, कैसे कहना है, यह निर्णय कर रहे थे, क्षुधार्त नर-नारी तहसील की ओर चले जा रहे थे।

परिचितों को इस प्रकार अचानक नगर की ओर जाते देख जो लेटे थे वे बैठ गये और जो बैठे थे वे खड़े हो गये।

बुढ़िया ने पूछा—'क्यों रे सहदेवा, कहाँ जा रहा है ?'

सहदेव ने कहा कुछ नहीं। चुपके से आगे बढ़ गया। उसके पीछे एक युवती एक शिशु गोद में लिये जा रही थी।

बुढ़िया ने उससे प्रश्न दुहराया, 'बेटी, बता तो सही, तुम सब किधर जा रहो हो ?'

बेटी रुकी नहीं, उसने चलते-चलते कहा। 'बुढ़िया मा, तहसीलदार के यहाँ बहुत बड़ा लंगर खुला है। वहीं सब लोग भोजन लेने जा रहे हैं।'

बुढ़िया ने आशीष दिया। 'तेरा बेटा जीये बेटी !' और फिर अपने बेटे-पोतों को पुकारा, 'अरे ओ जमील, सबराती, तहसीलदार के यहाँ लंगर खुला है। जाओ रे, तुम भी जाओ।' और फिर नयनों से ओझल हो गई युवती को आशीष देने लगी, 'अल्लाह तुमपर रहम करे, मेरी बेटी ! तेरा बेटा जीता रहे।'

सबराती उठकर भागा, और फिर सब चल पड़े, मार्ग में सबराती का मित्र नवनीत मिला। पूछा—'कहाँ को ?'

'अरे जानते नही ! तहसील में अन्न बट रहा है। बिल्कुल भात बहुत अच्छा। 'पानी नाम को भी नहीं।'

नवनीत भी चल दिया।

अनिल ने अपने मन में प्रार्थना का रूप निर्धारित कर लिया तो बोला,—जलूस का संगठन कैसे होगा ?

'यह कौन-सा कठिन काम है !'

'तो इसका ज़िम्मा तुम्हारा।'

'हाँ !'

'तो कल दोपहर को।'

'हाँ !'

'इसका कुछ न कुछ फल अवश्य निकलेगा।'

'निकलना चाहिए।'

तीनों उठ खड़े हुए। अनिल ने कहा—चलो तो तहसील की भूमि का भली-भाँति निरीक्षण कर आयें, जिससे जलूस सजाने में सरलता हो।

तीनों मित्र उस ओर चले।

जिस समय ये लोग यहाँ से चल रहे थे, तहसील के संमुख भीड़ जमा हो गई थी। लोग चिल्ला रहे थे—'सरकार हमें मिल जाये।'

'तहसीलदार साहब के बच्चे जीते रहें।'

'हज़ूर का बोल-बाला रहे।'

किसी ने कह दिया, 'ठहर जाओ, अभी पांच मिनट में बँटनेवाला है।'

लोग शांत हुए। एक दूसरे के ऊपर गिरने लगे। एक विचित्र कोलाहल मच गया।

इतना शोर तहसीलदार साहब का ध्यान अवश्य आकर्षित कर सका। तहसील की

छत पर आकर उन्होंने भीड़ की ओर देखा। देखा तहसील लगभग चारों ओर से घिरी है। वे घबरा गये।

सँभलकर पूछा—'क्या बात है ?'

'हुज़ूर, हमें नहीं मिला।' एक चिल्लाया।

'क्या ?' तहसीलदार ने चकित होकर पूछा।

'खाने को ?'

'यहाँ से चले जाओ।'

'हुज़ूर, दया करो, हम भूखे हैं।'

एक दयनीय मा ने अपने क्षुधा से मृतप्राय बच्चे को दोनों हाथों पर रखकर तहसीलदार की ओर ऊपर उठाकर दिखाया, माँगा—'हुज़ूर दया हो जाय, हम लोगों को भी मिल जाय।'

तहसीलदार की समझ में न आया कि वास्तव में बात क्या है। उन्हें भय हो गया कि जनता बिगड़ गई है और तहसील लूटना चाहती है। वे छत पर से नीचे नहीं उतरे। नौकर को फौरन पुलिस लाने भेज दिया।

पुलिस ने कुछ मिनिटों में डंडों की सहायता से भीड़ को पीछे हटा दिया। जो लोग भोजन की लालसा में आगे-आगे थे वे डंडे खा-खाकर पीछे भागे। लोग गिरे, कुचले गये। चिल्लाये, चीत्कारे। भीड़ तितर-बितर होने लगी।

'क्या हुआ ?' किसी ने पूछा।

कहीं से उत्तर मिला, 'तहसीलदार ने सब चावल अपने घर में रख लिया।'

'यह तो किसी ने बहका दिया था। भला तहसील में भी कहीं लंगर खुले हैं ?'

इस प्रकार मनुष्यों को उत्तेजित घबराया लौटते गफ़ूर आदि ने पाया। मन में उत्सुकता जगी।

गफ़ूर ने पूछा—'कहाँ से आ रहे हो रे ?'

एक युवा ने रुककर उसके मुख की ओर देखा। पूछा—'अरे तुम नहीं गये ?'

'कहाँ ?'

'तहसील में भात बँटा था।'

तीनों ने एक दूसरे की ओर देखा।

तभी एक और व्यक्ति ने विरोध किया—'भात नहीं, तेरा सिर बँटा था। किसी ने झूठ खबर उड़ा दी थी। उसका क्या बिगड़ा होगा! हाथ-पैर जिनके टूटे उनके टूटे।'

'क्या हुआ?'

पुलिस ने मार-मारकर सबको भगा दिया।'

तीनों ने एक दूसरे की ओर देखा। अनिल का मुख उतर गया। उसे लगा कि किसी ने उसका विचार चुराकर उसे कार्यान्वित भी कर डाला है। पर उसका कुछ फल नहीं निकला, यह संतोष की बात है।

वह चिंतामग्न हो गया।

'अब क्या करोगे?'

'कल देखा जायगा।'

अब भीड़ एकत्रित करना ठीक नहीं, कम से कम मनुष्यों को तहसीलदार साहब के पास चलना चाहिए।'

'हमी तीनों।'

'हाँ।'

दूसरे दिन दो पहर को तीनों व्यक्ति तहसील पर पहुँचे। देखा, पुलिस का पहरा है। ज्ञात हुआ कि कल बागियों ने तहसील पर धावा बोल दिया था; लुटते-लुटते बची।

अनिल ने हवलदार से कहा—'बहुत जरूरी काम है। तहसीलदार साहब से मिलना चाहते हैं।

हवलदार ने डाँटकर भगा देना चाहा, पर लोग अड़े रहे।

फिर कहा—मिलना अत्यंत आवश्यक है।

हवलदार ने आँखों से उन्हें तोला। निश्चय कर लिया कि ये तीन तहसीलदार का कुछ बिगाड़ न सकेंगे।

बोला—तीन नहीं, एक आदमी जा सकता है।

'हवलदार सा'ब !'

'नहीं, एक से अधिक आदमी के जाने की आज्ञा नहीं है।'

'हवलदार सा'ब !'

'कह दिया। भाग जाओ यहाँ से।'

निश्चय हुआ कि अनिल सब बातें ठीक कह सकेगा ? वही तहसीलदार के पास जाये।

तहसीलदार को सूचना हुई कि कोई उनसे मिलना चाहता है। तहसीलदार को कल का दृश्य स्मरण आया। मुहर्रिर से कहा—देखो, कौन है ?

मुहर्रिर चिक उठाकर बाहर आया। सिर से पैर तक अनिल को देखा। अनिल उस दृष्टि के नीचे हिल उठा।

'क्या है ?' मुहर्रिर ने पूछा कुछ डाँटकर।

'तहसीलदार सा'ब से मिलना है।'

'क्या काम है ?'

'उन्हीं से मिलना है।'

'काम बताओ।'

'उन्हीं से···।'

'उन्हें फुरसत नहीं है, जाओ यहाँ से।'

'आप सूचना दे दीजिए। काम अत्यंत आवश्यक है।'

'जायेगा नहीं यहाँ से ? सिपाही···।'

'देखिए, यह सैकड़ों जानों का··· ।'

'सिपाही······।'

आगे अनिल और पीछे सिपाही तहसील से बाहर आये। मुहर्रिर ने चिक से भीतर प्रवेश किया।

'कौन था ?'

'कोई भिगमंगा था। सनकी जान पड़ता था।'

'हाँ ?'

'भगा दिया।'

तहसीलदार साहब। निश्चिंत हुए।

— ३६ —

अनिल के साथियों ने इस भेंट के फल को ध्यान से सुना और उनका कल्पित प्रासाद भग्नावशेष मात्र रह गया। भूख के विरुद्ध उन्हें कहीं शरण न मिलेगी। भूख यदि भोजन नहीं पायेगी तो उन्हें ही खायेगी। उनका हृदय बैठ चला, मुख उतर गया।

पर अनिल हिम्मत हारनेवाला न था। मेहर की स्मृति में उसने क्षुधार्तों को अपनी सेवाएँ अर्पित की हैं। वह कुछ कर गुज़रना चाहता है। इस कार्य की कठिनाइयों से वह अपरिचित भी नहीं है। पर पराजय को निरंतर अस्वीकार करते रहने को उसने अपना मंत्र बना लिया था। जिस समय अन्य लोग प्रथम प्रयत्न की असफलता से निराश लटक गये थे, वह भावी प्रयत्नों की योजना बना रहा था।

बोला—हतोत्साह होने की बात नहीं है।

'जब तहसीलदार ने बात तक न की तो और क्या आशा की जा सकती है?' गफ़ूर ने शंका की।

हमीद बोला—दुनिया रुपये की है, गरीब को कौन पूछता है। यदि अनिल कोट-पतलून पहिने होता तो तहसीलदार साहब सिर के बल भेंट करते।

अनिल ने उनकी टिप्पणियों की ओर ध्यान न दिया। बोला—यह सब सत्य होने पर भी काम तहसीलदार का नहीं, हमारा है। तनिक-सी मछली पकड़ना होती है तो कितनी तैयारी करनी पड़ती है।

जैनब के नेत्र चमक उठे। बोली—बिना अच्छे जाल के पकड़ाई थोड़े ही आती है।

'हाँ, और एक जाल में कितने फंदे होते हैं और एक-एक फंदे को कितना ध्यान देकर अलग-अलग बनाना होता है।'

गफ़ूर ने सुना, सोचा—अनिल की आशायें सच्ची होतीं तो कितना अच्छा होता! पर मन में भय था कि वे सत्य नहीं हो सकतीं। वे लोग गरीब हैं और दिनों-

दिन उस गरीबी की कीचड़ में फँसते जा रहे हैं। ज्यों-ज्यों वे साधन-विहीन हो रहे हैं त्यों-त्यों उनका माँगने का अधिकार भी छिनता जा रहा है। उसे संमुख सघन अंधकार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई न दिया।

अनिल ने कहा—मान लिया, कुछ फल न निकलेगा, पर वैसे ही हम लोग बैठे-बैठे करते क्या हैं? काम में लगेंगे, कुछ फल निकल आयेगा तो अच्छा ही होगा।

'आज भी किसी से मिलने चलना है क्या ?' हमीद ने व्यंग किया।

'हाँ !'

'किससे ?'

'नवाब साहब से। चुंगी के सभापति हैं।'

जैनब ने कहा—मैं भी चलूंगी।

अनिल ने कहा—भीड़ नहीं होनी चाहिए।'

नवाब साहब की बैठक के संमुख चारों जने पहुँचे नौकर ने सूचना दी, पर अधूरी दी। यदि वह कह देता कि चार भिखारी आये हैं तो नवाब साहब आने में शीघ्रता न करते। पर वह यही कहना भूल गया।

नवाब साहब ने स्वयं बाहर आ अपने मिलनेवालों को देखा। भीतर से जब वे चले थे तो उन्होंने अपने अतिथियों को अर्थविशेष में संभ्रांत समझा था। कल्पना की थी कि जाते उन्हें बैठक में आ जाने को निमंत्रित करेंगे। क्षमा मांगेंगे।

पर इन मिलनेवालों के वस्त्र देखकर शिष्टाचार लक़वे से आहत होकर गिर पड़ा। क्षमायाचना बेहोश हो गई और बैठक में निमंत्रण ने लज्जा से शीश झुका लिया। उनकी बैठक और ये लोग !

वे मुस्काकर उनका स्वागत करने आये थे, पर इनके वस्त्रों ने मुस्कान को झुँझलाहट में बदल दिया। भीतर जो अपने कुत्ते को वह साबुन से नहला रहे थे वह कहीं अच्छा कार्य था। शीघ्र उन लोगों को वहाँ से टाल देने की इच्छा से स्वर में अवज्ञा और उपेक्षा भर उन्होंने पूछा—क्या है ? जैसे कि प्रार्थना सुनने से पहिले ही उसे अस्वीकार कर दिया हो।

चारों ने प्रणाम किया। उसका उनपर विशेष प्रभाव न पड़ा।

अनिल ने बाहर आने पर उनका मुद्रा-परिवर्तन देखा। देखे उनके पतले-पतले ओंठ, मांसल कपोल और छोटी-बड़ी दो आँखें। उसने अनुभव किया कि नवाब साहब जान-बूझकर उनके प्रति अशिष्ट बन रहे हैं।

बोला—यदि आप क्षमा करें तो कुछ निवेदन······।

नवाब साहब ने शीघ्रता करते हुए कहा—बोलो!

'कल मैं तहसीलदार से मिलने गया था···।'

नवाब साहब के अनुमान में भीषण परिवर्त्तन हो गया। उन्हें लगा कि इनके वस्त्रों ने उन्हें भीषण धोखा दिया है।

बोले—आप लोग भीतर आ जाइये। सोचा—नौकर को कुर्सियाँ एक बार झाड़नी पड़ेंगी यही तो।

सब लोग उनकी बैठक में आकर बैठ गये। नौकर ने देखा, स्वामी का यह कृत्य उसके पसंद नहीं आया। वे कंगलों के साथ और चाहे जो करें पर यह भी कोई बात हुई कि बुला लिया और उन्हें कुर्सियों पर बैठा दिया। वे तो साफ़ करेंगे नहीं। साफ़ करेगा वह।

पर उसकी स्वेच्छा का कोई प्रभाव व्यक्तियों पर नहीं पड़ा। नवाब साहब ने अनिल के मुख की ओर प्रश्न-वाचक दृष्टि से देखा।

'उस भेंट के फल के आधारस्वरूप आपकी सेवा में आना उचित समझा गया।'

'किस विषय में?'

'दुर्भिक्ष-पीड़ितों की हमारी एक समिति है। हम उसके प्रतिनिधि हैं। पता लगा है कि सरकार शीघ्र अधिक सहायता भेजनेवाली है, यदि इतने समय के लिए नगर के दानी व्यक्ति पीड़ितों की कुछ अधिक सहायता कर सकते तो सैकड़ों व्यक्ति मरने से बच सकते हैं।'

'नगर की ओर से जो सहायता संभव थी वह की जा रही है।'

'उसके लिए हम आपके अभारी हैं, पर यदि सरकारी सहायता आने तक आप उसमें वृद्धि कराने·····।'

'देखो भाई, सेवा का काम जनता का काम है। जो जनता दान करती है उसी को लेकर हम काम चलाते हैं, किसी पर ज़ोर-जबरदस्ती हम नहीं कर सकते।'

'आप सत्य ही कहते हैं, पर अवस्था को देखते हुए यदि आप जनता से अपील करें तो आपके वचनों का प्रभाव अवश्य होगा।'

'सहस्रों जानें बचाने का सवाब आपको होगा।' गफ़ूर ने कहा।

नवाब साहब विचारमग्न हो गये। बोले—अच्छा, जो संभव होगा, मैं अवश्य करूँगा।'

'धन्यवाद!'

'इस दुखद अवसर पर जो कुछ हम करना चाहते हैं वह……।'

'एक बात और है; यह आपके अधिकार का विषय है।'

'क्या?'

'पीड़ितों के लिए जो भाग आपने नियत किया है, उस भूमि की सफ़ाई और वहाँ औषधादि का प्रबंध यदि संतोष-जनक हो सके तो…।'

'इस विषय में मैंने स्वास्थ्य-विभाग को सामर्थ्य भर पूर्ण सेवा करने की आज्ञा दे दी है। आप डाक्टर साहब से मिल लीजिए। क्या-क्या चाहते हैं, उन्हें बताइए। जो हो सकेगा, अवश्य किया जायेगा।'

'जी!'

'आप देखते हैं कि हमारे हाथ अपनी सीमाओं से बंधे हैं।'

तभी उनका कुत्ता उछलता, पानी से तर आया और उछलकर नवाब साहब की गोद में चढ़ गया। उसने इन लोगों की ओर इस दृष्टि से देखा जैसे कि आश्चर्य कर रहा हो, और कह रहा हो, क्यों! मैं उछलता आया, और तुम लोग प्रसन्न नहीं हुए। मुस्काये तक नहीं। सभ्य-समाज में बैठने का शिष्टाचार तुम्हें ज्ञात नहीं।

वह उन लोगों से अधिक प्रभावित न हुआ। उसका समस्त ध्यान नवाब की ओर लौट पड़ा। उसकी चंचलता सहन करते हुए नवाब साहब ने अनिल की ओर देखा।

अनिल ने कहा—आपकी सहायता और सहानुभूति से हम लोग पीड़ितों की सेवा कर सकेंगे।

'आप लोग विश्वास रखिए, जो कुछ मेरे वश में है, सब किया जायगा।'

'धन्यवाद !'

वे लोग उठकर जाने लगे, तो भीतर से एक लड़की आई और जैनब को भीतर आमंत्रित किया। जैनब को भीतर अधिक समय तक न ठहरना पड़ा। वह जब लौटी तो उसके पास पीड़ितों में बाँटने के लिए हल्के-हल्के पंद्रह कंबल थे।

नवाब साहब ने उस ओर देखा, फिर कुत्ते की पीठ पर हाथ फेर सीटी-सी बजाने लगे। उन्हें लगा कि उस स्थान पर बैठे-बैठे उन्हें असुविधा हो रही है।

'इस दान के लिए आपको धन्यवाद।'

शीश को झटका देकर नवाब साहब ने धन्यवाद ग्रहण किया और उससे पहिले कि लोग बैठक से उतरकर सड़क पर पहुँचें और इस भेंट के विषय में एक मत पर पहुँचने के लिए एक दूसरे की ओर देखें, नवाब साहब भीतर पहुँचे।

चीखकर पूछा, 'कम्बल किसने दिये ?' कुत्ता चौंककर स्वामी के मुख की ओर देखने लगा। सायबान की खपरैल धमक से आध इंच नीचे को खसक गई।

'बेगम साहिबा ने।' नौकर ने नयन-संकेत से सूचना दी।

जबसे कम्बल घर आये हैं, नवाब साहब को उनसे विशेष मोह हो गया है। वे बारंबार उन्हें स्पर्श करते, और सुखद अनुभव प्राप्त कर संतोष की साँस लेते। मुख पर एक तृप्ति की भावना उमड़-उमड़ आती।

बेगम साहिबा ने नवाब का ध्यान अपने शिशु बिल्लो-बिल्ले की क्रीड़ाओं की ओर आकर्षित करना चाहा। पर नवाब साहब को उन्हीं ख़ैराती कंबलों के पास पाया।

वे रुष्ट हो गईं और उन खैराती कंबलों से उनको चिढ़ हो गई।

इस समय उदार बनकर उन्होंने जैनब को दे डाले।

'क्यों जी, कितने कम्बल दिये।'

'जितने थे।'

'सब ?' नवाब साहब ने नेत्रों के पलकों और दोनों ओठों के बीच में अधिकाधिक अंतर डालते हुए कहा।

'हाँ। क्यों क्या हुआ? ग़रीबों में बँटने के लिए तो वे थे ही।'

'मुझे तुम्हारी अक़्ल पर तरस आता है।'

'क्यों क्या हुआ?' बेगम कुछ भयभीत हुईं।

'ग़रीबों में बाँटने को थे! अरे, क्या हमारे नौकर ग़रीब नहीं हैं। तुम्हारी आँखों पर तो चर्बी चढ़ी हुई है। समझती हो कि अपना भंगी भी लखपती है।'

'पर...।'

'पर क्या? तुम्हें यह पता नहीं ये लोग कितने बदमाश होते हैं। साले बाटें-बाटेंगे नहीं, सब खा जायँगे।'

घर-बाहर के मनुष्य के अनुभव की कमी बेगम में थी। वे यह मान गईं। उन्हें वास्तव में दुःख हुआ कि उनके कंबल केवल अपात्र को नहीं कुपात्र को गये।

पर शीघ्र ही दुःख का कारण और भी गहिरा चला गया। उनपर जैसे प्रकाशित हुआ कि अब नौकरों को या तो कंबल खरीद कर देने होंगे या रुपये देने पड़ेंगे। और जब पैसा व्यय करने का प्रश्न आता था तो उनका मत नवाब साहब के मत से कहीं पीछे न रहता था।

थोड़ी देर वे चिंतित रहीं। फिर बोलीं, 'अलाउद्दीन को भेजकर वापिस मँगा लो।'

अलाउद्दीन नवाब साहब का छोटा साला और हेड कानिस्टबिल था।

नवाब साहब ने तेज़ दृष्टि से बेगम की ओर देखा। इच्छा हुई कि बेगम साहब की मंत्रणानुसार कार्य करें। पर फिर बोले, 'पहिले अगर सोच लिया जाता तो।'

'तो जाने भी दो, कौन...।'

'हुँः।'

नवाब साहब को अकस्मात लगा कि वे ठगे गये हैं। जो आये थे वे ठग थे। उन्होंने निश्चय किया उनकी इस ठगाई को अब वे आगे न बढ़ने देंगे।

– ३७ –

नवाब साहब ने जो आश्वासन दिया था, उसका मूल्य था। गफ़ूर-हमीद आदि के हृदयों में जो घोर निराशा उत्पन्न हो रही थी वह कंबलों की प्राप्ति से दब गई।

सागर-सरिता और अकाल

वे अनिल की इस दौड़-धूप के सफल होने की विशेष आशा न कर रहे थे। एक शिक्षित व्यक्ति उन कपड़ों पर अपना महत्त्व जताता था, यही मूल भावना उनके मन में थी। कभी-कभी उनके मन में अनिल की शिक्षा के विषय में भी संदेह उठ खड़ा होता था।

पर उससे वार्तालाप कर नवाब साहब इतने हिल गये कि फ़ौरन पंद्रह कंबल बांटने के लिए दिला दिये। यह बड़ी बात थी।

उन्होंने यह भी देखा कि उन कंबलों में से अनिल ने एक भी कंबल अपने किसी परिचित के पास नहीं रहने दिया। जैनब की इच्छा एक कंबल स्वयं अनिल के लिए रख लेने की हुई, पर अनिल ने यह भी स्वीकार न किया।

उसने कहा कि ऐसा करने से उनका सेवा-कार्य, जो अभी प्रारम्भ ही हुआ है, समाप्त हो जायगा। किसी को अपने पर सन्देह करने का कोई कारण वह नहीं देना चाहता था।

अनिल ने तब स्वस्थ चित्त हो नवाब साहब से अपने वार्तालाप के विषय में फल निकालना चाहा तो उसे उसमें आशा की कोई किरण नहीं दिखाई दी। उसे लगा कि यह सब नवाब साहब का शिष्टाचार मात्र था। उनका हृदय उस समय भी कुत्ते के लंबे कोमल बालों में उलझा हुआ था।

क्षुधार्तों को भोजन चाहिए ही। यदि नवाब साहब कुछ नहीं कर सकते तो!

वे स्वयं हाथ पर हाथ रख कर नहीं बैठे रहेंगे। क्या करना चाहिए यह उसने बहुत सोचा। यदि कहीं अन्न का पता लग जाये तो प्राप्त करने की चेष्टा की जा सकती है। पर जहाँ उसका पता ही न हो, वहाँ क्या किया जाए? उसके सम्मुख जो मार्ग था उसका द्वार बिल्कुल बन्द था कि हलीम ने सूचना दी 'चार बोरी चावल ऊपर जा रहा है।'

'कहाँ?'

'फ़रीदपुर।'

'किसके यहाँ?'

'पता नहीं।'

'कोई साथ है ?'

'एक सिपाही।'

अनिल भँवर में पड़ गया।

फिर पूछा, 'कहाँ जा रहा है ?'

'फ़रीदपुर।'

'नहीं, किसके यहाँ ?'

'पता नहीं।'

अनिल विचार मग्न हो गया। चार बोरी चावल, उसने सोचा, इतने क्षुधात के के लिए एक दिन के लिए होंगे। पर एक दिन भरपेट मिल जाने का अर्थ जीवन का दस दिन बढ़ जाना है। तब तक सहायता आ जानी चाहिए। नवाब साहब भी कुछ तो सहायता देंगे ही।

सब लोग अनिल के मुख की ओर देख रहे थे।

अनिल ने पूछा, क्यों गफ़ूर ?'

'मैं क्या बताऊँ ?'

'क्यों हलीम ?'

'भैया, तुम अधिक समझते हो।'

अनिल फिर विचारमग्न हो गया। वह जानता है कि पूरा उत्तरदायित्व उसका है। लोगों की आत्मा इतनी मर गई है कि तनिक-सा भी उत्तरदायित्व लेने को तैयार नहीं।

हमीद ने कहा, 'भूखे मरने से तो एकदम मर जाना अच्छा है।'

अनिल ने जैसे समर्थन में शीश हिलाया, पर बोला नहीं। जैनब ने बात सुनी, वह भी आकर बैठ गई। उसने अनिल की ओर देखना प्रारम्भ किया।

अनिल ने जैसे सुप्तावस्था में फिर पूछा, 'वे किसके यहाँ जा रहे हैं ?'

'पता नहीं।'

एकाएक अनिल का मुख उतर गया। जैनब ने ध्यान से उसकी ओर देखा। सूचना दी, 'हरवंश का लड़का मर गया है।'

अनिल के कानों में यह समाचार पहुँचा। हरवंश का कुछ महत्त्व न था। 'लड़का मर गया है।' किसी ने बारंबार उसके हृदय पर आघात करके पुकारा, 'लड़का मर गया है।'

अनिल के मुख पर कठोरता आ गई। दाँत मिंच गये। नेत्र स्थिर होकर शीश ऊपर को उठ गया। बोला—'जब तक यहाँ मनुष्य भूखे मर रहे हैं किसी को यहाँ से अन्न बाहर ले जाने का अधिकार नहीं है।' उपस्थित लोगों में आशा की लहर दौड़ गई।

वह बैठा था। उठकर खड़ा हो गया। बोला—वह अन्न हमारा है।

सब लोग उठ खड़े हुए।

अनिल ने कहा—जितने आदमी यहाँ हैं, सब अपने ईमान की सौगंध खायें कि आध सेर से अधिक चावल अपने पास नहीं रक्खेंगे, सब दूसरों को बाँट देंगे, ऐसा कि सभी को मिल जाये।'

'अल्लाह तुम्हारा भला करे।' एक वृद्ध ने कहा।

'जब तक हम यह कसम नहीं लेते भगवान् इस काम की इजाज़त नहीं देंगे।'

'हम लोग अल्लाह की कसम खाकर.......।' वातावरण थर्रा उठा।

अवसर ने अनिल को और भी बल प्रदान किया। उसका शरीर तप उठा। उसने डाके को कुरबानी में परिवर्त्तित कर दिया।

आध घंटे पश्चात् पंद्रह व्यक्तियों ने गाड़ी को नगर से आध मील दूर रोक लिया।

'क्या है गाड़ी में?' अनिल ने गाड़ीवान से पूछा।

सब के चेहरों में केवल नेत्र-मात्र खुले थे। शेष भाग वस्त्र से ढंका था।

गाड़ीवान चुप रह गया। तहसील का एक सिपाही गाड़ी पर था। नीचे उतर पड़ा। पूछा—क्या है?

'इस गाड़ी में क्या है?' प्रश्न दुहराया गया।

सिपाही ने इन लोगों की ओर देखा, उत्तर देना ही उचित समझा। बोला—सरसों।

'ठीक कहते हो?'

'और क्या झूँठ बोलते हैं।'

'एक आदमी ऊपर चढ़कर देखो तो।'

सिपाही ने गाड़ी पर चढ़ते व्यक्ति को रोकने की चेष्टा की। लोगों ने उसे पकड़ लिया।

गाड़ी पर से सूचना आई, 'तीनों बोरियों में चावल है।'

सिपाही आतंकित हो गया। अनिल ने गाड़ीवान से कहा—उतरो और बैल खोल दो।

गाँड़ीवान स्थिति समझ गया। बैल खोल देने के लिए बढ़ा। सिपाही ने उसे डाँटा।

'कहाँ ले जा रहे हो?'

'डिप्टी साहब के यहाँ।'

'बोरियाँ उतार लो।'

लोग गाड़ी पर चढ़ गये और काम में जुटे।

सिपाही विवश क्रोध में पागल हो गया। चीखा, 'यह सरकारी माल है, एक-एक को गोली से उड़ा दिया जायगा।'

गफ़ूर और अनिल ने सिपाही को कसकर बांध दिया। गाड़ीवान ने स्वयं बंधन स्वीकार किया।

अनिल ने कहा—आध-आध सेर चावल इन दोनों के लिए इनके पास रख दो।

अनिल अकेला जब तीन घंटे पश्चात् गाड़ीवान का बंधन ढीला कर नगर के निकट पहुँचा तो उसका हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। सैकड़ों चूल्हे एक साथ जल रहे थे। प्रसन्नता की एक लहर क्षुधार्तों पर फैल गई थी।

अनिल को लगा कि उसके जीवन का यह क्षण यदि स्थायी हो जाता तो उसे स्वर्गसुख की कल्पना करने की आवश्यकता न होती।

— ३८ —

कुत्ते को स्वयं न नहला सकने से जो असंतोष नवाब साहब में उत्पन्न हुआ था, कंबल-हानि ने जिसमें वृद्धि की थी, वह अब उन्हें दुःखित करने लगा। उन्हें लगा कि भिखमंगों के हाथ उनको करारी हार हुई है।

उन्होंने वेलमेनिज़्म पर रुपये व्यय किये हैं। अपने व्यक्तित्व के कोने में जहाँ-जहाँ छुपी शक्ति थी, उन्होंने उसे कुरेद-कुरेदकर प्रत्यक्ष होने को बाध्य किया था। वे म्युनिसपैलिटी के सभापति अपने इसी प्रखर व्यक्तित्व के कारण हो सके थे।

और वह छोटा-सा भिखमंगा आकर उन्हें पराजित कर गया! तहसीलदार का नाम सुनते ही वे दब क्यों गये? अपनी यही दुर्बलता उन्हें अब खलने लगी। अनिल को द्वेष की दृष्टि से देखने लगे।

पर उनका यह असंतोष अनिल तक ही सीमित न रहा, वरन् शीघ्र ही सब क्षुधार्तों के प्रति हो गया। जिनके लिए उन्होंने काफ़ी परिश्रम किया था उन्हीं के विरुद्ध वे अब तर्क खोजने लगे।

तर्क का कार्य खंडन है, पर वह स्वयं अत्यंत उत्पादक है। शंका उत्पन्न करने में वह नेतृत्व करता है। नवाब साहब ने सोचा—क्या कारण है कि यह लोग नगर से टलने का नाम नहीं लेते! आ-आकर गाज़ीपुर में एकत्र होते जाते हैं।

यकायक उनकी समझ में आ गया। भारतवासी आलस्य के लिए प्रसिद्ध हैं। यदि आलसी न होते तो आज इस अवस्था में क्यों होते?

कभी-कभी उनके मन में आता कि उनके देशवासी वेलमेनिज़्म से लाभ नहीं उठाते इसी से उनकी दशा इतनी हीन है। इसकी सहायता से सभी एक-एक म्युनिस्पैलिटी का सभापति हो सकते थे।

प्रश्न का उत्तर उन्हें प्राप्त हो गया। गाज़ीपुर में इन लोगों को बिना हाथ-पैर हिलाये भोजन मिल जाता है इसी से वे यहाँ एकत्र हुए जा रहे हैं, और टलने का नाम नहीं लेते।

उनकी न्याय-बुद्धि चेतन हुई; यह नगरवासियों पर अधिकता है।

उनका अधिकार जागा—वे चुंगी के सभापति हैं, इनके विरुद्ध नगरवासियों की रक्षा करना उनका कर्त्तव्य है।

उन्होंने नौकर से तत्क्षण डाक्टर साहब को बुलवाया। डाक्टर साहब लंबाई-चौड़ाई में लगभग समान थे, इसलिए दोनों पक्षों में एक संतुलन था। किसी को दूसरे के विरुद्ध कोई शिकायत न थी।

डाक्टर साहब चुंगी के स्वास्थ्य-विभाग के प्रबंधकर्त्ता थे। उनके कुर्सी पर बैठते ही नवाब साहब ने कहा—यह पीड़ितों की समस्या जटिलतर होती जा रही है।

'जी!'

डाक्टर साहब ने सुन भर लिया। संसार का अनुभव उन्हें पर्याप्त था। किसी विषय पर जिस मनुष्य से बात करते थे, पहिले उसकी संमति जान लेते थे और फिर उसकी संमति का रुख देखकर उसी के अनुसार उसपर टीका-टिप्पणी करते थे।

फलतः वे किसी के बुरे न थे, और किसी को उनसे कोई शिकायत न थी। उनसे योग्य और कुशल व्यक्ति नगर भर में न था।

'दिनों-दिन उनकी संख्या में वृद्धि हो रही है।'

'जी!'

'मैं अभी सोच रहा था कि अल्लामियाँ ने जो यह अकाल भेजा है तो क्यों?'

'जी!'

'बहुत दिनों से मेरा दिमाग परेशान था।'

'जी!'

'आप जानते हैं, मैं अल्लाह-परस्त आदमी हूँ।'

'आपको देखकर तो इस साल डिप्टी साहब ने रोज़े रखे थे। कहते थे कि वे तो मज़हब की तरफ़ से बिल्कुल लापरवाह हो गये थे। गाज़ीपुर म्युनिस्पैलटी के सिर पर ऐसा अल्लाह-परस्त आदमी है यह जानकर उन्हें अज़हद खुशी हुई।'

नवाब साहब प्रसन्न हुए। बोले—बुजुर्गों की दुआ है। अल्ला का करम है। जबसे होश सँभाला है मज़हबी फरायज़ अदा करने में अपनी समझ में भूल नहीं की, वैसे तो इंसान गलती का पुतला है।

'जी!'

'अल्लाह जो करता है, अच्छा ही करता है।'

'जी, इसमें क्या शक है।'

'मैं इसी से परेशान था कि आखिर इस कयामत के बरपा करने में अल्लाह ने क्या भलाई देखी है।'

'जी !'

'वह राज़ मुझपर आज खुल गया है ।'

'वाह नवाब साहब ! आपके दिमाग़ की सभी तारीफ़ करते हैं ।'

'डाक्टर साहब ! आप जानते हैं कि हिंदुस्तान की आबादी बराबर बढ़ती जा रही है ।'

'जी, बिल्कुल खरगोशों की तरह ।'

'और उससे हमारी ज़िंदगी का दर्जा गिरता जा रहा है । बस, अल्लाहमियाँ उसे गिरने नहीं देना चाहते ।'

'क्या बात है नवाब साहब !'

'इसी लिए जो लोग हमारी ज़िंदगी के दर्जे को नीचे गिरा रहे हैं, उन्हें वह अपने यहाँ बुलाये ले रहा है ।'

'वाह वा !' डाक्टर साहब ने मुग्ध होते हुए कहा !

नवाब साहब बोले—इन लोगों की तादाद नगर में जिस तरह घटे वही करना चाहिए ।

'इसमें क्या शक है । शहर की सफ़ाई को जो धक्का पहुँचा है वह वर्णन से परे है । हैज़े के कई केस हो चुके हैं ।'

'मैं चाहता हूँ कि आप इन लोगों को नगर में अधिक समय तक रहने के लिए कोई प्रोत्साहन न दें । नगर के हित की जिम्मेदारी हमारे ऊपर है । यदि इस जिम्मेदारी को निभाने में हमें कोई काम संगदिली का भी करना पड़े तो अपना फ़र्ज़ समझकर पीछे न हटना चाहिए ।'

'आपका फ़रमाना बजा है ।'

नवाब साहब ने नौकर को आवाज़ दी । चाय और टोस्ट आये । अंडा तोड़ते हुए नवाब साहब बोले—अधउबले अंडे के बराबर दूसरा भोजन कोई नहीं ।

डाक्टर साहब ने समर्थन किया—आप ठीक कहते हैं । अंग्रेज़ लोगों का भी ऐसा ही खयाल है । मैं पढ़ रहा था कि लार्ड फौक्सवाटर जब घूमने जाते थे तो

कम-से-कम एक दर्जन अधउबले अंडे अपने साथ ले जाते थे। कहते हैं कि जब वे मरे तब भी उनकी जेब में दो अंडे मौजूद थे।

'हां, वे लोग चीज़ों की कदर जानते हैं।'

— ३९ —

तीन घंटे पश्चात् स्वास्थ्य-विभाग के दफ़्तर में जब अनिल और गफ़ूर ने जाकर डाक्टर सा'ब से भेंट की इच्छा प्रकट की, तो चपरासी उन्हें अनिच्छापूर्वक भीतर ले गया।

अनिल ने कहा, हम लोग कल नवाब साहब से मिले थे। उन्होंने फरमाया था कि आप गरीबों की मदद करने में हमारी सहायता करेंगे।'

डाक्टर साहब ने पहिले उनके मुख की ओर देखा और उनके वस्त्रों पर अपनी दृष्टि जमा दी। उनके व्यक्तित्व का अनुमान उन्होंने किया। छत पर सरकती हुई छिपकली को देखते हुए बोले—नवाब साहब से आज मैं मिला, पर उन्होंने इस विषय में कोई चर्चा नहीं की।

अनिल का मुख उतर गया। वह बोला कुछ नहीं, गफ़ूर की ओर देखा। गफ़ूर ने दफ़्तर में चारों ओर दृष्टि डाली। अनिल ने अपने को सँभाला। बोला—डाक्टर साहब, नवाब साहब अत्यंत व्यस्त व्यक्ति हैं। जिम्मेदारियों की अधिकता में यदि यह छोटी-सी बात उन्हें याद न रही तो कोई आश्चर्य नहीं।

डाक्टर साहब ने कुछ चकित होकर अपनी दृष्टि अनिल के मुख पर जमा दी और फिर आँखें बंद कर जँभाई लेते हुए विचार मग्न हो गये। बोले, 'एक बहुत बड़ी कठिनाई है जो आज की घटना से खड़ी हो गई है।'

अनिल ने अपने हृदय को धड़कने से रोकते हुए पूछा, 'क्या?'

डाक्टर साहब ने मुट्ठी से मेज़ पर बल डालते हुए कहा—दस बोरी सरकारी चावल भूखों ने लूट लिये हैं। अफ़सरों का विचार है कि यह काम आप ही लोगों में से किसी का है।

अनिल ने कहा—महाशय, आपके इस दोषारोपण का हम विरोध करते हैं।

पुलिस अपनी दुर्बलता दूसरों पर व्यर्थ दोषारोपण कर छुपाना चाहती है। हमसे, ख़ैर, कोई मतलब नहीं। पुलिस का काम है, वह जाने।

डाक्टर स्तंभित हो गये।

'हम तो केवल आपसे यह प्रार्थना करने आये हैं कि पीड़ितों के बासे के निकट सफ़ाई का प्रबंध अपर्याप्त है। हैज़े से कुछ मृत्यु हो चुकी हैं।'

डाक्टर ने अनिल की ओर नेत्र फाड़कर देखा, जैसे कि सफ़ाई और हैज़े के नाम लेने का अधिकार एक मात्र उन्हीं को हो।

बोले—जो कुछ हम उचित समझते हैं किया जा रहा है।

अनिल ने अपने को संयमित करते हुए कहा—आप क्या नगर में हैज़ा फैलाना उचित समझते हैं?

अपने वाक्य का यह अर्थ निकलते देख डाक्टर चेतन हो गये। बोले—मैंने यह कभी नहीं कहा।

अनिल ने गंभीरता से कहा—नगर के निवासी अपने स्वास्थ्य-विभाग के अध्यक्ष की दृष्टि में अपने जीवन का यह मूल्य देखकर विशेष संतुष्ट न होंगे।

डाक्टर के नयनों में भय की छाया स्पष्ट आ गई। बोले—तुम मेरे विरुद्ध इस प्रकार का मिथ्यारोप किस आधार पर कर सकते हो?

'आपके वाक्य का यही अर्थ निकलता है और हमारे मित्र के संमुख वह वाक्य कहा गया है।'

डाक्टर साहब अचानक नम्र हो गये, बोले—एक वाक्य को लेकर उसके पीछे पड़ने से क्या लाभ? आपकी समझ में क्या किया जाना चाहिए!

अनिल ने संतोष की सांस ली, बोला, 'पीड़ितों में औषधि-वितरण का प्रबंध होना चाहिए।'

डाक्टर बोले—परंतु हमारे पास इतना धन नहीं है।

अनिल ने कहा—कीमती विदेशी औषधियों की बात नहीं कहता। साधारण जड़ी-बूटियाँ इस दिशा में काफ़ी सफल हो सकती हैं।

'हमारे पास कोई वैद्य नहीं, न हकीम ही है। म्युनिस्पैलिटी इस तनिक-से काम के लिए किसी को नियत न करेगी।'

अनिल ने कहा—ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति से नगर को लाभ ही होगा। सैकड़ों मनुष्य मरने से बच जायेंगे।

डाक्टर ने कुर्सी में अपने शरीर को सीधा किया और वाणी में अधिकार लाते हुए कहा—मैं इस विषय में आपसे विवाद नहीं करना चाहता; पर सूचनार्थ कहे देता हूँ कि नगर के स्वास्थ्य का उत्तरदायित्व विधानानुसार केवल डाक्टर ही ले सकते हैं। वैद्य या हकीम नहीं।'

अनिल ने कहा—यदि डाक्टर उत्तरदायित्व लेने को तैयार न हों तो ?

'कौन कहता हैं कि वह इसके लिए तैयार नहीं है ?'

'आप ही तैयार नहीं है। हैज़े को द्वार पर खड़ा देखकर भी आप कुछ नहीं कर रहे हैं।'

डाक्टर साहब को यह बुरा लगा। बोले—इस विषय में जो कुछ मुझे करना है, मैं करूँगा। किसी को······।

'हाँ, वह तो आप करेंगे ही। जिनका रुपया खाकर आप अधिकारवान बने हैं उन्हीं को हैज़े में तड़पते देखने की व्यवस्था आप कर रहे हैं।' अनिल के वाक्य में कुछ तेजी थी।

उसका प्रभाव डाक्टर साहब पर पड़ा। बोले—'तुम लोग अभी दफ़्तर से बाहर चले जाओ। कमबख्त भूखे मरते हैं, हमारा खाते हैं, और···और' वे रुके 'कमबख़्त मर भी तो किस तेजी से रहे हैं कि हम क़ब्रें खुदवाते-खुदवाते तंग आ गये।'

अनिल चुप रहा। गफ़ूर ने लौटकर कहा—डाक्टर साहब, इस ज़िंदगी में शायद फिर मुलाक़ात न हो सकेगी। इस चेहरे को अच्छी तरह पहिचान लीजिए। क़यामत के दिन अल्लाह के सामने मुलाकात अवश्य होगी। जो कुछ आपने कहा है, भूल न जाइएगा।

डाक्टर साहब ने पुकारा—नबीबख्श, इन लोगों को यहाँ से निकाल दो।

– ४० –

जब वे अपने स्थान की ओर लौटे तो उन्होंने देखा कि पुलिस के सिपाही क्षुधार्तों में घूम रहे हैं, और सब पुरुषों को पकड़-पकड़कर एक स्थान पर एकत्रित कर रहे हैं। उन्होंने देखा कि खुर्शेद ज्वर का बहाना किये ढेर हुआ पड़ा है और बुरी प्रकार काँप रहा है।

सिपाहियों ने उसे घसीटकर खड़ा किया और केंद्रीय वृक्ष की ओर ले चले। गफ़ूर और अनिल भी पकड़कर लाये गये। पचास पुरुषों का समूह वहाँ बैठा था। उनके सामने दो-तीन सेर चावल पड़े थे जो सिपाहियों ने क्षुधार्तों के गूदड़ों को फाड़-फाड़कर एकत्र किये थे।

स्त्रियाँ चिल्ला रही थीं, बच्चे रो रहे थे। आँसू और चीत्कार के बीच न्याय अपने पंजे पैनाये खड़ा था।

थानेदार ने चीखकर पूछा—हरामज़ादों, बताओ, तुममें से कौन-कौन था?

लोगों पर स्तब्धता छा गई। कोई बोला नहीं। नारियों के वृंद में से जैनब की दृष्टि अनिल पर ठहर गई। उसकी दृष्टि विश्वासपूर्वक कहती जान पड़ी, जिसने उलझाया है वही सुलझायेगा।

अनिल ने जैनब की ओर देखा, फिर सिपाहियों पर होती उसकी दृष्टि थानेदार पर जम गई। स्त्रियों का क्रंदन बल पकड़ गया।

थानेदार फिर चीखे—बताओ, तुममें से कौन-कौन था, नहीं तो सबको उल्टा टंगवा दूँगा।

अनिल जो पीछे की ओर बैठा था, उठ खड़ा हुआ।

थानेदार साहब के नेत्र उसपर लग गये। बैठे व्यक्तियों ने उसकी ओर देखा। वह सबके आगे जाकर खड़ा हो गया। थानेदार इसकी आशा न कर रहे थे।

क्षण भर को वह स्तंभित हो गये। फिर पूछा—क्या है?

अनिल ने सबकी ओर देखा और फिर थानेदार साहब के नयनों में देखते हुए बोला—अपराध सब मेरा है, आप मुझे ले चलिए।

जैनब के मुख से हल्की चीख निकल गई। पर दूसरे क्षण उसका शीश ऊँचा हो गया। छाती फूल उठी।

थानेदार ने अनिल की ओर देखा। उत्तर इतना अप्रत्याशित था कि वह उसपर विश्वास न कर सके। तभी एक घटना और हो गई। गफ़ूर उठ खड़ा हुआ, उसके पश्चात् एक-एक कर सब पुरुष उठकर खड़े हो गये।

सामूहिक कंठ से निकला, 'हम अपराधी हैं, हमें ले चलिए, भोजन दीजिए।'

नारियाँ चीत्कारीं, 'हम भूखी हैं। हमें ले चलिए, भोजन दीजिये, अल्लाह आपका भला करेगा।'

बालकों ने चिल्लाकर भूख की इस पुकार को शक्ति दी।

थानेदार साहब को लगा कि मनुष्य ही नहीं डाल-पात भी चिल्ला रहे हैं—हम अपराधी हैं, हमें ले चलिए, भोजन दीजिए, अल्लाह आपका भला करेगा।

थानेदार मौलाना एकरामुद्दीन धार्मिक व्यक्ति थे। भूखों की यह आवाज़ उनके अंतर को हिला गई। वे भूल गये कि वे पुलिस के व्यक्ति हैं। उनका शरीर काँप उठा। अपने भीतर उन्होंने हाथ जोड़कर अल्लाह से माफ़ी माँगी। आँसू आने को हुए, मुख फेरकर उन्हें दबाया। गंभीरता चेहरे पर लाकर बोले—तुम लोग बैठ जाओ।

उन्होंने जो आज्ञा दी, सिपाहियों ने उसका पालन करा लिया।

अनिल ने कहा—मौलाना साहब! मैं अपराधी हूँ। इन लोगों को व्यर्थ तंग करने से कोई लाभ नहीं है। मुझे ले चलिए, व्यवस्था की माँग पूरी हो जायेगी।

मौलाना ने सिर से पैर तक उस दुबले-पतले सूखे युवक को देखा। उसके मुख पर जो शांति और नयनों में जो संतोष उन्होंने पाया उससे उन्हें ईर्ष्या हुई। क्या करें, यह निश्चय न कर पाये। पूछा—तुम्हारा नाम?

'अनिल।'

'क्या करते हो?'

'इन्हीं लोगों की भाँति भूखा मरता हूँ।'

थानेदार एक डग पीछे हट गये। साधारण व्यक्ति के साथ वह व्यवहार कर सकते थे, पर नर-कंकालों के प्रति क्या रुख रखें यह समझ में न आया।

मन में गूँजा, 'क्या करते हो? भूखा मरता हूँ।'

उन्हें अपने बच्चों का ध्यान आया। उन्होंने अनिल को अलग बुलाया। पूछा—ठीक बताओ......।

अनिल ने उत्तर दिया—मुख्य अपराधी मैं हूँ। जितनी संख्या क्षुधार्तों की आप देख रहे हैं, सभी को उस चावल का भाग मिला है। आध सेर से अधिक किसी के हिस्से में नहीं आया। अन्न खाने में अपराधी सब हैं, पर मुख्य अपराधी मैं हूँ, यद्यपि मैंने एक छटाँक से अधिक उसमें से नहीं लिया है।

मौलाना अपने कानों पर विश्वास न कर सके। तभी खुर्शेद और गफ़ूर निकट आ गये। गफ़ूर बोला—हजूर, आप इस लड़के की बात का एतबार न करें। यह कहाँ तक अपराधी हो सकता है, यह आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं, असली अपराधी तो मैं हूँ।

खुर्शेद ने भी वही बात दुहराई।

अन्य लोग भी उनके निकट आने लगे। पुलिस ने उन्हें दूर ही रोक दिया। मौलाना बड़े पशोपेश में पड़ गये। यदि भूख का प्रश्न न होता तो वे अपने अधिकारों का प्रयोग निर्द्वंद्व करते। बोले—तुम तीन व्यक्ति हो। हमारे पास भी भोजन की......। मैं एक व्यक्ति को ही गिरफ्तार करना चाहता हूँ। तुम तीनों आपस में फ़ैसला कर लो कि कौन अपराधी है।

अनिल ने कहा ईमानदारी से तो अपराधी मैं हूँ, मुझे ही जाने दो।

गफ़ूर ने विरोध किया—तुम हमारे दिमाग हो। तुम्हारे जाने का अर्थ यह है कि भविष्य में किसी प्रयत्न की आशा न करें।

खुर्शेद ने दोनों का विरोध किया—गफ़ूर भाई, यदि अनिल दिमाग है तो तुम हमारी भुजा हो। तुममें से किसी का जाना उचित नहीं। मैं जा सकता हूँ। एक लड़का है, अल्लाह की मर्जी होगी तो तुम लोगों के साथ पल जायेगा।

अनिल और गफ़ूर स्तब्ध रहे। खुर्शेद के कथन में सत्य का अंश अधिक ही था। वह आगे बढ़ गया। बोला—महाशय, मुझे ले चलिए, असली अपराधी मैं हूँ।

खुर्शेद को साथ ले थानेदार चले तो उसका बारह वर्ष का लड़का, जिसकी मा अभी तीन दिन पहिले मरी थी, आकर पिता से चिपट गया।

खुर्शेद ने उसे गफ़ूर को सौंपना चाहा; गफ़ूर ने जैनब को ओर संकेत किया।

खुर्शेद जैनब को लक्ष्य करके बोला—यह बेटा, बहन, तुम्हें सौंपे जाता हूँ, देखना, जब तक दुनियाँ में रहे.....। इससे आगे वह न बोल सका।

जैनब ने शमशाद को छाती से लगा लिया।

खुर्शेद शीघ्र ही आँखों से ओझल हो गया। अनिल और गफ़ूर गंभीर हो गये। अनिल को लग रहा था जैसे कि वह महान पातक करके खड़ा हो। उसके पैर डगमगाने लगे। निकट था कि वह भूमि पर गिर पड़ता कि गफ़ूर ने उसे बीच में सँभाल लिया।

—४१—

अनिल ने यद्यपि सबको अपने पास चावल न रखने का आदेश दिया था फिर भी कुछ लोगों ने उसके कथन की अवज्ञा की। संसार में जितने मनुष्य अपराध करते हैं सभी को परमात्मा उसी समय दंडित नहीं करता। यदि वह ऐसा करने लगे तो अपराधों की संख्या में पर्याप्त कमी हो जाये, पर साथ ही संसार की बहुरूपता भी विनष्ट हो जाये।

तैयब ने चावल रखा कि मनमाना पैसा लेगा और देगा। पर पैसा जो था वह तो पहिले ही क्षुधार्तों के पास से जा चुका था। सोचा—अपने ही खाने के काम में आयेगा।

पर अपने पास देखकर कहीं अन्य क्षुधार्त उसपर टूट न पड़ें इसलिए अत्यंत गुप्त रीति से उसके रखने का प्रबंध किया। इतना करने पर भी उसके पास कुछ अन्न है, यह लोगों में अफ़वाह फैल गई।

तैयब सोचता था कि उसने अनिल, पुलिस और संगी क्षुधार्तों सबको धोका दिया है। जिन लोगों ने समझने की आवश्यकता समझी, उन्होंने समझा कि कुछ

भी हो, तैयब अनिल का संबंधी है। यदि दस-बीस सेर चावल छुपाकर उसे दे दिये गये होंगे तो कोई बड़ी बात नहीं।

निकटवर्ती समालोचक ने कहा—ऐसे लोगों पर क्या विश्वास किया जाये, जो नेता बने फिरते हैं, और नेतापन की आड़ में अपनी हथेली गरम करते हैं।

इस प्रकार की कल्पनाओं और तर्कों ने कुछ उत्साही लोगों को तैयब और अनिल दोनों के विरुद्ध क्रुद्ध कर दिया।

तैयब से कुछ हटकर एक दंपति का डेरा था। रहमान और उसकी पत्नी नूरजहाँ। रहमान की तबियत जो भूख से खराब होनी प्रारंभ हुई तो अब रोग पर समाप्त होने जा रही थी।

वह धीरे-धीरे सूखता जा रहा था। नूरजहाँ उसके निकट बैठती, उसके सूखे हाथों को अपने हाथ में लेती और एकटक उसके मुख की ओर देखती रह जाती। जीवन के सुखद क्षण स्मरण आ जाते। जब वह दोनों धान के खेतों में एक साथ मज़दूरी करते थे, लौटते समय तालाब में से मछलियाँ चुराकर वापिस आते थे।

इसी बीच में अल्लाह ने एक लड़का दिया। सबने खुशी मनाई। पर साल भर का होकर वह चल बसा। नूरजहाँ ने सोचा, आशा की जैसे कि अपने को ठगने की चेष्टा कर रही हो। सोचा, यदि वे दोनों जीवित हैं तो संतानें और हो जायेंगी। पति की छाती में शीश छुपाकर, उसके प्रेम में उसने मा के हृदय को फटने से रोका और अब वही प्यारा व्यक्ति धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहा था।

रहमान की जीवन पर पकड़ अत्यंत कठोर थी। मरने की उसकी इच्छा तनिक भी न थी। दुःख-सुख में कैसे भी हो वह अपनी नूरजहाँ का साथ नहीं छोड़ना चाहता था।

नूरजहाँ ने मुख फेरकर आँसू पोंछे और फिर हाथ से उसके ललाट पर पड़े बालों को पीछे की ओर हटा दिया।

रहमान ने नूरजहाँ की ओर देखा, दो बूँद पानी उसके नयनों में आ गया। वह जानता है कि उसका रोग शरीर में बल आते ही चला जायेगा। पर शरीर में बल कहाँ से आये।

उसे ज्ञात है कि दान का जितना अन्न संभव है उतना नूरजहाँ पा रही है, पर वह अपर्याप्त है। कितने ही दिनों से अधिक अन्न पा लेने की बात उसके मन में उठ रही है। वह उसे अपने मन में बलात् बंद रख रहा है। यदि वह अपनी इस इच्छा को प्रकट करेगा तो नूरजहाँ को व्यर्थ दुःखी करेगा। नूरजहाँ अधिक अन्न कहाँ से लायेगी?

रहमान का हाथ दबाकर नूरजहाँ ने पूछा—'क्यों, क्या बात है?

रहमान ने नेत्र मूँद लिये। नूरजहाँ के नेत्रों में देखने की उसकी शक्ति न रही। वह जैसे दृष्टि मिलते ही रो उठेगा। उसका हृदय भर आया।

पर नेत्र मूँदने से काम चला नहीं। नेत्रों में जो पानी भरा था, वह पलकों से बाहर आ गया। नूरजहाँ ने आँसू पोंछते हुए पूछा—क्यों, क्या बात है?

पति के नयनों में आँसू देखकर उसके पैरों के नीचे से पृथ्वी सरक गई। वह भयभीत हो गई। रहमान अब कितना ही क्षीणप्राण था, सर्वदा उसे साहस दिया करता था। वह कष्ट के यह दिन पति की मानसिक शक्ति के सहारे काट रही थी। आज अचानक उसे टूटता देख वह घबरा गई।

बोली—तुम्हें मेरी कसम, बताओ बात क्या है?'

रहमान ने बहुत चाहा कि वह न बोले, पर समय आता है, जब मनुष्य की दुर्बलता उसकी शक्ति के विरुद्ध सफल हो जाती है और तनिक से आश्रय को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ा देती है। दृढ़प्रतिज्ञ क्षत्रिय क्षमायाची होकर कायर की भाँति रोने लगता है।

उसके मुख से निकला—'यदि कहीं से चार दिन भी पेट भर भोजन मिल जाता तो···!'

अब नूरजहाँ की बारी थी। उसकी अपनी सीमाएँ वैसे ही स्पष्ट थीं, अकाल ने उन्हें स्पष्टतर कर दिया था। वह भोजन कहाँ से लायेगी? आशा जगने से पहिले ही विफलता के बोझ से कुचल उठी।

रहमान ने कहने को कह तो दिया, पर बहुत बड़ी भूल वह कर बैठा है, यह उसे शीघ्र ज्ञात हो गया।

— ४२ —

नूरजहाँ पति की इस अंतिम इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न करने लगी।

उसे ज्ञात हुआ कि तैयब के पास चावल हैं, यदि वह उससे प्राप्त कर पाती तो!

पहिले नूरजहाँ ने तैयब से पड़ोसी के नाते अल्लाह के नाम पर विनती की। तैयब ने उसे डाँटकर भगा दिया। नूरजहाँ अपना मुख लेकर चली गई।

पर उसने हार नहीं मानी। तैयब के पास भोजन है; वह जैसे भी होगा उसे प्राप्त करेगी।

रहमान के आँसू वह नहीं सह सकती। उनकी कल्पना करते ही जैसे उसके प्राणों में एक घुटन प्रारंभ हो जाती। साँस बंद होने लगती और लगता कि वह फट जायगी। अंग इधर-उधर बिखर जायेंगे।

कुछ समय में अँधेरा हो गया। वह इधर-उधर घूमकर पुनः लौट पड़ी। तैयब की झोपड़ी के चक्कर काटने लगी।

सलीमा ने पूछा — 'कौन ?'

तैयब ने वहीं बैठे-बैठे उत्तर दिया—'कोई नहीं।'

नूरजहाँ ने प्रश्नोत्तर दोनों सुने। आशा में वृद्धि हो गई। वह वहीं इधर-उधर चक्कर काटती रही।

तैयब कुछ देर में बाहर गया। नूरजहाँ से बोला—'तू जायेगी नहीं ?'

नूरजहाँ उसके पैरों पर गिर पड़ी। बोली—'अल्लाह के नाम पर कुछ चावल दे दो।'

तैयब ने झटका देकर अपने को छुड़ा लेना चाहा—पर नूरजहाँ ने उसके पैर न छोड़े।

वह अपने को अत्यंत दृढ़ बना लेने का प्रयत्न कर रहा था। वह भी भूखा मर रहा है, कि अचानक करुणा का एक झोंका आया। वह हिल गया और पावभर के लगभग चावल उसने नूरजहाँ को दे दिये।

तैयब ने चावल देकर झोंपड़ी में प्रवेश किया तो बच्चे सो चुके थे। सलीमा अंधकार में उसकी प्रतीक्षा करती ऊँघ गई थी।

तैयब ने सलीमा को जगाया नहीं। वह चुपचाप लेट गया। पर उसका मन झोंपड़ी से बाहर चला गया। नूरजहाँ से वह अपरिचित नहीं। वह नवयुवती है।

नूरजहाँ का स्वरूप बारंबार उसके संमुख आने लगा। उसे अनुभव हुआ कि नूर-जहाँ उसकी कृतज्ञ है और उसका नूरजहाँ पर विशेष अधिकार है।

– ४३ –

तीन-चार दिन रहमान को जो भोजन अधिक मात्रा में प्राप्त हुआ, उसने उसमें नवीन शक्ति का संचार कर दिया। जब उसे इस शक्ति का अनुभव हुआ तो उसकी बुद्धि जागी। मन में प्रश्न उठा कि नूरजहाँ ने यह अन्न कहाँ से, कैसे प्राप्त किया है?

क्षुधार्तों के इस पड़ाव में बात करनेवालों का अभाव न था। बातें जितनी अधिक होती हैं, सूक्ष्मता की ओर उनकी उतनी ही प्रगति होती है। रहमान की शक्ति को एक नवीन सहायक प्राप्त हो गया। अपने अत्यंत हितैषी पर भोजन के विषय में कम भाग्यशाली जफर के मुख से उसने कुछ सूचनाएँ प्राप्त कीं। उसका चेहरा लाल हो गया।

मुट्ठी भर चावलों का जो मूल्य वह चुका रहा है वह उसे असह्य हो गया। उसने जफर से बातचीत बंद कर दी। अपने भीतर खौलने लगा। जी में आया कि जो भात खाया है सब कय कर दे।

उसने मुख फेर लिया और काँपने लगा। नूरजहाँ जब आई तो वह अत्यंत गंभीर बन गया। साधारण अवस्था में वह उसे गालियाँ देता और पीटता भी खूब। और फिर घर से निकाल देता। पर आज वह उसकी ओर देखता भर रह गया।

नूरजहाँ ने जब नित्य की भाँति चावल उबाले तो रहमान ने कहा—चावल नुकसान करते हैं, पेट में दर्द हो जाता है।

स्वर में कुछ था पर नूरजहाँ का ध्यान उस ओर नहीं गया।

– ४४ –

रात्रि के अंधकार में अनिल ने स्वप्न-सा देखा कि कोई मनुष्य उसे हिलाकर जगा रहा है। उसने अनुभव किया कि मनुष्य सूखा कंकाल है, जो थर-थर काँप रहा है।

पूछा—'क्या बात है भई!'

कंकाल ने अनिल का हाथ और भी कठोरता से पकड़ लिया। बोला—'मेरे साथ आओ।'

अनिल उसके साथ गया। कुछ दूर चलकर वह कंकाल घूमकर खड़ा हो गया और अनिल के दोनों कंधों को दृढ़ता से पकड़ लिया। शिकंजे की भांति उन्हें जकड़ते हुए बोला—'सुनते हो, मैं तुम्हारे तैयब का खून कर आया हूँ।

अनिल चकित उनींदा खड़ा रहा। कौन व्यक्ति है यह पहिचान न सका। पर व्यक्ति उसे पहिचानता था।

अनिल ने पूछा—'बात क्या है? घबराओ नहीं।'

रहमान कांपता रहा। अनिल को छोड़ने का उसका साहस न हुआ। उसके पैर महान दुर्बलता अनुभव कर रहे थे।

वह फिर बोला—मैं तैयब का खून करके आया हूँ। ऐसे कीड़े का दुनिया से उठ जाना अच्छा।

अनिल ने उस व्यक्ति के पंजे से अपने को छुड़ाकर उसे शांत करने को चेष्टा की।

पर रहमान ने अपनी सूचना तिहराई। वह बैठेगा नहीं। उसने तैयब के साथ…।

अनिल ने कहा—यदि तुमने खून किया है तो थाने जाओ और उसका प्रायश्चित्त करो।

थाने का नाम सुनकर पहिले तो रहमान का हृदय कांपा, परंतु फिर उसे अनुभव हुआ कि संसार में और कोई स्थान उसके लिए अब रह नहीं गया है। जिसके लिए वह जीना चाहता था वही उसकी पहुँच के बाहर निकल गई है। उसके लिए अब जीवन-मरण में कोई भेद नहीं है। एक खेल खेल जाने की भावना उसमें आ गई। लड़खड़ाते पैर जम गये। घूमता मस्तिष्क नशे में स्थिर हो गया। वह थाने की ओर चल पड़ा।

पहरे पर जो सिपाही था उसकी ओर उसने दो क्षण देखा। संगीन की चमक एक भय देकर मोहक हो उठी।

'कौन ?' सिपाही ने ललकारा।

रहमान प्रकाश में गया। बोला—हवलदार साहब, मैंने ख़ून किया है।

सिपाही ने सिर से पैर तक उसे घूरा। डाँटकर बोला—जायेगा नहीं यहाँ से ! हरामज़ादे रात को भी चैन नहीं लेने देते।

रहमान ने कहा—हवलदार साहब !

'मैं सब समझता हूँ। यह चालाकी यहाँ न चलेगी। साले को बाहर खाने को नहीं मिला तो सोचा कि चलो थाने में। यहाँ कोई सदाबरत खुला है ?'

रहमान ने एक क्षण उसकी ओर देखा। वह हिला नहीं।

'जाता है या नहीं। संगीन भोंक दूँगा।' रहमान ने चमकती संगीन की ओर देखा। जिसके मोह में वह पड़ा था, उसी के दर्शन कर अब काँप उठा। दो क्षण ठिठका, काँपा और फिर घूम पड़ा।

उसके शरीर का समस्त बल जैसे उस चमकती संगीन ने पी लिया हो। चार कदम चला और फिर उस अभेद्य अधंकार में मानव नेत्रों से सदा के लिए अदृश्य हो गया।

– ४५ –

अनिल के संमुख जीवन की कठिनता बढ़ती जा रही थी। इसलिए नहीं कि उसे कुछ करना पड़ता था, वरन् इसलिए कि कुछ करना न पड़ता था। भोजन जो मिलता था, लंगरों से मिल जाता था। और यह भोजन एकत्रित करने में ही प्रायः पशुओं की भाँति, उसका सब समय निकल जाता था।

वह अपने चारों ओर देखता ; रोग और अभाव की व्यापकता और गंभीरता। उसपर विचार करता। जी चाहता कि इन्हीं भूखों और रोगियों के निकट रहे। मरते समय दो सहानुभूति के शब्द कहे। पर उसे भोजन के लिए कुत्तों की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर दौड़ना पड़ता है।

मानव की इस अवस्था पर उसे दया आती। वह असंतुष्ट हो जाता, और फिर यह दया घृणा में परिवर्त्तित हो जाती। वह ऐसा अन्न ग्रहण क्यों करे ?

पर जीवन का तकाज़ा था। विभिन्न शक्तियों और पदार्थों को एकत्र कर किसी जादूगर ने फूँक मारकर जो एक चलता-फिरता बक्स बना दिया है, उसे वह सरलता से रखने को तैयार था। इसलिए मन मार भोजन के लिए जाता रहा।

निकट ही एक बुढ़िया पड़ी थी। अपने पति, पुत्र, वधू सबको खोकर उसके जीवन का आश्रय अब एक चार वर्ष का पोता रह गया था। यह अरविंद अनिल को बहुत भाता था। दिन भर वह उसी के पास खेलता रहता था।

अनिल जब उधर से निकला तो पुकारा—'अरविंद !'

पर बालक का विहँसता स्वर उसे सुनाई न पड़ा। अनिल के हृदय में एक पीड़ा हुई। उत्सुकता बढ़ी। वह बुढ़िया के गूदड़ों के निकट गया। देखा, बुढ़िया का मुख उतरा हुआ है। पूछा—'अरविंद कहाँ है !'

वृद्धा ने अपने गोद में पड़े गूदड़ की ओर संकेत किया, और एक हाथ से गूदड़ हटाकर अरविंद का मुँह दिखा दिया।

अनिल ने देखा कि अरविंद ज्वर में मत्त पड़ा है। उसने नाड़ी देखी। कपोलों को थपथपाया। असहाय वह !

दादी के मुख की ओर देखा। उसके हाथों के तोते उड़े हुए थे। पुकारा—'अरविंद !'

अरविंद ने सुना नहीं। अनिल ने हाथ से हिलाते हुए पुनः पुकारा—'अरविंद !'

अरविंद ने नेत्र खोले। पहिचान की मुस्कान मुख पर आ गई। पर तुरंत ही ज्वर के प्रकोप ने उसे अधखिली कली की भाँति मसलकर नष्ट कर दिया।

अनिल के हृदय में उठा—वह अरविंद के स्थान पर रोगी हो जाये। अरविंद, अपनी वृद्धा, असहाय दादी का एक मात्र आश्रय अरविंद, इस झंझट से बच जाये। पर...।

अनिल अधिक समय तक वहाँ ठहर न सका। उसे अनुभव हुआ कि अरविंद की दादी भोजन लेने न जा सकेगी ; पर उसे भोजन लाना आवश्यक है। जी में यह भी आया कि रुक जाये, पता नहीं किस समय उसको सहायता की आवश्यकता पड़ जाये।

शरीर पक्ष ने कहा कि शरीर है तो सब कुछ है। तभी जैनब ने पुकारा—'देर हो रही है, भीड़···।'

अनिल अरविंद के निकट से उठ खड़ा हुआ। वह स्वयं चला जा रहा था, पर उसे लग रहा था कि उसके भीतर से बहुत से तंतु अरविंद में समाये हुए हैं, और अब खिंच रहे हैं, उसमें पीड़ा उत्पन्न कर रहे हैं।

वह कराह उठा। पर शरीर रखना है, और जैनब···। वह चला गया।

अरविंद की दादी ने दिन भर कुछ न खाया। अनिल ने जो पाया था उसमें से कुछ उसे देना चाहा, पर वृद्धा ने स्वीकार न किया। बोली—'बस भैया, मेरा खाना-पीना हो चुका।'

अनिल अपनी विवशता पर रो दिया। निवासी इतने सभ्य हैं; देश इतना उन्नत है, बड़े-बड़े कारखाने हैं। सहस्रों मील लंबी रेलें और सड़कें हैं, विद्वानों का प्राचुर्य है, पर खाने को नहीं है, और उसके प्यारे अरविंद के लिए कहीं दो बूंद औषधि नहीं है। विवशता के शिकंजे में कसा वह मसोस उठा।

औषधियाँ या चिकित्सक किसी को बचा ले जाने का ठेका नहीं लेते। पर एक साध है जो मन में रह जाती है, और संसार का प्रत्येक बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा कार्य किसी न किसी व्यक्ति की मन की साध पूरी करने के लिए होता है।

अरविंद बेसुध पड़ा रहा। उसने नेत्र नहीं खोले।

उसकी दादी उसे लिये बैठी रही। अनिल इधर-उधर छटपटाता मँडराता रहा।

—४६—

वह घूम रहा था कि मुनीर ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। अनिल जैसे चौंका—'कौन?'

'भाभी बुला रही हैं।'

अनिल ने मुनीर की ओर देखा। सूचना उसने सुनी नहीं थी। बोला, 'क्या है?'

'भाभी बुला रही हैं।'

अनिल ने शीश ऊँचा किया। बादल के दो टुकड़े आकाश पर तैर रहे थे। सूर्य

जैसे अस्ताचल पर पैर टेककर एक क्षण विदा लेने से पूर्व संसार को भली-भाँति देख लेने के लिए ठहर गये हैं।

अपनी विवशता से अनिल स्वयं दुखित था। कभी-कभी मन में उठता, अरविंद मरता है तो मरे, उससे क्या? उसकी दादी यदि रोती है, पागल होती है, तो हो, इससे क्या? वह अपने हृदय से असंतुष्ट हो जाता। इतना कष्ट सहकर वह पत्थर क्यों नहीं हो गया।

अब मुनीर ने उसे बुलाया है। उसने सोचा कुछ नहीं, उसके साथ हो लिया।

अपनी झोपड़ी के सामने सलीमा बैठी थी। अनिल को मुनीर के साथ आता देख वह उठी। आगे बढ़कर बोली, 'दूल्हा भाई, तुम तो...।'

अनिल ने अपने ऊपर से सुन्नता का आवरण हटाकर वास्तविक स्थिति समझने का प्रयत्न किया।

बोला—'हूँ, अरे तुम अच्छी तो हो?' सलीमा मुख काढ़े उसकी ओर झुटपुटे में देखती रह गई। वह अनिल को समझ न पाई।

'मुनीर के भाई की मृत्यु···।'

अनिल कुछ और जागा। अपने प्रश्न पर कुछ लज्जा अनुभव करने लगा। वह कुंठित हो गया। पुरुषहीन इस नारी के निकट वह इस समय क्यों आया है? बोला—'सब ठीक है? हाँ, मैं चलता हूँ।'

बैठते हृदय से सलीमा ने पूछा—'क्यों?'

'अत्यंत आवश्यक काम है।'

'दूल्हा भाई,' पीठ फेरते अनिल का हाथ पकड़कर सलीमा ने रोका।

अनिल पर इस स्पर्श से शांति का आवरण पड़ गया। हाथ छुड़ाने की चेष्टा उसने न की। बोला मूढ़ की भाँति—'क्या बात है?

'तुम भागना क्यों चाहते हो?' सलीमा ने पूछा।

'क्यों?'

'क्यों, क्या? दूल्हा भाई, तुम बहुत सीधे हो।'

अनिल गंभीर हो गया। बोला—'क्या बात है?'

सलीमा उसे झोपड़ी में घसीट ले गई। मुनीर बालकों में मिल गया। सलीमा ने अनिल को बैठाया। स्वयं निकट बैठकर बोली—'दूल्हा भाई, तुमने तो इस तरफ़ मुँह उठाकर देखना भी गुनाह समझ रखा है।'

अनिल चुप रहा। वह अपने को विचित्र स्थिति में पा रहा था।

'तुम्हारे साले को किसी ने परसों मार डाला।'

इस वाक्य का पूर्णार्थ अनिल पर धीरे-धीरे खुला। रात्रि के समय जो उस कंकाल ने उसे तैयब का खून कर आने की सूचना दी थी, वह क्या वास्तव में सत्य थी?

वह अब तक उसे स्वप्न की घटना समझ रहा था। पुलिस के भय से तैयब की हत्या को लोगों ने साधारण हैजे की मृत्यु में परिवर्तित कर दिया था। सलीमा तो पहिले ही पुलिस की जाँच पड़ताल से आतंकित थी।

तैयब का क्या वास्तव में ख़ून हो गया? तैयब की हत्या? अनिल को एक धक्का-सा लगा। तैयब का ख़ून क्यों हुआ?

बोला—'कैसे हुआ?'

'कुछ पता नहीं, अल्लाह की मर्ज़ी है, उसमें किसी का चारा नहीं। सुबह देखा तो उसे…पाया।' आगे वह बोली नहीं। अँधेरे में अनिल के मुख को ध्यान से देखने लगी, जैसे कि इस समाचार का उस पर प्रभाव पढ़ लेने की चेष्टा कर रही हो।

दृष्टि असमर्थ थी, पर कान उसकी सहायता कर रहे थे। अनिल की साँस की गति में कुछ परिवर्त्तन उसने अनुभव किया। वह कुछ आश्वस्त हुई।

अनिल ने जैसे जागकर कहा—'अब?'

सलीमा के मन में भी गूँजा, 'अब?' और इस 'अब?' के प्रहार से उसके जीवन की पूरी इमारत काँप उठी। 'अब!'

'तुम्हीं एक अपने हो, जो करोगे वही होगा।'

अनिल ने देखा कि सलीमा ने जिह्वा के तनिक-से आघात से समस्त उत्तरदायित्व उसके ऊपर डाल दिया। वह चुप रहा। सलीमा शंकित हो गई। बोली—'दूल्हा भाई, समय कैसा चल रहा है, यह तुमसे छिपा नहीं है। ऐसे स्थान पर अकेली औरत का निबाह कैसे हो सकता है?'

अनिल चुप रहा। सलीमा ने कहा—तुम स्वयं सोच लो। तुम्हीं अपने संबंधी हो। यह छोटे-छोटे बच्चे तुम्हें छोड़ अब किसका...।'

अनिल की चुप्पी से वातावरण में एक तनाव आ रहा था। उसने एक विचित्र आतंक निर्मित कर दिया था। उसी से प्रभावित सलीमा का वाक्य बीच में रुक गया। अनिल निश्चय न कर पा रहा था कि क्या करे?

सलीमा ने अनुभव किया कि अनिल यह उत्तरदायित्व लेते काँप रहा है। यदि अनिल ने इस समय आश्रय न दिया तो क्या होगा। उसे भविष्य में अंधकार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई न पड़ा।

वह काँप गई। जी में आया कि अनिल के पैर पकड़कर आश्रय की भीख माँगे। पर फिर सँभली।

वह नारी है। भीख माँगना तो अंतिम उपाय है। उससे पहिले कुछ प्रयत्न कर देखना चाहिए।

उसने साहस बाँधा। मुस्कान चेहरे पर लाई और फिर मुस्काते स्वर से कहा—'दूल्हा भाई, तुम तो जाने किस सोच में पड़ गये।' उसके हाथ का स्पर्श किया।

अनिल जैसे जागा। बोला—'नहीं तो।'

सलीमा ने अनिल का साहस बढ़ाया। बोली—'चिंता की बात नहीं है। हम दोनों हैं, झोपड़ी है, यहीं रहेंगे।'

अनिल जैसे चौंका।

'तुम बड़े सीधे हो, मुझे बहुत अच्छे लगते हो। शफ़ीक तुम्हारे लिए...।'

अनिल शांत बैठा रहा। जो प्रस्ताव आ रहा था, उसे अब पूर्णतया समझ पाने के कारण ही उसकी अस्थिरता बढ़ गई थी। मन में बड़े घुमाव-फिराव के साथ उठता था कि वह उठकर भाग जाये। पर सलीमा क्या समझेगी? उसपर सलीमा का उत्तर-दायित्व कुछ तो है ही।

सलीमा ने उसे अपनी ओर खींचा। उसका वक्षःस्थल अनिल के कंधे से छू गया। दोनों के शीश अत्यंत निकट आ गये। साँसें एक-दूसरे का स्पर्श करने लगीं। अनिल के भीतर से किसी ने कहा—अनिल छायाग्राहिणी से बच।

अनिल की आत्मा ने जैसे बँधे पंख फड़फड़ाये। पर अनिल, उठा नहीं। उसे लगा कि वह बालक-सा सलीमा की गोद में पड़ा है।

तभी एक घटना हो गई। अनिल को अनुभव हुआ कि तप्त खुरदरे दो ओठ कंपित उसके कपोलों का स्पर्श कर रहे हैं। अनिल अब संपूर्णतया जग गया। 'नहीं, वह बँधेगा नहीं।'

वह सीधा होकर बैठ गया। बोला--'तुम चिंता न करो, सब प्रबंध हो जायेगा। हाँ...।'

'भाभी' मुनीर ने पुकारा।

'अरे, शफ़ीक़ कहाँ है?' सलीमा ने पूछा।

'यह रहा।'

अनिल ने कहा—'यह स्थान छोड़ देना होगा। जहाँ मैं हूँ वहीं तुम्हारे लिए...।'

'जैसा तुम ठीक समझो।'

अनिल ने उठकर शफ़ीक को गोद में ले लिया। वह नीचे उतरने के लिए मचलने लगा।

अनिल चला गया।

– ४७ –

अनिल ने जैनब से कहा—तुम अरविंद की दादी की खबर ले लो, हम मुनीर का डेरा इधर ले आयें।

जैनब ने आज्ञा पालन किया, पर अनिल की ओर संदिग्ध दृष्टि से देखा।

सलीमा अकेली नारी है, यह उसे ज्ञात है। अनिल उसे लाकर अपने निकट स्थान दे रहा है। यह घटना जैनब के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी।

अब तक अनिल के विषय में वह पूर्णतया निश्चिंत थी। सुनती है कि मेहर ने उसपर अधिकार कर लिया था, पर उसके लिए यह तथ्य कथा मात्र है। उसने मेहर को देखा नहीं। अनिल कभी उसकी चर्चा नहीं करता। पर सलीमा और अनिल का संपर्क! अनिल उसका नंदोई है। आकर्षक है।

जैनब को लगा कि अनिल की रक्षा अब आवश्यक है। अनिल किसी का न हो, इसी में उसे संतोष है। सलीमा और अनिल की एक साथ कल्पना कर उसके हृदय में तीव्र कटन प्रारंभ हो जाती है। उसने अनुभव किया अनिल की रक्षा की समस्त जिम्मेदारी उसपर है।

जैनब ने देखा कि दादी लेटी है और अरविंद उसके निकट।

'क्या हाल है ?' उसने पूछा।

'ज्वर उतरा नहीं।' शांत स्वर से दादी ने कहा।

जैनब ने अरविंद को स्पर्श किया। शरीर तवा-सा तप रहा था। वह स्थिर हो गई, देखती अरविंद की ओर रही और सोचती अनिल के विषय में। अरविंद को चेचक निकल रही है इस ओर उसका ध्यान नहीं गया।

'मैं अभी आ रही हूँ।' और वह वहाँ से चली गई।

सलीमा के निवासपरिवर्त्तन के समय उसने अपनी उपस्थिति आवश्यक समझी।

अनिल झोपड़ी ठीक कर रहा था। गफ़ूर शफीक को लिये हुए था और सलीमा अपने गूदड़े एक ओर रखकर झाड़ू लगा रही थी। जैनब जाकर निकट खड़ी हो गई। सलीमा की ओर ध्यान से देखा जैसे कि उसका बहिरंग देखकर उसके भीतर अनिल के प्रति सब भाव पढ़ लेना चाहती थी। उसे लगा कि तैयब मरा ही क्यों ? क्या उसे मरने को और समय न था।

गफ़ूर की ओर उसने देखा। सलीमा का शफ़ीक उसे गफ़ूर की गोद में कुछ ठीक-सा जँचा। उसने देखा कि अनिल पसीने से तर है। झोपड़ी बना रहा है, क्यों ? झोपड़ी सलीमा के लिए !

बोली—अरविंद की तबियत अधिक खराब है, उसे देख लेते तो…।

जैनब की वाणी सुनकर अनिल चौंका। शीश उठाकर सलीमा और गफ़ूर की ओर देखा और फिर जैनब की ओर।

'क्या बात है ?'

'हालत कुछ बिगड़ती…।' जैनब ने सूचना दी।

अनिल ने काम में शीघ्रता प्रारंभ की। पर कुछ क्षण में उसे लगने लगा कि

इसमें व्यर्थ देर हो रही है। यह साधारण झोपड़ी है और उस ओर अरविंद के जीवन का प्रश्न है।

अरविंद की क्रीड़ाएँ उसे स्मरण आ गईं। उसे लगा कि झोपड़ी कुछ देर ठहर सकती है। उसके हाथों से शक्ति क्षीण हो रही है। वह इस काम में मन नहीं लगा सकेगा। पर यह काम भी……। और तब अचानक उसके हृदय पर एक प्रहार-सा लगा। वह काम छोड़कर अरविंद की ओर चल दिया।

जैनब को संतोष हुआ। वह स्वयं अनिल के अधूरे कार्य को पूरा करने में लगी।

अनिल ने देखा कि अरविंद की दशा वास्तव में चिंताजनक है। चेचक उसके निकल आई है। अरविंद की दादी को उसने जगाने का प्रयत्न किया, वह जागी नहीं। निरंतर जागने से उसकी नींद भीषण थी। अनिल ने उसे जगाने का प्रयत्न बंद कर दिया।

अरविंद कराहने लगा था, उसे अनिल ने गोद में उठा लिया। चेचक धीरे-धीरे उभरी आ रही थी। उस प्यारे-प्यारे चेहरे को उसने अपनी गोद में दानों से भरते देखा। अरविंद के प्रति उसका मोह बहुत गहिरा था। उस लगभग बेसुध बालक को भी जैसे अनिल का स्पर्श अनुभव हो गया। उसका कराहना कम हो गया। उसकी आत्म-शक्ति को बल प्राप्त हुआ। उसने शांत नेत्र मूँद सब सहन करने का प्रयत्न किया।

अनिल अरविंद को लिये बैठा रहा। कितनी देर, यह उसे पता न चला। जैनब ने पुकारा—आज खाने को लेने नहीं जाओगे क्या ? अनिल ने चौंककर जैनब की ओर, अपने चारों ओर और फिर आकाश की ओर देखा। क्षुधार्त भोजन लेने जा चुके थे। आकाश में कुछ बादल उड़ रहे थे। सूर्य की किरणें बल संचित करती जा रही थीं।

मन में उठा—भोजन तो चाहिये। उसने अरविंद को गूदड़ों पर लिटा देने के लिए अपनी गोद से हटाया। तनिक हिलते ही अरविंद कराह उठा। करुणा अनिल के मुख पर आ गई। हृदय में पीड़ा उठी। उसका मनोरथ इनके भार के नीचे दबकर रह गया।

अरविंद की दादी की ओर देखा। वृद्धा अब भी मुख फाड़े सो रही थी। आधी दर्जन मक्खियाँ उसके ऊपर भुनभुनाती मँडरा रही थीं 'नहीं, मैं नहीं जा सकूँगा।' अनिल ने कहा।

'भूखे कितने दिन रहोगे ?'

'तुम जाओ।'

'यह ठीक नहीं कर रहे हो। यदि शरीर ही नहीं रहेगा तो यह सेवाकाय कैसे चलेगा ?'

अनिल को तर्क का बल अनुभव हुआ। उसने फिर अरविंद को पृथक करना चाहा, वह रो उठा। उसने नेत्र खोले, दृष्टि अनिल से मिली। उसने जैसे पूछा—क्या मुझे छोड़कर चले जाओगे ?

अनिल ने कहा—नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।

जैनब ने ध्यानपूर्वक अनिल की ओर देखा। कुछ विचारा और चली गई।

— ४८ —

जीवन के आघातों के फल-स्वरूप गफ़ूर में नारी के प्रति जो भावना बन गई थी, उसके अर्थ नारी उसके लिए निरर्थक-सी हो गई थी। वह उसके लिए साधारण कुत्ते-बिल्ली की भाँति प्राणी मात्र थी। प्रारंभ में यह भावना अत्यंत कठोर जैसे जम गई थी। जैनब के संपर्क से उसमें कोमलता आ चली थी।

जैनब और वह काफी समय तक साथ रहे थे, पर जैनब का नारीत्व उसे पूर्णतः अपनी ओर अकर्षित न कर पाया था। गंभीर और धार्मिक प्रकृति का होने के कारण वह इस संपर्क के ऊपरी धरातल तक ही अपनी कल्पना सीमित न रखता था, वरन् उस सूत्र के सहारे भविष्य में जो बनेगा उस पर अधिक विचार करता था।

एक बार पत्नी के दुःखों का अनुभव उसने किया था। प्रथम पत्नी ने जो दुःख की बेल उसके जीवन में बोई थी उसकी कड़ुवाहट अभी तक शेष थी। आशा नहीं थी कि वह जीवन से पहिले समाप्त हो जायगी। नारी से प्रीति का अर्थ था, निकाह, संतान और फिर माया-मोह, तत्पश्चात् वही दुःखों की आवृत्ति।

जैनब उसके लिए बाढ़ के समान थी। वह उसमें मोहित हो गिरने को होता

और फिर सभँल जाता। वह जैनब से दूर भागता और समय आता था कि वह उससे घबरा उठता था।

इधर जबसे अनिल का संपर्क हुआ तो उसे अपने विषय में नवीन अनुभव हुआ है। जैनब का झुकाव, उसके आदर-यत्न की भावना उसने अनिल के चारों ओर लिपटती उसने देखी। जैनब से अपने को सुरक्षित पा एक संतोष उसे हुआ। और उसने आशा की कि अब वह प्रसन्न होगा।

यहीं वह अपने को समझ नहीं पाया था। उसे विश्वास न हुआ जब कि उसने जैनब को लेकर अनिल के प्रति एक प्रतिद्वंद्विता की भावना को अपने मन में उपस्थित पाया। अपने संयम की इस असफलता पर वह लज्जित हुआ और अपनी इस असफलता को जैसे चिढ़ाने के लिए स्वयं अनिल और जैनब के नैकट्य को प्रोत्साहन देने लगा।

इसमें एक भावना थी, वह यह कि ग़फ़ूर अनिल को जैनब में संपूर्ण विलीन होते पायेगा। पुरुष की इस पराजय से उसे संतोष होगा। पर धीरे-धीरे उसे विदित हो गया कि अनिल और जैनब के नैकट्य की सीमा आ गई है। इन दोनों के संबंध के विषय में वह स्पष्ट न हुआ। यह उलझकर पहेली बन गया।

उसे लगा कि ये एक दूसरे के निकट रहना चाहते हैं और दूर भी। अनिल जैनब से बँधना भी चाहता है, पर उस बंधन की सत्ता स्वीकार नहीं करना चाहता।

इसी को सुलझाने में वह उलझा रहा। फलस्वरूप अपनी रक्षा के लिए जो संयमकवच उसने बनाया था वह कोमल पड़ने लगा। नारी के विषय में जब वह सोच रहा था तब नारी धीरे-धीरे सरककर उसके मन के कोमल स्थान की ओर बढ़ रही थी।

जब सलीमा की गोद से उसने शफ़ीक को लिया तो अंग स्पर्श के साथ-साथ दोनों का दृष्टि-स्पर्श भी हुआ। उसे लगा कि वह पुनः युवक ग़फ़ूर हो गया है, जब कि संसार का अर्थ ही उसके लिए नारी था। और वह चिनगारी बुझी नहीं है।

नारी के बाणों ने उसका कवच भेद कर अंतर में प्रवेश कर लिया। वह काँप उठा। मोर्चा जो उसने इतने दिनों के प्रयत्न से बाँधा था अब एकाएक टूटता उसने

देखा। पराजय से बचने के लिए उसका पुनर्निमाण होना चाहिए। यह कार्य अत्यंत कुशल सेना-अध्यक्ष का है। गफ़ूर अपनी समस्त शक्तियाँ एकत्रित कर इस ओर लगा।

अनुभव कहता था कि सलीमा से बचने का यही एक उपाय है कि वह उससे दूर चला जाये। उसके संपर्क में न आये।

उसने अनिल से कहा—शफ़ीक को ज्वर आ रहा है।

अनिल को अरविंद का मोह दुखित कर रहा था। उसकी चेचक भयानक रूप धारण कर आई थी। वह बेसुध अवस्था में उसका नाम ले-लेकर चिल्ला पड़ता था। अरविंद की दादी मूढ़ा की भाँति अपने प्राणों को इस प्रकार तिल-तिलकर सरकते देख रही थी।

अनिल ने शफ़ीक को देखा। ज्वर तेज़ था। समझने में विशेष श्रम न हुआ। चेचक की संभावना है। उसका मुखमंडल गंभीर हो गया। गफ़ूर के कान में अपनी संमति आशंका प्रकट की।

ग़फ़ूर ने शफ़ीक की ओर, उसकी मा की ओर देखा।

'क्या बात है?' सलीमा ने पूछा।

'चेचक का भय है।' अनिल ने कहा। सलीमा के प्राण धक से हो गये।

जैनब बोली—'तुम शफ़ीक को न छुओ। अरविंद को छुये हो।' सलीमा ने जैनब की ओर देखा।

'हाँ!' अनिल ने कहा—अभी तो डर मात्र है।

'अरविंद के निकली हैं।'

जैनब ने विजयी दृष्टि से ग़फ़ूर की ओर देखा। मन ही मन मुस्काई और वहाँ से चली गई।

शमशाद और मुनीर एक छोटे वृक्ष के ऊपर चढ़कर झूल रहे थे। अनिल ने कहा—ग़फ़ूर दादा शफ़ीक की देख रेख...।'

सलीमा ने आश्रयप्रार्थी दृष्टि से ग़फ़ूर को निहारा। ग़फ़ूर और सलीमा के नेत्र मिले। सलीमा के नयनों में प्रार्थना थी और ग़फ़ूर के नयनों में वह विवशता जो अपने को जाल में फँसते जानते मृग के नयनों में होती है।

पर दूसरे ही क्षण उसकी भावना में परिवर्त्तन हो गया। सलीमा के नयनों ने जैसे उसमें कुछ गुद-गुदा दिया। मुस्कान ओठों पर आ गई। अनिल से बोला—'अल्लाह रहम करेगा।'

ग़फ़ूर और सलीमा में एक मूक समझौता हो गया, जैसे वे दोनों एक-दूसरे को युगों के पार आज पहिचान गये हों। आश्चर्य हुआ कि इतने दिनों से निकट होते हुए भी ये चिर-परिचित इतने दूर क्यों थे?

ग़फ़ूर का संकोच खुल गया। एक दृढ़ता उसमें आ गई। उसने शफ़ीक को ओर प्यार से देखा। उसके कपोल गुद-गुदाये और फिर उसे अपनी गोद में ले लिया।

— ४९ —

अरविंद जब कि जीवन की डोर से बँधा घसिट रहा था, शफ़ीक की अवस्था शीघ्र चिंता जनक हो गई। चेचक निकली और दारुण प्रकोप के साथ निकली। उसका शरीर फूला और विकृत हो उठा।

ग़फ़ूर भोजन लेने गया। सलीमा रोती बैठी रही। आँसू सब जैसे पेट में जाकर एकत्र हो गये थे।

ग़फ़ूर ने कहा—अनिल दो दिन से खाना लेने नहीं गया।

'जैनब दे आई होगी।'

'हूँ; अरविंद में उसका मोह पड़ गया है।'

सलीमा ने घिरते अंधकार में ज़ोर-ज़ोर से साँस लेते शफ़ीक की ओर देखा।

सलीमा ने कहा—बुला लो, एक बार शफ़ीक को देख लें।

गफ़ूर ने आकाश की ओर ताका। बोला, 'अल्लाह जो करना चाहता है, होगा वही। कोई उसमें क्या कर लेगा?'

सलीमा ने उसकी ओर देखा, बोली, 'मन···।'

'तू तो पगली हुई है। अल्लाह का नाम ले। वही सच्चा सहारा है।'

सलीमा चुप हुई और फिर कुछ सोचने लगी।

रात्रि घिर आई। सलीमा का हृदय इस समय जीवन के अत्यंत महत्त्वपूर्ण

अनुभव प्राप्त कर रहा था। यह अनुभव भयानक था, शोकिल था और मधुर और कोमल था।

सलीमा कुछ दिन पहिले तैयब की लाश पर बिलख रही थी, पर जीवन की वास्तविकताने डपटकर उसे चुप होने को विवश किया। इसके पश्चात् उसने देखा कि वह बह रही है किनारे से खुली नौका की भाँति।

चारों ओर अथाह लहराता जल है और बीच-बीच में टापू हैं। जो आशा के स्थान भी हो सकते हैं, पर जिनका विश्वास नेत्र मूँदकर नहीं किया जा सकता।

उसे लगा कि ऐसा ही एक टापू था जो उसके पैरों के नीचे से निकल गया। और अब वह लहरों से टकराती बही जा रही है। अनिल पर उसने पैर टेकने चाहे, पर वह फिसल गई। अनिल पीछे छूट गया। बहती-बहती वह ग़फ़ूर से टकराई है। उसका शफ़ीक !

चारों ओर अंधकार का साम्राज्य। वृक्ष भयंकर दानवों से खड़े थे और इनके इधर-उधर बिखरे क्षुधार्त मानवों को एक दृष्टि से देख लेने के लिए आकाश मार्ग में तारे आपस में धक्का-मुक्की कर रहे थे।

सलीमा का हृदय शफ़ीक को हाथों से जाता देखकर धक हुआ और बैठ चला। नयनों के संमुख अंधेरा और भी गहरा हो गया। उसने शफ़ीक का स्पर्श किया। ग़फ़ूर ने उसे गूदड़ों पर लिटा दिया था। झोंपड़ी से परे जैनब शमशाद और मुनीर को लिये पड़ी थी।

सलीमा ने पाया कि शफ़ीक की साँस अभी चल रही है। उसमें एक खिंचाव आ गया है, जैसे कि जीवन को उखाड़ लेने के लिए प्राण झटके मार रहा हो।

उसका चेचक से भरा शरीर स्पर्श कर सलीमा भयभीत हो गई। काँपी और फिर शफ़ीक के चेहरे का स्पर्श किया। उसने पाया कि ग़फ़ूर का हाथ शफ़ीक के शीश पर रखा है, जैसे कि वह शफ़ीक के प्राणों का साहस बढ़ा रहा हो, कह रहा हो 'जाओ, चिंता न करो, अल्लाह सब भला करेगा।'

सलीमा के हाथ की गति गफूर ने हाथ से स्पर्श पाकर एकदम रुक गई जैसे कि

वे हाथ चिपककर रह गये हों। इस स्पर्श में सलीमा को अत्यंत साहस, धैर्य और संतोष मिला। उसके प्राण जो इस दुःसह दुःख के वेग से उखड़े जा रहे थे, जम गये।

गफ़ूर का हाथ शांत रहा। उसने अपने दूसरे हाथ से शफ़ीक का हृदय स्पर्श किया।

इस बीच में जैसे उसके शीश पर रखी उँगलियाँ चंचल हो उठीं। सलीमा के हाथ से जैसे उन्होंने खेलना प्रारंभ कर दिया हो। दोनों की उँगलियाँ उलझ-उलझ-कर इस निर्णय पर पहुँचीं कि गफ़ूर की मुट्ठी में सलीमा का हाथ रख उठा।

वह काँपी और एक क्षण को भूल गई कि शफ़ीक भी वहीं है।

'अल्लाह की मर्जी है।' गफ़ूर ने कहा—कुछ घंटों की देर है।

'कितनी तकलीफ़ है। अल्लाह इसे समेट ले!' मा ने कहा।

उसने झुककर अपने शफ़ीक का मुख उस अंधकार में देख लेना चाहा। नयनों ने असमर्थ सिर झुका लिया, पर कल्पना ने साथ दिया, देखा, शफ़ीक का चेहरा और भी विकृत हो उठा है। शरीर से एक दुर्गंध उठने लगी है। वह पीछे हट गई, 'या अल्लाह।'

उसने अपना दूसरा हाथ शफ़ीक के पेट पर रख दिया। साँस का खिंचाव स्पष्ट था।

उसने अनुभव किया कि गफ़ूर का हाथ भी निकट ही है। उसका हाथ गफ़ूर के हाथ की ओर साहस प्राप्त करने के लिए सरका और फिर दोनों एक दूसरे का स्पर्श करते रहे। वे दोनों अपने चारों हाथों से जैसे शफ़ीक के उड़नेवाले प्राणों की भावी मार्ग की थकन उड़ने से पहिले ही उतार देना चाहते हों।

शफीक की साँस चलती रही। गूदड़ हिलता रहा। झोंपड़ी में वातावरण काँपता रहा और आकाश में तारों के नयन अस्थिर हो गये। वायु का झोंका सोते वृक्षों को जगा गया और निकट ही कहीं सियार अधगड़े मुर्दे को निकाल उसके ऊपर लड़ पड़े।

गफ़ूर को लगा कि सलीमा काँपी है। उसने उसका हाथ दृढ़ता से पकड़ लिया। सलीमा सँभली। उसकी साँस जैसे बंद हो गई।

अचानक उसने अनुभव किया कि झोंपड़ी में सन्नाटा छा गया है। उसके हृदय

१८

को एक साँस का स्वर खरोंच रहा था, वह अब नहीं रहा है। उसने शफ़ीक को स्पर्श किया। शरीर का स्पंदन शांत हो गया।

गफ़ूर ने कहा—सब···

पर उसका वाक्य सलीमा की चीख में डूब गया।

सलीमा जैसे पागल हो गई। उसने शफ़ीक को उठाकर छाती से चिपका लिया। उसके स्तन जैसे फट जाने को हुए। वह अंधकार में विद्युत् वेग से उड़े जाते शफ़ीक के प्राणों के पीछे चीत्कार कर उठी। पर वे मा को तड़पता छोड़कर ऐसे भागे जैसे पिंजड़े का पक्षी।

सलीमा को चीत्कार असह्य हो गई। गफ़ूर उठा। सलीमा की गोद से शफ़ीक को गूदड़ों पर लिटा दिया।

'रोने से कोई लाभ नहीं। अल्लाह ने अधिक दुःख नहीं दिया, उसकी कृपा है।'

सलीमा सिसकती रही। गफ़ूर उसके निकट बैठ गया। गफ़ूर का हृदय भी भर रहा था। वह सलीमा का दुख कैसे हरे। उस दुखिया को धीरज कैसे बँधावे। उसने सलीमा के हाथ अपने हाथों में ले लिये।

'रो नहीं, इससे लाभ ?'

पर स्वयं उसके अश्रु उमड़े आ रहे थे।

सलीमा का शीश जैसे शोकभार से झुक चला। गफ़ूर के कंधे का स्पर्श उसने किया। गफ़ूर ने अति कोमलता से उसे अपने हृदय पर रख लिया और उसके आँसू पोंछता हुआ बोला—'अल्लाह की मर्जी···।'

पर वाक्य पूरा न कर पाया। कंठ में जैसे कोई वस्तु अटककर रह गई।

सलीमा को गफ़ूर के हृदय की धड़कन अपने कपोलों पर अनुभव हुई। तूफ़ानों-तरंगों से टकराती उसे जैसे आश्रय मिल गया। कुछ क्षण के लिए उसकी सब अनुभव-शक्ति जाती रही। उसे सुख का अनुभव रहा न दुःख का। वह जैसे जड़ हो गई। तभी उसके कपड़ों पर ऊपर से एक बूँद गिरी।

इस शीतल जल के स्पर्श ने उसे जगाया। उसने हाथ ऊपर उठाया। गफ़ूर के नेत्रों का स्पर्श किया। बोली—'तुम रो रहे हो ?'

गफ़ूर ने अपने नयन पोंछे। बोला—'नहीं तो!' और फिर अधिक दृढ़ता से सलीमा के शीश को अपने हृदय से लगा लिया।

सलीमा स्तब्ध पड़ी रही। गफ़ूर का शीश झुका और उसके कांपते खुरदरे, तप्त ओठ सलोमा के सिसकन से हिलते ओठों पर बंद हो गये।

— ५० —

अरविंद की मृत्यु रोग से ताड़ित होकर जैसे पीछे सरकती जा रही थी। उसकी दादी निश्चेष्ट पड़ी रहती थी। जैनब के अत्यंत आग्रह करने पर वह एक दिन भोजन लेने गई। पर लौटती बेर मार्ग में कई स्थानों पर उसे बैठना पड़ा। जैनब ने अनिल को भोजन दिया।

अनिल ने ग्रास मुख में रखते हुए पूछा—तुमने कुछ खाया है!

'हां।'

अनिल ने असंतुष्ट दृष्टि से उसकी ओर देखा।

'उसके पश्चात् तो यहां लाई हूँ।'

'आज कुछ अधिक मिला था?'

'हां, दूसरी जगह से भी मिल गया था।' जैनब ने झूठ बोला।

अनिल भोजन करता रहा और जैनब उसकी ओर देखती रही।

अनिल का संपूर्ण ध्यान अरविंद की ओर लगा था। वह जानता है कि कोई आशा नहीं है। पर न जाने क्यों वह उसके पास अंत तक रहने को विवश है। अरविंद के निरीह नेत्रों को, जो इस अवस्था में भी जैसे उसके आश्रय मृत्यु के थपेड़ों को सहन कर रहे हैं; अंत समय निराश कैसे करे?

जैनब ने धीरे से कहा—अब उसमें क्या रखा है? भयानक चेचक है। छूत......।

अनिल की दृष्टि ऊपर उठी। जैनब की दृष्टि से मिली। जैनब आगे न बोल सकी। अनिल ने तूफ़ानी दृढ़ता से कहा—मरना एक बार है। अरविंद को असहाय में नहीं छोड़ सकता।

जैनब को सफलता की आशा वैसे भी न थी। पर उसका मन उदास हो गया।

अनिल ने देखा। बोला—चिंता की बात नहीं है, जीवन को सँभालकर रखने से उसका मूल्य कम होता है।

ज़ैनब न कुछ समझी, न कुछ बोली। अनिल उसे छोड़ अरविंद के निकट चला गया। सूर्य की धूप तेज हो रही थी। हरियाली का बिंब इधर-उधर हिल रहा था। ज़ैनब ने अपनी दृष्टि आकाश की ओर उठाई और एक रुई-से बिखरे बादल पर लगा दी।

— ५१ —

अरविंद मर गया। उसके पश्चात् उसकी दादी का जीवन में रहा-सहा मोह भी जाता रहा। एकाध दाना जो वह मुख में डाल लिया करती थी वह भी बंद हो गया। बुढ़िया इतनी दुखित थी कि किसी को धैर्य देने का साहस न होता था।

चार दिन पश्चात् वह भी इस लोक से चल बसी। क्षुधा-जनित दुर्बलता और गंदगी से आहत लोगों पर रोग का प्रकोप शीघ्र ही भीषण हो गया। जो रोग इन शरीरों में कुछ सप्ताह पहिले प्रविष्ट हुआ था, अब पककर जैसे अपने फल झाड़ने लगा। मृत्युसंख्या भीषण रूप से बढ़ गई।

जब मनुष्य इतनी तीव्रता से कीड़ों की भाँति मरना प्रारंभ करे तो गाजीपुर जैसे छोटे नगर में उनमें से प्रत्येक के लिए पृथक् कब्र अथवा चिता की व्यवस्था असंभव थी। बड़े-बड़े गड्ढे खुदे थे और उनमें दस-दस पंद्रह-पंद्रह लाशें एक साथ मिट्टी के नीचे ढँकी जा रही थीं। चिताओं की भी यही अवस्था थी। एक-एक चिता पर कई-कई व्यक्ति पंचतत्व प्राप्त कर रहे थे।

अनिल मुख्यतः लाशें ढोने में समितियों की सहायता करता रहा। इसके फल-स्वरूप उसे भोजन कुछ ठीक प्राप्त हो जाता था। नगर के कुछ सज्जनों से भी उसका परिचय हो गया था।

जब अरविंद की दादी का शरीर अंत्येष्टि के लिए तैयार हुआ तो लकड़ियों का अभाव हो गया। ठेले पर उसकी लाश को रखकर एक स्वयंसेवक ने पूछा—'क्या करोगे अब?'

दो अन्य हिंदू स्वयंसेवकों ने भी इसी दृष्टि से देखा।

अनिल ने कहा—करेंगे क्या ? मिट्टी दे देंगे।

'पर वह हिंदू...।'

अनिल जैसे झुँझला उठा। बोला—जीवित अवस्था में परमात्मा के विधान पर लात रखकर बड़े लोगों ने दोनों जातियों को न मिलने देने के लिए काफ़ी दीवारें तैयार कर ली हैं, क्या वे मृत्यु के पुनीत राज्य में भी नहीं लाँघी जा सकेंगी !

ठेला उन गड्ढों की ओर ले जाया गया। मुसलमान स्वयंसेवकों ने हिंदू स्वयं-सेवकों की ओर साश्चर्य देखा। क़ब्र के किनारे खड़े फावड़ा हाथ में लिये गफ़ूर ने पूछा—'कौन है ?'

'अरविंद की दादी है।'

गफ़ूर ने एक मुसलिम नारी के शरीर पर मिट्टी डालकर बुढ़िया के लिए स्थान बना दिया।

अरविंद की दादी का शरीर उस शीतल, कोमल मिट्टी पर रख दिया गया और ढँक दिया गया। क़ब्र अन्य व्यक्तियों की प्रतीक्षा अपना विशाल मुख खोले करने लगी।

शहरी स्वयं-सेवकों ने प्रश्न वाचक दृष्टि से गफ़ूर की ओर देखा।

गफ़ूर ने कहा—हम लोगों में हिंदू-मुसलमान नहीं हैं। हमारी एक क़ौम है। हम भूखे हैं, पीड़ित हैं।

अनिल ने ठेले को क़ब्र से दूर सरकाते हुए कहा—मौत के समान पाक करने-वाली वस्तु और कोई नहीं है। संसार के सब ऊँच-नीच इसके स्पर्श से समान हो जाते हैं, जैसे कि परमात्मा की दृष्टि में।

एक स्वयं-सेवक ने ठेले को धक्का लगाया। पहिया चर्राया, घूमा और वह मानवों की टोली क्षुधाहत शरीरों को बिनने के लिए चल दी।

— ५२ —

रोग की भीषणता बढ़ती गई। चेचक, पेचिश, हैज़ा साधारण घटनाएँ हो गईं। आँधी आने पर अमराई में जैसे आम बिछ उठते हैं उसी प्रकार शरीरों से वह स्थान भर-भर गया। शरीर जिन्होंने लाड़चाव पाया था, जिन्होंने प्रेम के स्वर्ग में नेत्र खोले थे, जीवन के प्रारंभ में उसके स्वर्ण-क्षितिज पर अपनी दृष्टि लगाई थी; शरीर जिन्होंने जिस ओर देखा, अपने संबंधियों से परिपूर्ण पाया, और जिन्हें अब अपना कहनेवाला कोई न

था। जो केवल मानव मात्र थे, क्षुधार्त मात्र थ और अब पंचतत्व निर्मित शरीर मात्र थ; जो मानव के उपहास थे, कलंक थे; जो उसकी सफलता, असफलता, दंड, शिक्षा सभी थे। जो अब जड़ प्रकृति के अंश मात्र थे, जिनमें से जीवन का रस निचुड़ चुका था, जीवन की वायु उड़ चुकी थी।

जो क्षुधार्तों का पड़ाव कुछ समय पहिले आशा से जलते मुखों से जगमग था, जहाँ साहस और धैर्य की बातें सुन पड़ती थीं, जहाँ श्रद्धा और विश्वास था, वहाँ एक भय मात्र था, अब सबके लिए एक ही मार्ग खुला था और वह था मृत्युद्वार।

किसी को पता नहीं था कि कब किसकी बारी है, जो आज संध्या को है वह कल प्रातःकाल रहेगा या नहीं। बड़े-बड़े धीर-हृदय वायुहत पत्तों की भाँति काँप रहे थे।

गफ़ूर ने शमशाद और मुनीर की ओर देखा और फिर अनिल की ओर। बोला—बीमारी ज़ोरों पर है, अल्लाह ही खैर करे।

अनिल का ध्यान उन बालकों की ओर गया, जिनके अब वे ही सब कुछ हैं। वह विचारमग्न हो गया।

'इन्हें कहीं भेज दिया जाये!' बिना किसी निश्चय पर पहुँचे हुए कहा।

'कहाँ?'

'किसी बड़े शहर में।'

'कौन साथ जायेगा?'

अनिल मन ही मन हँसा। अच्छा प्रश्न है। कौन साथ जायेगा? यदि यहाँ मर गये तो कौन साथ जायेगा? बोला नहीं, जैनब की ओर देखा। वह सहम गई। अनिल ने कहा—जिसे वे सौंपे गये हैं वही जायेगी।

'जैनब!'

'और नहीं तो कौन?'

गफ़ूर ने जैनब से पूछा—क्यों तैयार हो?

जैनब ने दृढ़ता धारण की। बोली—मौत से आदमी कहाँ तक भाग सकता है। मौत आनी है तो यहाँ भी आयेगी वहाँ भी आयेगी। मैं तुम लोगों को यहाँ छोड़कर नहीं जाऊँगी।

अनिल ने कहा—वे तुम्हारी ज़िम्मेदारी पर हैं। अधिक से अधिक उनके लिए तुम्हें करना चाहिए।

'कल से फिर किसी अरविंद को लेकर बैठ गये तो ?'

सलीमा ने कहा—तो जैनब को दूल्हा भाई की चिंता है !

'हाँ, है ही। मैंने जीवन में एक पाया है, उसे छोड़ न दूँगी।'

'जैनब !' अनिल ने दृढ़ता से कहा।

'क्यों ? क्या है ?'

'इनकी जानें मेरे जीवन से अधिक मूल्यवान हैं। मैंने संसार देखा है। जितना संभव था उतना उसमें से रस प्राप्त कर लिया है, परंतु ये बालक······।'

'परंतु···?'

'नहीं जैनब, तुम्हें उन्हें यहाँ से निकाल ले जाना चाहिए।'

'देखो······।'

'नहीं तुम्हें जाना चाहिए।'

जैनब चुप रही। कौन उसकी सहायता करेगा, यह उसे पता न था। उसने आकाश की ओर देखा। बगलों की एक पंक्ति ऊपर से उड़ गई। सूर्य की किरणें कोमल पड़ गईं।

'बोलो न ?' अनिल ने कहा।

'दिल से पूछो, तो वह जाने को नहीं करता। मैं मौत से बिल्कुल नहीं डरती।'

'जैनब, तुम समझीं नहीं, इन बालकों की······।'

'हाँ ! सब समझ रही हूँ, पर मुझसे यह न होगा।'

'मैं तुमसे प्रार्थना करूँ तो भी ?'

'देखो, मुझे संकट में न डालो। तुम मुझसे प्रार्थना करो ?'

'पर जैनब !'

'हाँ।'

'यदि अनिल आज्ञा दे तो !' गफ़ूर ने पूछा।

'हाँ, समझो कि मैं तुमसे बालकों के साथ जाने को कहूँ तो···?'

'आज्ञा-उल्लंघन का हृदय मुझमें नहीं है, पर···।'

'नहीं जैनब, यह अत्यंत आवश्यक है।'

और जैनब ने मस्तक झुका दिया। उसका हृदय उसके साथ न था। पर वह अनिल को असंतुष्ट नहीं करना चाहती। बोली—'जैसी तुम्हारी इच्छा ···।'

'नहीं जैनब, यह आवश्यक है।'

जैनब ने विद्रोही मन से स्वीकार किया। प्रातःकाल की गाड़ी से जाने के लिए अपने चीथड़े-गूदड़े लपेटने लगी।

— ५३ —

प्रातःकाल सात बजे के लगभग ही स्टेशन पर वे जा पहुँचे। वहाँ नगर छोड़कर जानेवालों की कमी न थी। सबके मुखमंडल भय से श्यामल हो रहे थे और भूख से पीले। दयनीयता का विचित्र समाज वहाँ जुड़ा था।

उन्हें जाना था। टिकट का प्रश्न ही न था। जहाँ भोजन के लिए तरसना था वहाँ टिकट जैसे व्यसन के लिए पैसे कहाँ?

जैनब के हृदय में उठ रहा था कि एक बार खोकर अनिल उसे अल्लाह की मेहर से प्राप्त हो गया है, क्या इस बार जब वह स्वयं उसे छोड़कर जा रही है, फिर वही सुघटना घट सकेगी। ऐसे सुख-स्वप्न पर विश्वास करने को उसका मन न माना।

उसने अनिल का मुख देखा। उसका हृदय व्यथित हुआ और आशंका से भर उठा। वह चेहरा कितना दुर्बल और पीला पड़ गया है। सूखे पत्ते की भाँति वह गाड़ी में बैठकर अभी चली जायगी। पता नहीं, अनिल का पीछे क्या होगा?

दुष्कल्पना उठी कि वहाँ से लौटते ही अनिल पर हैज़े का प्रहार हो गया और जिस समय वह एक शहर में शमशाद और मुनीर को लिये आनंद से भोजन कर रही है, अनिल अपने जीवन की अंतिम साँसें गिन रहा है।

उसका हृदय काँप उठा। उसने ध्यान से अनिल की ओर देखा। क्या यह संभव है? इन दिनों सभी कुछ संभव है। जी में आया कि वह हठ करे कि वह नहीं जायेगी। नहीं जायेगी। वह वहाँ से नहीं जायेगी। अनिल को अकेला नहीं छोड़ेगी।

पर अनिल ही है जो उसे वहाँ से भेज रहा है। यदि कोई अपनी जान लेना

चाहे तो क्या उसे रोकना न चाहिए ? पर जैनब ने अनिल की इच्छा के विरुद्ध कुछ करने की शक्ति न पाई। यदि अनिल कहता है तो उसी के लिए वह जायेगी। उसे दुखित कर वहाँ न रहेगी। पर अनिल ! हैज़ा !

जैनब ने भीड़ की ओर देखा। फिर चार जोड़ी चमकती रेल की पाँतों की ओर। सभी यात्री उसे भयभीत दिखे। वह स्तब्ध हो गई। भाग्य की व्यवस्था उसकी इच्छा उससे कहीं ऊँची है, वही पूरी हो।

गाड़ी आई। एक विचित्र कशमकश यात्रियों में होने लगी। गफूर और अनिल ने तीनों को साथ लिया और निश्चय किया कि जो डिब्बा सामने आये, उसी में शमशाद और मुनीर को खिड़की के मार्ग फेंक दिया जाये, और पीछे से जैनब को ठेल-ठालकर चढ़ा दिया जाये। गाड़ी में कहीं वैसे बैठने को स्थान मिल सकेगा, इसकी आशा न थी।

गाड़ी आई। यात्री इधर-उधर दौड़ने लगे। जहाँ वे लोग खड़े थे, उसी के निकट सिपाहियों से भरा एक डिब्बा आकर खड़ा हुआ।

अनिल ने चारों ओर देखा। प्रत्येक द्वार पर द्वाररक्षक यात्री झुके हुए थे। लोग विवश खिड़कियों में होकर चढ़ रहे थे।

ग़फ़ूर ने उठाकर शमशाद और मुनीर को भीतर फेंक दिया। दोनों मैले-कुचैले अधनंगे बालक एक दूसरे के ऊपर जाकर गिरे। चीखे, चीत्कारे, सिपाहियों द्वारा धकियाये गये जैसे कि बंडल हों।

एक ने कहा—उठा कर बाहर फेंक दो। पर इस संकेत पर कार्य किसी ने नहीं किया। वे उठकर एक कोने में जा खड़े हो गये और उत्सुक दृष्टि से जैनब के आने की राह देखने लगे।

ग़फ़ूर ने बालकों को तो फेंक दिया, पर जैनब को कैसे फेंके। द्वार सिपाहियों ने खोलने ही न दिया। अनिल और ग़फ़ूर ने उसे अपने कंधे पर बैठाकर अंदर डाल देने की चेष्टा की पर एक सिपाही ने जैनब को बाहर की ओर धक्का दे दिया। वह ग़फ़ूर के कंधे पर से प्लेट फार्म पर गिरी; भीड़ उनके चारों ओर एकत्रित हो गई।

एक पुलिस के सिपाही ने उनके गंदे वस्त्र और सूखे शरीर देखे। पूछा— 'टिकट है ?'

जैनब को प्रसन्नता हुई कि अब उसकी यात्रा असंभव है।

इंजिन ने सीटी दी। गार्ड ने हरी झंडी के साथ सीटी बजाई और इंजिन की प्रथम झक के साथ पहिया इंजिन के नीचे तेजी से घूम गया। पर गाड़ी सरकी नहीं। इंजिन कई बार जल्दी-जल्दी झकझकाया, गाड़ियों के जोड़ों पर खिंचाव पड़ा। चूँ-चिर का स्वर निकला और गाड़ी आगे सरक गई।

अनिल और ग़फ़ूर ने सभय नेत्रों से पुलिस की ओर देखा। बोले कुछ नहीं।

'टिकट है ?'

'नहीं।'

'नहीं' सुनते ही जैसे सिपाही को स्वतंत्रता प्राप्त हो गई। उसने अनिल के मुख पर एक थप्पड़ मारा और दूसरा ग़फ़ूर के। जैनब से बोला—'चल हरामजादो !'

वे विवश उसके आगे-आगे स्टेशन की इमारत की ओर लौटे।

शमशाद और मुनीर रोते गाड़ी में चले जा रहे थे। एक सिपाही को यह भाया नहीं। बोला—'चुप रहो।'

पर इससे उनका रोना और भी बढ़ गया। सिपाही कुछ समय तक सुनता रहा। तभी उनके रुदन ने दूसरे के मस्तिष्क को कहीं कुरेद दिया। वह चिल्लाया, 'चुप नहीं हुए हरामजादे !'

इस डाँट का प्रभाव भी कुछ मिनटों में समाप्त हो गया। अब उनका रोना असह्य था। एक ने लेटे से उठकर दो-दो थप्पड़ उन दोनों के लगाये और डांटा,— अगर अब रोये तो उठाकर गाड़ी के बाहर फेंक दूँगा।

वे अब चुप हो गये।

पुलिस ने दो-दो थप्पड़ और लगाकर पाँच घंटे पश्चात् उन्हें स्टेशन से बाहर निकाल दिया। उस दिन उन्हें भोजन प्राप्ति की सुविधा न रही। इस घटना से जैनब संतुष्ट थी।

अनिल ने कहा—बच्चे कहीं भी जा पड़ेंगे यहाँ से तो अच्छे ही रहेंगे।

'परमात्मा करे तुम्हारी बात सच्ची हो।'

तीनों की अपनी-अपनी विचारधाराएँ थीं और इनमें सबसे गंभीर जैनब की कल्पनाएँ थीं।

— ५४ —

स्थिति में सुधार की लहर आई। गाज़ीपुर में अन्न का आगमन हुआ। एक और लंगर की स्वीकृति अधिकारियों ने दे दी। और क्षुधार्त-सहायक-समिति ने अपना पृथक् लंगर खोल दिया।

अनिल को यह समाचार ज्ञात हुआ। प्रबंधक सुधीन भट्टाचार्य से एक मुर्दे के हाथ को गूदड़ से ढँकते हुए उसने कहा—इन लंगरों से पूर्ण लाभ तो तब हो जब कि जिन्हें भोजन की सबसे अधिक आवश्यकता है उन तक पहुँचे।

सुधीन बाबू ने चादर को कंधे पर भली भाँति प्रतिष्ठित करते हुए उसे वितरण में भाग लेने को निमंत्रित किया। अनिल ने उसे स्वीकार कर लिया।

दिन भर मानव शरीरों की अंत्येष्टि से निवृत्त होकर जब वह संध्या समय डेरे पर पहुँचा तो उसने यह समाचार सुनाया।

गफ़ूर के मन में उठा—अनिल ने जैसे उसके साथ धोका किया है।

पर यह भावना शीघ्र हट गई। अपनी कमियों पर उसका ध्यान गया। और उसके पश्चात् एक प्रसन्न भाव उसमें आ गया, अनिल जब अन्न बाँटेगा, तो उन लोगों की भूख-वेदना कम हो जायेगी। यह स्वर्ण-बिहान है। अन्न-संकट टलता जा रहा है।

जैनब ने सुना। प्रसन्नता जगी। पर इसके अत्यंत निकट ही दूसरी भावना ने शीश उठाया। नहीं, वह अनिल से पृथक् नहीं होना चाहती। वह स्वयं न जायेगी और उसे छोड़कर अनिल भी क्यों जाये? अनिल जैसा भी है, उसके नयनों के संमुख रहे।

मोह वह नहीं त्याग पाई। वह विचारमग्न हो गई, अनिल चला जायेगा। क्या वह फिर उसके पास लौट आयेगा? उसकी शांति तिरोहित हो गई। उस भयानक

प्रातः में केवल एक रात्रि मात्र की दूरी शेष है। सूर्य निकलते ही वह नगर में चला जायेगा। मकान में रहेगा। पेट भर भोजन स्वयं ही नहीं करेगा, दूसरों को बाँटेगा। अनिल जहाँ से गिरकर उन लोगों के बीच आया था फिर वहीं पहुँच जायेगा।

जैनब उसकी जितनी सेवा चाहती थी उतनी न कर पाई। वह प्रसन्न रहे, इससे अधिक प्रसन्नता जैनब को और क्या होगी; पर वह उससे पृथक् होगा यही दुःख का कारण है।

वह लेट गई। नींद न आई। जब तक जागी है निरंतर अनिल का मुख देखती रही है। कल से वह केवल, वह भी कदाचित्, कुछ क्षणों को देखने को मिलेगा। उसे निरंतर उसकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। देवता उसके निकट है, और वह उसपर अपनी भेंट नहीं चढ़ा सकती।

उसका सिर जैसे चकराने लगा। एक धुँधलापन उसके संमुख आया। रात्रि अपनी मस्तानी चाल से आगे बढ़ने लगी।

वायु का एक झोंका आया। शरीर में फुरफुरी-सी आई। वह सिकुड़ी। विचार उठा—जिस प्रकार वह अनिल के विषय में सोचती है, क्या अनिल भी उसी भाँति उसके विषय में सोचता है! क्या भावी बिछुड़न अनिल को भी दुखित कर रही होगी! क्या उसे भी नींद न आई होगी?

सोचा यह भी कोई उसके विचारने की बात है! वह सोये; खूब भरी नींद सोये। दिन भर परिश्रम करता है, दूसरों की सेवा करता है। मैं क्या करती हूँ? मैं क्या उसके चरणों की धूलि के बराबर भी हूँ!

सोचा—वह जहाँ रहे, अच्छी तरह से रहे। स्वस्थ-प्रसन्न रहे।

उसने करवट लेकर सोने की चेष्टा की। नेत्र मूँदे। पर अनिल!

उसे वह दिन ध्यान आये जब उसने अमरूद खिलाते अपनी अँगुली काट ली थी। उसे कितनी लज्जा लगी थी। और वे मछलियाँ। उन दिनों उसके हृदय में जो तूफ़ानी भावना थी वह आज नहीं है। अब वह अनिल से सकुचाती है। दूर से ही जैसे सेवा करना चाहती है। अपने अपवित्र शरीर की बात जब सोचती है तो लज्जा से गड़ जाती है। पर विवश वह!

पर अनिल उसकी ओर अनाकृष्ट हो, यह बात भी तो नहीं है। उसपर वह अपना विशेष अधिकार समझता है। क्यों ?'

उसमें संतोष की लहर आई। पैर फैलाते ये अंधकार में अपने ऊपर खड़े वृक्ष की शाखाओं की ओर देखा। काले-काले पत्ते हल्की वायु में डोल रहे थे। अंधकार इधर से उधर बह रहा था, उसने करवट ली, वृक्ष की दूसरी ओर अनिल सो रहा है। दोनों के बीच में तीन-चार व्यक्ति और पड़े हैं। उसने गर्दन ऊँची की। अनिल की ओर नेत्र फाड़कर देखा। जानना चाहा कि वह क्या कर रहा है ? क्या सोच रहा है ? क्या वह भी उसी की भाँति बेचैन है ? क्या भावी विरह उसे भी आंदोलित कर रहा है ? पर अंधकार की वह दीवार उसकी दृष्टि के लिए बहुत मोटी थी। वह उसे भेद न पाई।

उसकी आत्मा की बेचैनी बढ़ गई। उसने हाथ-पैर हिलाये। मुट्ठियाँ बंद कीं और फिर दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में फँसाकर इतने ज़ोर से दबाया कि वे चटख उठीं। शीश हिला, दाँत भिंचे। बेचैनी इतनी बढ़ी कि वह उठकर बैठ गई।

वह बैठी रही और वृक्ष की छाया से बाहर तारों से भरे आकाश को देखती रही। वायु वृक्ष की पत्तियों में विचित्र मादक ध्वनि उत्पन्न कर रही थी। मनुष्यों के निद्रित श्वास से एक झनझनाहट वातावरण में उत्पन्न हो रही थी। जैनब काँप गई।

उसने देखा कि आकाश में प्रकाश की किरणें निकल रही हैं। चंद्रमा उदय हो रहा था। उसका हृदय वेग से धड़का। वह देखेगी, अनिल भी उसी की भाँति बेचैन है ?

वह उठी और धीरे-धीरे अनिल की दिशा में चल निकली। वृक्ष के तने के सहारे जाकर वह खड़ी हो गई। अनिल जहाँ लेटा था उस ओर देखती रही। उस शरीर में कोई बेचैनी के लक्षण उसे दिखाई न दिये। एक कीड़े ने वृक्ष पर से उसके हाथ पर रेंगना प्रारंभ कर दिया। उसे झाड़ वह आगे बढ़ गई।

चंद्रमा का प्रकाश बल प्राप्त कर गया था। अनिल के मुख पर पड़कर उन किरणों ने उसे चमका दिया था। जैनब जाकर उसके पैरों के निकट छाया में खड़ी हो गई।

कोई देखेगा तो क्या कहेगा, यह भावना तक उसके मन में न उठी। वह लज्जा, उपहास, निंदा सबसे परे थी। वह देखती रही एकटक अनिल का चंद्रप्रकाशित मुख। कितना शांत! कितना सौम्य! कितना संतुष्ट! दिन भर की सेवा से थकित, विश्राम-मग्न।

बेचैनी, बेचैनी अनिल को क्यों हो! जैनब को लगा कि अनिल के मुख में उसने वह देखा है जो वास्तव में देखने योग्य है। वह उससे कितनी नीचे है। वह अपने लिए सब कुछ चाहती है, इसी से यह बेचैनी है, और अनिल है जिसे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए; इसी से उसे जागते में न भय है, न ग्लानि और सुप्तावस्था में कितनी शांति है. कैसा चिंताहीन है।

जैनब खड़ी-खड़ी एकटक उसे देखती रही। इस दृश्य ने जैसे उसके उत्तप्त स्नायुओं को शांति प्रदान की।

इस शांति का अनुभव उसने किया। वह हिल गई। उसके नयनों में अश्रु आ गये। वह झुकी। अनिल के चरणों का उसने स्पर्श किया, हाथ मस्तक तक ले गई। ठिठकी और फिर एक दृष्टि उसके मुख पर डालकर धीरे-धीरे अपने स्थान की ओर लौट गई।

चंद्रमा की रश्मियाँ पत्तियों में छन-छनकर काली भूमि को गलीचे में परिवर्तित कर रही थीं।

— ५५ —

आँसू छिपाकर जैनब ने अनिल को विदा किया।

भोजन बाँटते अनिल और उमा मजूमदार एक गूदड़ों के ढेर के निकट खड़े हो गये।

अनिल ने कहा—बाबा, उठो भोजन लो।

स्वर की कोमलता ने गूदड़ों में एक गति उत्पन्न कर दी। एक सूखा वृद्ध-मुख उसमें से दिखाई पड़ा। कोई आकर उससे भोजन को पूछेगा, इसकी कल्पना भी उसे न थी। वह गूदड़ों के नीचे घुटकर दम दे देने को लेटा था।

उसने देखा अनिल को। पहिचाना हुआ चेहरा लगा। उसके नयनों में आँसू

आ गये। बोला—बेटा, तुम्हीं तो थे दो चार दिन हुए मेरे अब्दुल्ला को उठा ले गये थे। अल्लाह तुम्हें इसका फल देगा।

'बाबा, खाने को लो।'

'बेटा!'

'लो, उठो।'

'नहीं बेटा, अल्लाह तुम्हारा भला करे। अब मुझे भोजन लेकर क्या करना है। जिस रास्ते जवान-जवान बेटे गये हैं उसी...।' वृद्ध आगे बोल न सका।

'नहीं बाबा लो, उठो।'

'बेटा!'

'अल्लाह ने जब अन्न भेजा है तो उसका निरादर...।' अनिल ने वृद्ध को उठाकर बैठाया। उसके बर्तन में भोजन डाला और आगे बढ़े।

कुछ डग चलने के पश्चात् मज़ूमदार ने कहा—'जो लोग स्वयं नहीं लेना चाहते, उन्हें देने की जिम्मेदारी हमारी नहीं है।'

'क्यों?'

'यह तो आपत्ति-काल है। उपयुक्त के जीवित रहने का प्रश्न है। मालथस का नियम...।'

अनिल ने ध्यान से मजूमदार की ओर देखा।

'जो समाज के काम का है, समाज केवल उसी का पोषण करेगा।'

अनिल कुछ तेजी से बोला—'महाशय, यह अन्न आपने उसे मुफ़्त नहीं दिया है। जीवन भर वह आपके समाज की सेवा करता रहा है जिसके बदले में समाज ने कदाचित् ही उसे दोनों वक्त भरपेट भोजन पा लेने की सुविधा दी हो। समाज ने इस भोजन का मूल्य रक्त और पसीनों की बूँदों में पेशगी चुकवा लिया है।'

मजूमदार अनिल की ओर देखकर बोला—'पहिले क्या हो गया है इससे मुझे कोई वास्ता नहीं। मेरी दृष्टि वर्तमान पर है। भोजन से जहाँ अधिकाधिक लाभ निकल सकता हो, वहीं व्यय करना चाहिए, यही समाज की आवश्यकता है।'

अनिल ने कहा—मनुष्यता का शास्त्र समाज-शास्त्र से कहीं ऊँचा शास्त्र है।

उमाकांत ने ठेले को आगे बढ़ाया।

अनिल ने एक सोते-से बालक को जगाया। पूछा—'तुझे खाने को मिला है?'

बालक ने मूढ़वत् उसको ओर देखा।

'क्या है?'

'खाने को मिला?'

'नहीं तो।'

'लेने क्यों नहीं गया?'

बालक एक टक उसकी ओर देखता रहा। अनिल ने देखा कि उसका मुख तमतमा रहा है।

'लेगा?'

बालक ने उत्तर नहीं दिया।

'ले, यह पीले।'

बालक धीरे से लेट गया।

'रहने दो।' मजूमदार ने कहा।

वे आगे बढ़ गये। सलीमा की झोंपड़ी पर पहुँचकर पूछा—जैनब है?

वहाँ कोई न था। पता लगा कि सब-के-सब भोजन लेने गये हैं।

वे लौट चले।

अनिल ने पाया कि अन्न प्राप्त करने की मशीन पर्याप्त जटिल हो गई है। मनुष्य ने जैसे अपना जीने का अधिकार गिरवी रख दिया हो।

— ५६ —

जिस दिन जैनब उपस्थित नहीं थी उसी दिन अनिल को उसकी आवश्यकता हुई। यह संयोग उसे दुखदायी ही हुआ। दूसरे दिन वह बहुत पहिले लंगर के द्वार पर पहुँच गई और भोजन लेकर शीघ्र ही वापिस चली आई। अनिल को उससे क्या काम था, इसको अत्यंत उत्सुकता से प्रतीक्षा करती रही।

जब अनिल इस ओर से निकला, तो जैनब ने पूछा 'क्या काम था?'

अनिल ने हल्की मुस्काती जैनब की ओर देखा।

बोला—'गफ़ूर सलीमा अच्छे हैं ?'

'हाँ, वैसे तो अच्छे हैं, पर परसों से गफ़ूर को ज्वर रहने लगा है। रात तो बहुत तेज़ था। देर में मिला होगा। अब आता ही होगा।'

'अच्छा !'

'हाँ, काम क्या था ?' जैनब ने स्मरण कराया।

'उस पीपल के इस ओर एक लड़का बीमार पड़ा था। कल खाने तक को नहीं लिया।'

'हाँ, अकेला रह गया था। शाम को मर गया। अब नहीं मिलेगा।'

अनिल ने जैनब की ओर देखा और फिर अपने साथी की ओर।

'बस यही काम था ?' जैनब ने सोचा--क्या इसी लिए सलीमा के विषय में पूछा, 'वह कैसी है ?' उसके विषय में एक शब्द भी न कहा।

मन को समझाया—जब अच्छा-विच्छा देख लिया तो पूछने की आवश्यकता ही क्या थी। पर मन माना नहीं।

फिर उठा कि नहीं पूछा तो न सही। वास्ता ?

उसका मन दिन भर उचटा-सा रहा। इधर-उधर बहलाने का उसने प्रयत्न किया, पर बहला नहीं।

अनिल ने उसकी कुशलक्षेम क्यों नहीं पूछी ?

सत्य है कि अनिल को काम अधिक है। वह ऊँचा है, उसे ध्यान से उतार दिया वह इसे सह सकती थी। पर सलीमा कैसे स्मरण रही ?

— ५७ —

अनिल नित्य अन्न-वितरणार्थ आता। ऐसे लोगों की संख्या जो पड़े-पड़े अन्न लेते हों, घटती जा रही थी। इस कमी का सबसे बड़ा श्रेय मृत्यु को और अस्पताल को प्राप्त था। मानवों की इतनी दुर्दशा देखकर जैसे जड़-चेतन सब उसके ऊपर एक साथ दयालु हो पड़े हों और वह इस दया-प्रवाह में बह चला हो।

जैनब ने देखा कि अनिल आज अन्न बाँटने नहीं आया है। उसने अनिल में

विशेष रुचि न लेने का निश्चय कर लिया था। पर इस समय अपने को रोक न सकी। पूछा—'अनिल आज नहीं आये ?'

'हाँ।'

'क्यों ?'

'उसकी तबियत ख़राब है।'

'क्या हुआ ?

स्वयं-सेवक महोदय अपनी मित्रमंडली के नाम की इच्छा से वहाँ थे। बोले—पता नहीं, जाकर दफ्तर में पूछ।

और फिर अत्यंत तीव्र ताड़नामय दृष्टि से अपने से बोलने की धृष्टता करनेवाली की ओर दखा।

जैनब को स्वयंसेवकों में कोई रुचि नहीं थी। वह मुड़ी। अनिल की अस्वस्थता का समाचार सुनकर उसके नयनों के संमुख अंधकार छा गया। नाना दुष्कल्पनाएँ मन में उठने लगीं।

बीमारी ; बीमारी का क्या ठिकाना। हैज़ा भी है, चेचक भी है, हैज़ा हुआ तो पता नहीं कितनी ही देर में सब समाप्त हो जाये और अनिल फिर देखने को भी न मिले।

वह अपने को भूल सी गई। सलीमा से कहा—अनिल की तबियत खराब है, मैं जाती हूँ।

'कहाँ ?'

जैनब ने उत्तर नहीं दिया। वह चली गई।

दफ़्तर पहुँचकर पूछा—'अनिल हैं ?'

प्रश्न का उत्तर देने का दायित्व जिन पर था वे सज्जन चुप बैठे रहे। निकटवर्त्ती युवा ने जैनब के मैले-कुचैले अधूरे वस्त्रों को ओर टटोलती दृष्टि से देखा। उत्तर दिया—'वह बीमार है।'

एक सज्जन ने मुख बनाया जैसे कि वे अनिल को समिति में स्वीकार करने के प्रारंभ से ही विरोधी थे।

जैनब ने पूछा—कहाँ हैं ? मैं उनसे मिलना...।

'सेवाश्रम में...।'

जैनब तत्क्षण वापिस लौटी। जी में आया पूछे, बीमारी क्या है, पर फिर निश्चय किया कि क्या होगा ? व्यर्थ देर लगेगी।

वह तेज़ी से बाहर निकली। यह सेवाश्रम किधर है, यह पूछना भी वह भूल गई।

वह पगली की भाँति सड़कों पर चलने लगी। अनिल मिलेगा ? जीवित मिलेगा या नहीं ? वह भीषण रूप से घबरा गई। इतनी कि इन भयानक विचारों की उलझन में अस्पताल का नाम भी भूल गई। उसका जी धक से हो गया। अब अनिल को कहाँ खोजे ! उसकी दशा उस अबोध बालक-सी थी जो अपनी मा से मेले में बिछुड़ गया हो।

एक सज्जन से उसने अपनी दुःख की गाथा कही। वे बोले—अस्पताल तो दो ही हैं। सरकारी और सेवाश्रम।

जैनब अंतिम शब्द पर टूटी—'हाँ, सेवाश्रम, सेवाश्रम यहीं पर है ! वह कितनी दूर है ?'

जैनब ने पाया कि वह उस अस्पताल के द्वार से कुछ ही डगों की दूरी पर यह प्रश्न पूछ रही थी। एक मोड़ घूमते ही वह द्वार के सामने आ गई।

द्वार के भीतर प्रवेश करते ही एक संन्यासी दिखाई पड़े। उन्हीं से पूछा—'अनिल नाम का कोई रोगी...?'

संन्यासी पूर्णानंद इस नवीन वार्ड के अध्यक्ष थे। उन्होंने जैनब को देखा। बोले—'हाँ, आया है। क्यों ?'

'मैं देखना चाहती हूँ।' संन्यासी ने उसके वस्त्रों का अनिल से मिलान किया। अंतर बहुत था। उन्हें रुचि हुई। पूछा—'तुम्हारा नाम ?'

'जैनब।'

'कौन है तुम्हारा वह ?'

'भाई।'

'भाई ?' संन्यासी ने साश्चर्य कहा—'जैनब और अनिल।'

'हाँ, बड़े आदमी अपने को भगवान से बड़ा मानते हैं, इसलिए अलग-अलग चाहते हैं, पर हम गरीबों को तो सदा उसी के सामने रहना है। जो उसके बेटा बेटी हैं, वे भाई-बहिन ही हैं।'

संन्यासी प्रभावित हुए। यह अनिल, और यह जैनब उन्हें अपने निकट जान पड़े। वह मुस्काया।

जैनब ने तत्क्षण ही दूसरा प्रश्न पूछा—'क्या बीमारी है ?'

संन्यासी ने कहा—'चिंता की बात नहीं है।'

'फिर भी ?'

'भय था कि हैज़ा है, पर अतिसार से अधिक नहीं जान पड़ता।'

जैनब की जान में जान आई। उसने तत्क्षण झुककर संन्यासी के चरण पकड़ लिये—'भगवान आपकी बड़ी उमर लगाये।'

संन्यासी पीछे हट गया।

'क्या इस समय, बस एक नजर...?'

संन्यासी ने उसके मुख की ओर देखा। भावों का तूफ़ान वहाँ हुआ था। बोला-'अच्छा आओ, पर बोलना नहीं।'

'अच्छा।'

— ५८ —

आगे-आगे संन्यासी पूर्णानंद और पीछे-पीछे जैनब अनिल को देखने चले।

'बोलना नहीं' 'संन्यासी ने कहा है। जैनब का हृदय थरथरा रहा था। 'क्या अवस्था वास्तव में खराब है ?' उसका हृदय बैठने लगा। फिर साहस बढ़ा। चेहरा लाल हो आया। उत्सुकता से परिश्रम का पसीना झलक आया। 'बोलना नहीं।'

'हैजा नहीं है, बोलना नहीं।'

बरामदे में संन्यासी के पीछे चली जा रही थी। उसे संन्यासी के पैरों के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दे रहा था।

'बोलना नहीं।'

और उसने निश्चय किया कि वह नहीं बोलेगी।

यह विचार और कल्पना की जटिलता में मग्न थी कि सहसा संन्यासी की पदचाप शांत हो गई। पर वह चलती गई। संन्यासी से टकराने को हुई तब जागी। एक डग पीछे हटी।

संन्यासी ने उसकी ओर देखा। कहा—देखो, द्वार पर खड़ी होओ, तीसरी चारपाई पर वह है।

जैनब का हृदय भीषण रीति से धड़क उठा। अपना संपूर्ण बल लगाकर एक पैर चौखट के निकट रखा। उसपर पूर्ण बल डाला और फिर गर्दन आगे बढ़ाकर भीतर देखा।

उसने देखा कि तीसरी चारपाई पर एक व्यक्ति लेटा है। चेहरा हल्दी जैसा पीला है। नयन अधखुले स्थिर हैं और कपोल की अस्थियाँ उभर आई हैं। इससे अधिक उसपर प्रभाव डाला अनिल के एकदम श्वेत बिछावन और उढ़ावन ने। यह उसका अनिल है? उसे लगा कि यह अनिल की मृत्युशय्या है। वह फूलों के बीच लेटा है।

उसका जी मचलाया, सिर घूमने लगा। वह निद्रित की भाँति हिली, डगमगाई, चीखी और द्वार के भीतर गिर पड़ी।

संन्यासी की भवें चढ़ गईं। वह दौड़ा। दूसरे संन्यासी की सहायता से उसे बाहर बरामदे में डाला।

'जाओ। स्ट्रेचर लाओ।' नाड़ी-परीक्षा करते हुए उन्होंने कहा। देखा कि उसका हृदय गोली लगे पक्षी की भाँति फड़फड़ा रहा है। ज्वर तेजी स चढ़ता आ रहा है।

जब स्ट्रेचर पर डाल संन्यासियों ने उसे उठा लिया तो वह बोले—'तेरह नंबर कमरे में पाँचवा बेड...। हरिहर ब्रह्मचारी से कहो, इंजेक्शन का सामान...'
